# अनुक्रम

# हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

# हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

डॉ० भोलानाथ तिवारी

ज्ञान भारती
दिल्ली-११०००७

प्रकाशक ·

ज्ञान भारती

४/१४ रूपनगर,

दिल्ली-११०००७

संस्करण . १९८१

मूल्य · ७ ००

मुद्रक

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस

मौजपुर, दिल्ली-११००५३

# प्रवेश

## संसार की भाषाओं में हिन्दी

संसार मे कुल लगभग तीन हज़ार भाषाएँ बोली जाती है। इनमे बहुत-सी भाषाएँ पारिवारिक रूप मे आपस मे सबद्ध है। अर्थात् वे मूलतः किसी एक भाषा से ही निकली है। ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-समूह का तुलनात्मक अध्ययन-विश्लेषण करके तथा भौगोलिक निकटता का विचार करके विद्वानो ने भाषाओं के पारिवारिक संबधो का पता लगाया है। इस समय संसार मे मुख्यतः कुल लगभग बारह-तेरह परिवार है:

**भारोपीय परिवार:**

यह परिवार बोलने वालो की सख्या तथा क्षेत्रफल दोनो दृष्टियो से संसार का सबसे बडा परिवार है। अन्य भाषा-परिवारो की तुलना मे इस परिवार के सबंध मे अध्ययन-विश्लेषण अधिक हुआ है। इसका क्षेत्र भारत, ईरान, योरोप का अधिकाश भाग, अमेरिका का कुछ भाग तथा आस्ट्रेलिया आदि है। इसकी प्रमुख भाषाएँ सस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता, अग्रेजी, जर्मन, रूसी, फ्रांसीसी, फारसी, हिदी, मराठी, बगाली आदि है। भारोपीय परिवार मूलतः **केन्तुम** तथा **सतम्** दो शाखाओ मे विभक्त है। यह विभाजन एक ही ध्वनि के दोनो शाखाओ मे 'क' और 'स' रूप मे मिलने पर आधारित है। 'केन्तुम' वर्ग मे ग्रीक, लैटिन, जर्मन, अग्रेजी आदि आती है तो 'सतम्' वर्ग मे रूसी, आर्मिनियन तथा भारत, ईरानी

आदि। आगे चलकर भारत-ईरानी की **भारतीय, दरद** और **ईरानी** ये तीन शाखाएँ हो गई। ईरानी शाखा से फ़ारसी, ताजिक, पश्तो आदि भाषाओ का विकास हुआ है, तो दरद से कश्मीरी, शिणा आदि का। भारतीय मे ही क्रमश. प्राचीन भाषा सस्कृत; मध्ययुगीन भाषाएँ पालि, प्राकृत, अपभ्रश; और आधुनिक भाषाएँ हिंदी, बगाली, मराठी आदि है।

**द्रविड़ परिवार :**

इस परिवार का क्षेत्र मुख्यतः दक्षिण भारत है, किंतु इसकी कुछ भाषाएँ उत्तरी भारत और पाकिस्तान मे भी बोली जाती है। इसकी प्रमुख भाषाएँ तमिल, तेलगु, कन्नड तथा मलयालम है। इस परिवार की भाषाओ ने भारोपीय परिवार की भाषाओ को ध्वनि, शब्द-समूह तथा व्याकरण तीनो ही दृष्टियो से प्रभावित किया है। अनेके विद्वानो के अनुसार संस्कृत तथा उससे निकली हिंदी आदि भाषाओ मे टवर्गीय ध्वनियो का विकास, कारक-चिह्नो के रूप मे स्वतन्त्र शब्दो जैसे ने, को, से आदि का प्रयोग, संयुक्त क्रिया तथा मराठी आदि आर्य-भाषाओ मे तीन लिगो का अब तक प्रयोग मूलतः द्रविड परिवार के प्रभाव के ही कारण है।

**चीनी परिवार :**

इस परिवार का मुख्य क्षेत्र चीन, श्याम, तिब्बत, बरमा तथा भारत मे उत्तरी सीमा के आसपास है। इसकी मुख्य भाषाएँ चीनी, स्यामी, बरमी तथा तिब्बती और भारत मे मणिपुरी, गारो, बोडो, नागा, नेवारी आदि है।

**सेमेटिक परिवार :**

यह परिवार अरब, मिस्र, मोरक्को तथा इसके आस-पास के प्रदेशो मे उत्तरी अफ्रीका तथा पास के एशियाई भागो मे फैला हुआ है। हिब्रू, अरबी आदि इसकी मुख्य भाषाएँ है। मूल बाइबिल इसी परिवार की प्राचीन हिब्रू भाषा मे लिखी गई थी। कुछ लोग सेमेटिक और हेमेटिक को एक ही परिवार की दो शाखाएँ मानते है।

**हेमेटिक परिवार :**

इसका क्षेत्र उत्तरी अफ्रीका है। इसकी मुख्य भाषाएँ प्राचीन मिस्री, सोमाली, काप्टिक, नामा, फुला आदि है। यह परिवार कई बातो मे सेमे-

टिक परिवार से मिलता-जुलता है।

**आग्नेय परिवार :**

यह परिवार प्रशांत महासागर एवं हिंद महासागर के द्वीपो तथा भारत के कुछ भागो मे फैला हुआ है। इसकी प्रमुख भाषाएँ मुण्डा, मलय तथा नीकोबारी हैं।

**यूराल-अल्टाइक :**

इसे कुछ विद्वान एक परिवार और कुछ यूराल और एल्टाइक परिवारो का एक समुदाय मानते है। इसकी भाषाएँ यूराल और अल्टाइक के बीच मे तुर्की, फिनलैण्ड आदि मे बोली जाती है। इसकी प्रमुख भाषाएँ तुर्की, उजबेक, हंगेरियन तथा फिनिश आदि है।

**बांटू परिवार :**

यह परिवार मध्य तथा दक्षिणी अफ्रीका एक जंजीबार द्वीप मे फैला है। इसकी प्रमुख भाषाएँ काफिर, स्वाहिली आदि है।

**अमरीकी या रेड-इण्डियन परिवार :**

यह परिवार उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका मे फैला है। यह वहाँ के आदिवासियो की भाषा का परिवार है। अथवस्कन, करीब, एस्किमो, मय आदि इसकी मुख्य भाषाएँ है। इस बात हर अभी तक विवाद है कि ये सारी भाषाएँ एक परिवार की है या कई परिवारो की। अधिकाश लोग इन्हे कई परिवारो का एक समूह मानते हैं।

**काकेशस परिवार :**

इसका क्षेत्र कृष्ण सागर और कैस्पियन सागर के बीच मे काकेशस का पहाडी इलाका है। पहाडी प्रदेश होने के कारण इसकी अनेक भाषाएँ विकसित हो गई है, जिनमे मुख्य भाषा जॉर्जियन है।

**सूडानी परिवार :**

अफ्रीका मे भूमध्य रेखा के उत्तर लगभग सवा चार सौ भाषाओ के इस परिवार को कुछ लोग एक परिवार और कुछ कई परिवारो का एक वर्ग मानते है। अफ्रीका मे भूमध्य रेखा के उत्तर मे इसका क्षेत्र है। ईव, हौसा, मदवा आदि इसकी प्रमुख भाषाएँ है।

**बुशैमन परिवार :**

दक्षिणी अफ्रीका के मूल निवासियो की भापाएँ इसके अतर्गत है। इस परिवार का क्षेत्र आरेंज नदी से लेकर नंगामी झील तक है। बुशैमन, नामा, होतेतोत आदि इसकी प्रमुख भाषाएँ है।

**जापानी-कोरियाई परिवार :**

यह परिवार जापान, कोरिया तथा आसपास के द्वीपो मे फैला है। पहले ये दोनो अनिश्चित परिवार की भाषाएँ मानी जाती थी—अव दोनो एक ही परिवार की मानी जाती है।

इस तरह **हिंदी** संसार के भाषा-समूह मे **भारोपीय परिवार** की **सतम्** शाखा की **भारत-ईरानी** अथवा **आर्य** उपशाखा की **भारतीय शाखा** की एक आधुनिक भापा है।

## भारतीय आर्य भाषा

भारत में आर्यो के आने के बाद से उनकी भारतीय आर्य भाषा का इतिहास शुरू होता है। इस प्रसंग मे सबसे पहले उन लोगो के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी अपेक्षित है, जो आर्यो के आने के पूर्व भारत मे आ चुके थे।

### आर्यो के पूर्ववर्ती भारतीय

आर्यो के आने के पूर्व, भारत मे कौन-कौन सी जातियाँ रहती थी, यह प्रश्न भी प्रस्तुत प्रसग मे विचारणीय है, क्योकि उनकी भाषाओ ने हमारी भापिक धारा को विभिन्न स्तरो पर अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। विभिन्न क्षेत्रो मे अधुनातम शोधो से यह वात प्रायः सिद्ध हो चुकी है, कि किसी भी ऐसी जाति का पता अव तक नही चला है, जिसे मूलतः भारत-भूमि का निवासी माना जा सके। यहाँ की छोटी-बडी प्राय. सभी जातियाँ, समय-समय पर वाहर से ही आई जिनमे प्रमुख चार है :

(क) नेग्रिटो

यह प्राचीनतम जाति है, जिसका भारत भूमि पर पता चलता है। नेग्रिटो मूलतः अफ्रीका के निवासी थे और ये दक्षिणी अरब, ईरान होते

भारत आए थे। प्रारम्भ मे ये लोग प्राय· पूरे भारत मे फैल गए थे, फिर इनमे से कुछ असम, वरमा होते अंदमान जा पहुँचे। इस समय फिलीपीन के नेग्रिटो, दक्षिणी वलूचिस्तान के कुछ लोगो, दक्षिण भारत की तमिल-भाषी पनियर, कदिर, कुरुम्वा, इरुला आदि छोटी-मोटी जातियो, असम के मंगोली किरातो, तथा अंदमान के पाच-छः सौ व्यक्तियो (जो अव तक अपनी भापा का प्रयोग करते हैं) के रूप मे ही इनके अवशेष है। पीपल की पूजा तथा धनुप-वाण का प्रयोग भारतीय संस्कृति को इनकी देन है। इनकी भाषा का कोई विशेप अवशेप प्रभाव रूप मे भारतीय भाषाओ में नही रह गया है। आधुनिक भारतीय भापाओ मे 'वाद' या 'वादुड' ही एक ऐसा शव्द है, जो इनका माना जाता है। वह वॅगला मे 'वादुड' तथा पुरानी वगला मे वादुड़ी है। विहारी चमदडिया, गादुर, हिंदी चमगादड़, पजावी चमगिद्दड भी अशत: उसी से सम्वद्ध है।

**(ख) आस्ट्रिक :**

नेग्रिटो लोगो के वाद आस्ट्रिक आए। पहले लोगो का यह विचार था, कि ये लोग दक्षिणी चीन तथा उत्तरी हिन्दचीन के निवासी थे तथा असम के रास्ते भारत मे आए थे, किंतु अव इनका मूल स्थान भूमध्य-सागर माना जाता है। ये ईराक, ईरान, होते भारत आए तथा इडो-नेशिया होते आस्ट्रेलिया पहुँच गए। वहाँ अव भी ये लोग है। भारत की कोल, मुण्डा, खासी, मोनख्मेर, निकोवारी आदि भापाएँ इन्ही की है। पान, सुपारी, धान, लौकी, वैंगन, हल्दी, केला, अदरक, हाथी को पालतू वनाना, कुत्ता, सुअर, मुर्गी पालना, नारियल, कपास तथा उससे कपड़े वनाना, सिदूर, २० पर आधारित गिनती (कोडी शव्द इन्ही का है) एव पुनर्जन्मवाद, भारतीय सस्कृति को इनकी देन है। आस्ट्रिक भापाओ ने भारतीय आर्यभाषाओ, विशेपतः पूर्वी भारत की भापाओ को कई रूपों मे प्रभावित किया है। कार्पास, कदली, वाण, तावूल, पिनाक गंगा, लिग, कम्वल आदि अनेक शव्द मूलतः आस्ट्रिको से ही हमे मिले है। अनुकरणा-त्मक शव्द वनाने की परम्परा भी कदाचित् इन्ही से भारतीय भापाओ मे आई है।

(ग) किरात :

आस्ट्रिक लोगो के बाद किरात भारत मे आए। ये लोग मूलतः याङ्त्सी-क्यांग नदी के मुहाने के पास के रहने वाले आदिमंगोल थे। इन्ही की एक शाखा चीनी सभ्यता एवं संस्कृति की निर्माता वनी। इनकी एक शाखा भारत आई और उत्तरी पहाड़ी भागो, पंजाव, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य भारत, बिहार, आसाम, बंगाल एवं उड़ीसा में फैल गई। यजुर्वेद तक मे इनका उल्लेख मिलता है, जिससे पता चलता है कि ये लोग काफी पहले आ चुके थे। अव ये लोग केवल हिमाचल प्रदेश, नेपाल, भूटान, आसाम, मनीपुर तथा उत्तरी बंगाल मे है। इनकी प्रमुख भाषाएँ मेइथेइ, कचिन, नगा, गारो, वोडो, लोलो, कुकीचिन, लेप्चा, तथा नेवारी आदि है। भारत मे आने पर ये लोग भाषा तथा संस्कृति मे आस्ट्रिको से प्रभावित हुए, तथा बाद मे इन लोगो ने द्रविडो तथा आर्यो को प्रभावित किया। भारतीय तन्त्रशास्त्र इनसे प्रभावित माना जाता है। खोखा (मछली का जाल; हिन्दी, पंजाबी का खोखा भी यही है, लकड़ी का छोटा घर या बक्स), फेटा (झुकाव, हिन्दी फेटा (धोती का) भी यही है।) आदि शब्द इन्ही के है।

(घ) द्रविड़ :

भारत मे आनेवाली तीसरी जाति द्रविडो की थी। इनके मूल स्थान के सम्वन्ध मे विवाद है। सभी बातो पर ध्यान देते हुए मेरे विचार में इनका मूल स्थान अफ्रीका है। वहाँ से ये लोग भूमध्यसागर आए और फिर ईरान, अफगानिस्तान से लेकर पूर्वी भारत (आसाम, बगाल) तक फैल गए। कभी लोगो का विचार था कि केवल हडप्पा-मोहनजोदडो, अर्थात् उत्तरी पश्चिमी भारत मे ही इनका केन्द्र था, किन्तु इधर लोथल (गुजरात), उरिव्लना (मेरट) तथा कालिवॉगन आदि मे इनके अवशेष, पूर्वी भारत मे भी अनेक स्थानो के नामो मे इनके भाषिक तत्त्व, तथा इनकी भाषाओ का अनेक क्षेत्रो मे मिलना, इनके प्रायः पूरे उत्तर भारत मे फैले होने के प्रमाण है। आज तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम के अतिरिक्त तुलु, कोडगु, कोलमी, टोडा, गोड (मध्य भारत), खन्द (उडीसा), ओरांव (विहार आदि), व्राहुई (वलूचिस्तान) तथा माल्तो (राजमहल

की पहाड़ियाँ) आदि इनके वृहत भाषा-क्षेत्र के अवशेष है। सस्कृत साहित्य मे द्रविड़ों को 'दास', 'दस्यु' तथा 'शूद्र' नामो से पुकारा गया है। आरम्भ मे ये नाम जातिवाची थे, किन्तु बाद मे इनमे अर्थापकर्ष हो गया और ये गुलाम, डाकू तथा अछूत आदि के वाचक हो गये। हिन्दू धर्म के शिव-पार्वती, देवी, हनुमान, कार्तिकेय, गरुड, मृत्यु के बाद का पिंडदान-संस्कार आदि मूलत. द्रविड ही है। भाषा के क्षेत्र मे आर्यभाषाओ पर द्रविड़-प्रभाव पर्याप्त है। इस प्रभाव को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है: ध्वनि, व्याकरण, शब्द। ध्वनियो के क्षेत्र मे इनकी सबसे बड़ी देन भारत मे आने के बाद आर्य-भाषा मे टवर्ग का विकास है। व्याकरणिक प्रभावो मे संयुक्त क्रियाओ (ये प्रयोग सस्कृत से पालि मे, पालि से प्राकृत मे तथा प्राकृत से अपभ्रश मे और अपभ्रश से आधुनिक भाषाओ मे अधिक मिलते है) के अत्यधिक प्रयोग, परसर्गों का प्रयोग, तुलनात्मक विशेषण मे अपादान परसर्ग का प्रयोग आदि द्रविड़ भाषाओ के ही प्रभाव है। पूर्वकालिक क्रियाओ का अधिक प्रयोग मूलतः आस्ट्रिको की देन है किन्तु यह प्रभाव आधुनिक आर्य भाषाओ मे प्रमुखतः द्रविड माध्यम से ही आया जान पड़ता है। द्रविड से भारतीय आर्य भाषाओ मे बहुत-से शब्द आए है। उदाहरणार्थ अणु, कला, गण, नाना (अनेक), पुष्प, बीज, रात्रि, साय, तडुल, कम्बल, मर्कट, शव, श्रेष्ठिन् (सेठ), झड़ी (वर्षा की), झगड़ा, सीप, खूँटा आदि। प्रतिध्वन्यात्मक शब्द (घोड़ा-वोडा, किताब-सिताब, चाय-शाय आदि) भी द्रविडो की देन है।

## भारत में आर्यों का आगमन

भारतीय आर्य, ईरानियो एव दरद लोगो से अलग होकर १५०० ई० पू० के आस-पास पश्चिमी एवं पश्चिमोत्तर सीमा से भारत मे प्रविष्ट हुए। इस प्रसंग मे एक प्रश्न उठ गया है कि वे एक बार मे ही आ गए या कई बार मे। हार्नले का कहना था कि वे दो बार आए। पूर्ववर्ती आर्य मध्यदेश मे आ बसे थे। बाद मे आने वाले आर्यों ने आकर उनका स्थान ले लिया, और पूर्वागतो को उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, पूरब ढकेल दिया। इसके अनुसार पूर्ववर्ती आर्य भौगोलिक दृष्टि से 'बाहरी' हो गए तथा परवर्ती

आर्य 'भीतरी'। हार्नले का यह विचार था कि परवर्ती आर्य ही वैदिक सस्कृति के निर्माता थे। प्राय. हार्नले के इस सिद्धात के साथ गलती से ग्रियर्सन का नाम जोड दिया गया है, और दोनो को मिलाकर इसे हार्नले-ग्रियर्सन का दो अक्रमणोवाला सिद्धात (Two Invasion Theory) कहा गया है। ग्रियर्सन ने इसका स्पष्ट शब्दो मे विरोध (Linguistic Survey of India, खण्ड १, भाग १, पृष्ठ ११६) करते हुए कहा है कि अलग-अलग आक्रमणो की कल्पना मे अनावश्यक मानता हूँ। हाँ, ग्रियर्सन ने आधुनिक आर्यभाषाओ के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि भाषाओ के 'भीतरी' और 'बाहरी' दो वर्ग बनते है। उनका कहना था कि बाहरी शाखा की भाषाएँ अनेक भाषिक बातो मे भीतरी शाखा से अलग है। इस प्रसग मे उन्होने यह भी सकेत किया है कि बाहरी शाखा, जिन बातो मे भीतरी से अलग है, उन्ही मे वह दरद भाषाओ के समीप है। इसका आशय यह है कि बाहर तथा दरद लोगो के मूलत एक वर्ग के होने की सम्भावना है।

भारत मे आर्य भाषा का प्रारम्भ १५०० ई० पू० के आसपास से होता है। तब से आज तक भारतीय आर्यभाषा की आयु साढे तीन हजार वर्षो की हो चुकी है। भाषिक विशेषताओ के आधार पर भारतीय आर्य भाषा की इस लम्बी आयु को तीन कालो मे बाटा गया है .—

(१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (प्रा भा आ) १५०० ई० पू०—५०० ई० पू०

(२) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (म भा आ) ५०० ई० पू०—१००० ई०

(३) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (आ भा आ) १००० ई०—अब तक।

## प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (१५०० ई० पू०—५०० ई० पू०)

आर्य जब भारत मे आए, उस समय उनकी भाषा तत्कालीन ईरानी भाषा से कदाचित् अलग नही थी किन्तु जैसे-जैसे यहाँ के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव, विशेषत आर्येतर लोगो से मिश्रण के कारण, पडने लगे,

भाषा परिवर्तित होने लगी। इस प्रकार वह अपनी भगिनी-भाषा ईरानी से कई वातों मे अलग हो गई। भारतीय आर्य भाषा का प्राचीनतम रूप वैदिक संहिताओ मे मिलता है। इसमे रूपाधिक्य है, नियमितता की अपेक्षाकृत कमी है और अनेक प्राचीन शब्द है जो वाद मे नही मिलते। वैदिक सहिताओं का काल मोटे रूप मे १२०० ई० पू० से ९०० ई० पू० के लगभग है। यो वैदिक संहिताओं की भाषा मे भी एकरूपता नही है। कुछ की भाषा वहुत पूर्ववर्ती है, तो कुछ भी परवर्ती। उदाहरणार्थ अकेले ऋग्वेद मे ही प्रथम और दसवे मण्डलो की भाषा तो वाद की है, और शेष की पुरानी। यही पुरानी भाषा अपेक्षाकृत अवेस्ता के निकट है। अन्य सहिताएँ (यजुः, साम, अथर्व) और वाद की है। वैदिक सहिताओ की भाषा तत्कालीन वोलचाल की भाषा से कुछ भिन्न है। क्योकि यह काव्य-भाषा है। उस समय तक आर्यो का केन्द्र सप्तसिन्धु या आधुनिक पंजाव था, यद्यपि पूर्व मे वे वहुत आगे तक पहुँच गए थे। ब्राह्मणो-उपनिषदो की भाषा कुछ अपवादो को छोडकर सहिताओ के वाद की है। इसमे उतनी जटिलता एवं रूपाधिक्य नही है। इनके गद्य भाग की भाषा तत्कालीन वोलचाल की भाषा के वहुत निकट है। इस समय तक आर्यो का केन्द्र मध्यदेश हो चुका था, यद्यपि इधर की भाषा उत्तरी जितनी शुद्ध नही थी। इस भाषा का काल ९०० से वाद का है। भाषा का और विकसित रूप सूत्रो मे मिलता है। इसका काल ७०० ई० पू० से वाद का है। यह सस्कृत पाणिनीय सस्कृत के काफी पास पहुँच गई है, यद्यपि उसमे पाणिनीय सस्कृत की एकरूपता नही है। इसी काल मे अत मे लगभग ५वी सदी मे पाणिनि ने अपने व्याकरण मे सस्कृत के उदीच्य मे प्रयुक्त रूप से अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठित एवं पण्डितो मे मान्य रूप को नियमवद्ध किया, जो सदा-सर्वदा के लिए लौकिक या क्लैसिकल सस्कृत का सर्वमान्य आदर्श वन गया। पाणिनि की रचना के वाद वोलचाल की भाषा पालि, प्राकृत, अपभ्रश, आधुनिक भाषाओ के रूप मे विकास करती आज तक आई है, किन्तु संस्कृत मे साहित्य-रचना भी इसके समानान्तर ही होती चली आ रही है, जो मूलत. पाणिनीय संस्कृत होने पर भी हर युग की वोलचाल की भाषा का अनेक दृष्टियो से कुछ प्रभाव लिए हुए है, और यही कारण है कि वोलचाल की

भाषा न होने पर भी, उस साहित्यिक संस्कृत मे भी विकास होता आया है। भाषा के जानकारो से यह बात छिपी नही है कि रामायण-महाभारत की भाषा पाणिनि के बाद की है। पुराने पुराणो की भाषा और भी परवर्ती है। फिर कालिदास से होते क्लैसिकल सस्कृत, हितोपदेश तक तथा और आगे तक आई है। इस प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के **वैदिक** और **लौकिक संस्कृत** दो रूप मिलते है :—

**वैदिक संस्कृत**

(१५०० ई० पू० से ८०० ई० पू० तक)—संस्कृत का यह रूप वैदिक सहिताओ, ब्राह्मणो, आरण्यको तथा प्राचीन उपनिषदो आदि मे मिलता है। यों इन सभी मे भाषा का कोई एक सुनिश्चित रूप नही है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, वैदिक साहित्य मे इस भाषा का विकास होता दिखाई पडता है, फिर भी कुछ ध्वन्यात्मक एव व्याकरणिक बातें ऐसी है, जिनको वैदिक की सामान्य विशेषताएँ माना जा सकता है। तत्कालीन बोलचाल की भाषा इसके समीप रही होगी, किन्तु इसका यह आशय नही कि बोलचाल की भाषा के सभी रूप इसमे सुरक्षित है।

**ध्वनियां**

**मूल स्वर** अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ लृ; **संयुक्त स्वर** : ए, ऐ, ओ, औ; **व्यंजन** क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, स, श, ष, ह, ळ्, ळ्ह। विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ह की सध्वनियाँ थी। अ, व, य, आदि कई अन्य ध्वनियो की भी कई सध्वनियाँ थी। ळ, ळ्ह मूर्धन्य पार्श्विक प्रतिवेष्ठित थे।

**स्वराघात :**

मूल भारोपीय भाषा मे स्वराघात बहुत महत्त्वपूर्ण था। आरम्भ मे वह बलात्मक था, जिसके कारण मात्रिक अपश्रुति विकसित हुई, किन्तु बाद मे वह सगीतात्मक हो गया, जिसने गुणिक अपश्रुति को जन्म दिया। इस भाषा-परिवार के विघटन के समय स्वराघात केवल उदात्त तथा स्वरित था। भारत-ईरानी स्थिति मे अनुदात्त भी विकसित हो गया। इस

प्रकार वैदिक संस्कृत को परम्परागत रूप से अनुदात्त, उदात्त एवं त्वरित तीन प्रकार के स्वराघात (सगीतात्मक) प्राप्त हुए थे। स्वराघात का इतना अधिक महत्त्व था कि सभी सहिताओ, कुछ ब्राह्मणो एव आरण्यको तथा वृहदारण्यक आदि कुछ उपनिषदो की पांडुलिपि स्वराघात-चिह्नित मिलती हैं और विना स्वराघात के वैदिक छन्दो पढ़ना अशुद्ध माना जाता है। स्वराघात के कारण शव्द का अर्थ भी वदल जाता था। 'इन्द्रशत्रु' वाला प्रसिद्ध उदाहरण सर्वविदित है : इन्द्र शत्रु = जिसका शत्रु इन्द्र है (वहुव्रीहि), इन्द्रशत्रु—इन्द्र का शत्रु (तत्पुरुष)। शव्द आदि के अर्थ जानने मे स्वराघात का कितना महत्त्व था, यह वेंकट माधव के 'अंधकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्खलित क्वचित्। एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इव' (अर्थात जैसे अन्धकार मे दीपको की सहायता से चलता हुआ कही ठोकर नही खाता, इसी प्रकार स्वरो (स्वराघात) की सहायता से किए गए अर्थ स्फुट अर्थात् सदेहशून्य होते है) कथन से स्पष्ट है। स्वराघात मे परिवर्तन से कभी-कभी लिंग मे भी परिवर्तन हो जाता था। टर्नर के अनुसार वैदिक संस्कृत मे संगीतात्मक एवं वलात्मक दोनो ही स्वराघात था।

**रूप-रचना :**

वैदिक भाषा मे लिंग तीन थे : पुलिंग, स्त्रीलिंग, नपुसकलिंग। वचन भी तीन थे : एक०, वहु०। कारक-विभक्तियाँ आठ थी · कर्ता, सम्वोधन, कर्म, करण, सम्प्रदाय, अपादान, सम्वन्ध, अधिकरण। विशेषणों के रूप भी सज्ञा की तरह ही चलते थे। मूल भारोपीय मे सर्वनाम के मूल या प्रातिपदिक वहुत अधिक थे। विभिन्न वोलियो मे कदाचित् विभिन्न मूलो के रूप चलते थे। पहले सभी मूलो से सभी रूप वनते थे, किन्तु वाद मे मिश्रण हुआ और अनेक मूलो के अनेक रूप लुप्त हो गए। परिणाम यह हुआ कि मूलत विभिन्न मूलो से वने रूप एक ही मूल के रूप माने जाने लगे। वैदिक भाषा मे उत्तम पुरुष मे ही, यद्यपि प्राचीन पडितो ने 'अस्मद्' को सभी रूपो का मूल माना है, यदि ध्यान से देखा जाय तो **अह**-(अहम्), **म**-(माम्, मया, मम, मयि), **आव** (आवम्, आवाम्, वाम्, आवयो ), **वय** (वय), **अस्म** (अस्माभि. अस्मभ्यम् अस्मे आदि),

इन पाच मूलो पर आधारित रूप है। मध्यम आदि अन्य सर्वनामो मे भी एकाधिक मूल है। वैदिक भाषा मे धातुओ के रूप आत्मने तथा परमै दो पदो मे चलते थे। कुछ धातुए आत्मनेपदी, कुछ परमैपदी एव कुछ उभयपदी थी। आत्मनेपदी रूपो का प्रयोग केवल अपने लिए होता था तथा परस्मै का दूसरो के लिए। कियारूप तीनो वचनो (एक, द्वि, वहु) एवं तीनो पुरुषो (उत्तम, मध्यम, अन्य) मे होते थे। काल तथा क्रियार्थ मिलाकर क्रिया के कुल ११ प्रकार के रूपो क प्रयोग मिलता है: लट्, लङ्, लिट् लुङ्, लुट्, निश्चयार्थ, सम्भावनार्थ, (लेट,) विध्यर्थ, आदरार्थ, आज्ञार्थ, तथा आज्ञार्थ (लोट्)। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद मे लेट् का प्रयोग वहुत मिलता है, किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रयोग कम होता गया और अन्त मे लौकिक सस्कृत मे पूर्णतः समाप्त हो गया। वैदिक मे भविष्य के रूप बहुत कम है। उसके स्थान पर प्राय सम्भावनार्थ या निश्चयार्थ का प्रयोग मिलता है।

**समास :**

समास-रचना की प्रवृत्ति मूल भारोपीय एव भारत-ईरानी मे थी। वही से यह परम्परा वैदिक सस्कृत मे आई। वैदिक समस्तपद प्राय दो शब्दो के ही मिलते है। इससे अधिक शब्दो के समास अत्यन्त विरल है। जहाँ तक समास के रूपो का प्रश्न है, वैदिक मे केवल तत्पुरुष, कर्मधारय, वहुव्रीहि एव द्वन्द्व ये चार ही समास मिलते है। लौकिक सस्कृत के शेप दो बाद मे विकसित हुए है।

**शब्द :**

वैदिक भाषा मे शब्दो की दृष्टि से दो बाते उल्लेख्य है। एक तो यह कि अनेक तथाकथित तद्भव या मूल शब्द से विकसित शब्द प्रयुक्त होने लगे। वेदो मे 'इह' (यहाँ) इसी प्रकार का है। इसका मूल शब्द* इध का है। पालि 'इध' और अवेस्ता 'इद' इसी बात के प्रमाण है कि महाप्राण व्यजन के स्थान पर 'ह' के विकास से 'इध' से ही 'इह' बना है। कट (मूल शब्द कृत), एकादश (मूल एकादश) भी इसी प्रकार के शब्द है। 'विशति' भी मूलत 'द्विशति' रहा होगा, यद्यपि यह विकार भारत मे आने के पहले ही आ चुका था। शब्दो की दृष्टि से दूसरी विशेषता यह है

कि उस काल मे ही भापा मे अनेक आर्येतर शब्दो का आगमन होने लगा था। उदाहरण के लिए वैदिक भापा मे अणु, अरणि, कपि, काल, गण, नाना, पुष्कर, पुष्प, मयूर, अटवी, तडुल, मर्कट आदि शब्द एक ओर यदि द्रविड से आए है, तो वार, कवल, वाण, कोसल अंग (स्थानवाची नाम), अग आदि आस्ट्रिक भापा से।

**बोलियां :**

ब्राह्मण ग्रन्थो से इस वात का पता चलता है कि वैदिक काल में प्राचीन आर्य भापा के कम-से-कम तीन रूप—या तीन बोलियाँ—अवश्य थे : पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी। प्रथम अफगानिस्तान से लेकर पजाव तक था, दूसरा पजाव से मध्य उत्तर प्रदेश तक तथा तीसरा उसके पूर्व। यदि र्-ल् ध्वनियो को ही आधार माने तो कह सकते है कि पश्चिमोत्तरी वोली र्-प्रधान थी, मध्यवर्ती मे र्-ल् दोनो थे, और पूवी ल्-प्रधान थी। ऋग्वेद मे पश्चिमोत्तरी वोली का ही प्रतिनिधित्व हुआ है। पश्चिमोत्तरी वोली मे स्थानीय प्रभाव प्राय: वहुत कम पडा था, क्योकि स्थानीय आर्येतर जातियाँ कुछ अपवादो को छोडकर, वहाँ से भाग कर दक्षिण तथा पूर्व चली गई थी। इसी कारण पश्चिमोत्तरी वोली को आदर्श माना गया। उसे उस समय 'उदीच्य' कहते थे। कौशीतकि ब्राह्मण (७-६) मे आता है. तस्मादुदीच्या प्रज्ञाततरा वागुद्यते। उदञ्च उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुम्। यो वा तत आगच्छति, तस्य वा शुश्रूषन्त इति। अर्थात्...उत्तर मे अधिक विज्ञता से, या प्रामाणिक भापा वोली जाती है। उत्तर दिशा मे ही वोलना सीखने जाते है। जो वहाँ से आता है, उससे सुनना चाहते है।

## संस्कृत या लौकिक संस्कृत (८०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक)

भापा के अर्थ मे 'संस्कृत' (सस्कार की गई, शिष्ट या अप्रकृत) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण मे मिलता है। वैदिक काल मे भापा के तीन भौगोलिक रूपो—उत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी—का उल्लेख किया जा चुका है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार इनमे उत्तरी बोली थी, क्योकि वही प्रामाणिक मानी जाती थी। पाणिनि ने अन्यो के भी कुछ रूप आदि लिए है और उन्हे वैकल्पिक कहा है। इस प्रकार मध्य-देशी तथा

पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है। लौकिक या क्लैसिकल सस्कृत साहित्यिक भाषा है, अतः जिस प्रकार हिन्दी मे जयशकर प्रसाद की गद्य या पद्य-भाषा को बोलचाल की भाषा नही कह सकते, उसी प्रकार सस्कृत को भी बोलचाल की भाषा नही कह सकते। किन्तु इसमे सन्देह नही कि जिस प्रकार प्रसाद जी की भाषा का आधार परिनिष्ठित खडी बोली हिन्दी है, जो बोलचाल की भाषा है, उसी प्रकार पाणिनीय सस्कृत भी तत्कालीन पण्डित-समाज की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित है। पाणिनि द्वारा उनके लिए 'भाषा' (भाष् = बोलना) शब्द का प्रयोग, सूत्र 'प्रत्य-भिवादेऽशूद्रे' दूर से बुलाने मे 'प्लुत' के प्रयोग का उनके द्वारा उल्लेख, बोलचाल के कारण विकसित सस्कृत को व्याकरण की परिधि मे बाँधने के लिए कात्यायन द्वारा वार्तिको की रचना, ये बाते यह सिद्ध करती है कि सस्कृत कभी बोलचाल की भाषा थी। अत. हार्नले, वेबर तथा ग्रियर्सन आदि पश्चिमी विद्वानो का यह कथन कि सस्कृत बोलचाल की भाषा नही थी, निराधार है।

ऊपर वैदिक भाषा की प्रमुख विशेषताएँ उल्लिखित है। लौकिक सस्कृत उससे मूलत. बहुत अधिक भिन्न नही है। इसीलिए इनकी सभी विशेषताओ को विस्तार से अलग गिनाने की आवश्यकता नही। यहाँ केवल **वैदिक और लौकिक संस्कृत में अन्तरों** का ही उल्लेख किया जा रहा है: (१) वैदिक भाषा का, लौकिक की तरह परिनिष्ठीकरण (Standardization) नही हुआ या, इसी कारण लौकिक, जिस रूप मे परि-निष्ठिकृत एव साहित्यिक है, वैदिक नही है। (२) वैदिक मे जहाँ परि-निष्ठीकरण एव नियमन न होने से रूप की जटिलताएँ हैं, अनेकरूपताओ एव अपवादो का आधिक्य है, लौकिक मे वे या तो है ही नही, या है भी तो वैदिक की तुलना मे बहुत ही कम। (३) वैदिक मे 'लृ' 'ऋ' 'ॠ' के उच्चारण स्वरवत होते थे। सस्कृत मे आकर ये कदाचित् लि्र 'रि' 'री' जैसे उच्चरित होने लगे थे। (४) ऐ, औ के उच्चारण वैदिक मे आइ, आउ थे, किन्तु लौकिक सस्कृत मे ये 'अइ', 'अउ' हो गए। (५) ए, ओ का उच्चारण वैदिक मे 'अइ', 'अउ' था अर्थात् ये संयुक्त स्वर थे, किन्तु सस्कृत मे ये मूल स्वर हो गए। (६) लेखन मे ळ, ळ्ह ध्वनियाँ समाप्त हो गई थी,

और इनके स्थान पर ड, ढ प्रयुक्त होने लगे थे। (७)कई ध्वनियो के उच्चारण-स्थान मे अन्तर आ गया। उदाहरणार्थ प्रातिसाख्यो से पता चलता है कि वैदिक तवर्ग ल्, स् दतमूलीय थे, किन्तु सस्कृत मे (लृतुल-सानादन्ताः) ये दत्य हो गए। (८) वैदिक मे सगीतात्मक स्वराघात था। इसके विरुद्ध लौकिक संस्कृत मे सगीतात्मक स्वराघात के स्थान पर कदाचित् वलात्मक स्वराघात विकसित हो गया। आधुनिक भारतीय आर्य भापाओ के वलात्मक स्वराघात के वीज यही मिलने लगते है। क्रिया-रूपो मे कुछ प्रमुख अन्तर ये हैं: (क) वैदिक मे लकारो मे विशेष प्रतिवन्ध नही है। लुड् लड् लिट् में परोक्षादि का भेद नही है। यहाँ तक कि कभी-कभी इनका कालेतर प्रयोग भी मिलता है। किंतु संस्कृत मे ऐसा नही है। वैदिक, का लेट् लौकिक मे नही है, यद्यपि उसके उत्तम पुरुष के तीन रूप लौकिक के लोट् मे आ गए है। वैदिक मे लङ्, लृड्, लृड् मे भूतकरण (Augment) अ-नही मिलता यद्यपि लौकिक मे यह आवश्यक है। (ड) वैदिक मे लिट् वर्तमान के अर्थ मे था, किन्तु लौकिक मे वह परोक्ष भूत के लिए आता है। (६) समासो मे सवसे वडा अन्तर तो यह आया कि वैदिक मे वहुत वड़े-वड़े समास वनाने की प्रवृत्ति नही थी, क्योकि उस भाषा मे कृत्रिमता नही है, किन्तु संस्कृत मे कृत्रिमता के विकास के कारण वडे-वड़े समस्त पद भी वनने लगे। ऐसे ही वैदिक मे केवल चार समासो—तत्पुरुप, कर्मधारय, वहुव्रीहि, द्वन्द्व—का ही प्रयोग प्राय. मिलता है, किन्तु लौकिक में द्विगु और अव्ययीभाव भी प्रयुक्त होते है। (१०) मूल भारोपीय भापा मे उपसर्ग वाक्य मे कही भी आ सकता था, क्रिया के साथ आना उसके लिए आवश्यक नही था। वैदिक मे भी यह स्वच्छन्दता पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। जैसे 'यच्चिद्धि ते विशो यथा प्रदेव वरुण व्रतम् मिनी-'मसि द्यविद्यवि'। यहाँ 'प्र' उपसर्ग 'मिनीमसि' से सम्बन्धित है। किन्तु इन दोनो के वीच तीन शव्द आए है। लौकिक सस्कृत मे उपसर्ग की यह स्वच्छन्दता नही मिलती। (११) वैदिक मे विजातीय शव्द आए थे—विशेषतः द्रविड़ एव आस्ट्रिक से, किन्तु लौकिक सस्कृत मे उनकी सख्या वहुत वढ़ (मेरे अनुसार २ हजार के लगभग) गई :

**द्रविड़ शब्द :**

संस्कृत मे द्रविड से एक हजार से ऊपर शब्द आए है। कुछ उदाहरण ये है : कीर (तोता), कुक्कुट (मुर्ग), कुक्कुर (कुत्ता), घुण (घुन), नक्र (घडियाल), मर्कट (बन्दर), मीन (मछली), अर्क (मन्दार), कानन (जंगल)।

**आस्ट्रिक शब्द :** संस्कृत मे आस्ट्रिक के भी सौ से ऊपर शब्द है। कुछ उदाहरण है : ताम्बूल, शृगार, आकुल, आपीड (मुकुट), कबरी (बाल), कुविन्द (जुलाहा), तथा खिकिर (लोमडी) आदि। **यूनानी शब्द :** यवन, यवनिका, द्रम्म (दाम), होडा (होडा), त्रिकोण, सुरग, क्रमेल (ऊँट), कंगु (एक अनाज), तथा कस्तीर (राँगा) आदि। **रोमन शब्द :** दीनार। **अरबी शब्द :** रमल, इक्कवाल (ज्योतिष मे सौभाग्य), इत्थशाल (ज्योतिप मे तीसरा योग), ईसराफ (ज्योतिष मे चौथा योग), वोल्लाह (विशेष रग का घोडा)। **ईरानी शब्द :** हिन्दू, बारबाण, ताजिक (ईरानी व्यक्ति), मिहिर (सूर्य), बादाम (मेवा विशेष), बालिश (तकिया), खोल, खर्बूज, तथा नि शाण (जलूस) आदि। **तुर्की शब्द :** तुरुष्क, खच्चर। **चीनी शब्द :** संस्कृत मे कुछ शब्द चीनी से भी आए है, यद्यपि उनकी सख्या अधिक नही है : चीन (चीनाशुक, चीनचोलक) तथा मसार (एक रत्न)।

**बोलियाँ :**

वैदिक भाषा के प्रसग मे पश्चिमोत्तरी (या पश्चिमी या उत्तरी), मध्यदेशी (या मध्यवर्ती) तथा पूर्वी, इन तीन बोलियो का उल्लेख किया जा चुका है। सस्कृत काल मे आर्यभाषा-भाषी प्रदेश मे कदाचित् एक दक्षिणी रूप भी जन्म ले चुका था।

## मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (५०० ई.पू से १००० ई तक)

यह सकेत किया जा चुका है कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल मे, जनभाषा पर आधारित, वैदिक एव लौकिक सस्कृत भाषा के दो रूप, साहित्य मे प्रयुक्त हुए। दूसरे रूप—लौकिक सस्कृत—को पाणिनि ने अपने व्याकरण मे जकड़कर उसे सदा सर्वदा के लिए एक स्थायी रूप दे

दिया, किन्तु जनभाषा भला इस बन्धन को कहाँ मानती ? वह अवाध गति से परिवर्तित होती रही, बढती रही। इस जनभाषा के मध्यकालीन रूप को ही 'मध्यकालीन आर्यभाषा' की संज्ञा दी गई है। इसका काल मोटे रूप से ५०० ई० पू० से १००० ई० तक का, अर्थात् डेढ हजार वर्षो का है। मध्यकालीन आर्यभापा को **प्राकृत** भी कहा गया है। प्राकृत शब्द के सम्वन्ध मे दो मत है: (क) कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति **'प्राक्+कृत'** अर्थात् 'पहले की बनी हुई' या 'पहले की की हुई' मानते है। दूसरे शब्दो मे **प्राकृत** 'नैसर्गिक प्रकृत' या अकृत्रिम भाषा है, और इसके विपरीत **संस्कृत** कृत्रिम या संस्कार की हुई भाषा है। नमि साधु ने 'काव्यालकार' की टीका मे लिखा है : **'प्राकृतेति, सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादि-भिरनाहतसंस्कार सहजो वचन-व्यापारः प्रकृतिः प्रकृति तत्र भवः सेव वा प्राकृतम्'**। इस रूप मे **प्राकृत** पुरानी भाषा है, और **संस्कृत** उसका संस्कार करके बनाई हुई बाद की भाषा। ग्रियर्सन ने इसी को **प्राइमरी प्राकृत** कहा है। इसका अर्थ यह है कि इस अर्थ मे प्राकृत शब्द का प्रयोग उस जनभाषा के लिए है, जो वैदिक एव सस्कृत काल से जनभाषा थी और जिसका कुछ परिनिष्ठित एव पंडितो द्वारा मान्य रूप वैदिक है, एवं पर-वर्ती काल मे जिसका सुसस्कृत साहित्यिक रूप 'सस्कृत' है। अर्थात् वह वैदिक की भी जननी है, और उसी का कुछ परवर्ती रूप संस्कृत की जननी है। (ख) दूसरे लोग **प्राकृत** की उत्पत्ति और ढग से करते है। जैसे—**प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतमुच्यते**—मार्कडेय—(प्रकृति या मूल सस्कृत है, उससे जन्मी भाषा को प्राकृत कहते है) **प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तदागतं वा प्राकृतम्**—हेमचन्द्र (प्रकृति या मूल सस्कृत है, और सस्कृत से जो आई है, प्राकृत है)। ये मत एक दूसरे के विरोधी है। वस्तुतः, अपने-अपने स्थान पर ये दोनो ही मत ठीक है। यदि हम उस जनभाषा को प्राकृत कहते है, जिसका परिनिष्ठित साहित्यिक रूप सस्कृत है, दूसरे शब्दो मे जिससे संस्कृत उत्पन्न है, तो पहला मत ठीक है, अर्थात् प्राकृत सस्कृत की जननी है, किन्तु यदि हम सस्कृत-कालीन जनसभा को भी संस्कृत ही कहे—जो मूलतः वही था, केवल सस्कृत साहित्यिक भाषा थी, और वह जनभाषा—तो दूसरा मत सही है, क्योकि ५००० ई० पू०

से १००० ई० तक वोली जानेवाली प्राकृत भाषा उसी का विकसित रूप है, अर्थात् उसी से निकली है। अब प्रायः इसी भाषा को प्राकृत कहते है, अत. इसे अर्थात् प्राकृत को हम संस्कृत से उत्पन्न मान सकते है। हा. यह बात ध्यान मे रखने की है, यह प्राकृत भाषा वैदिक या लौकिक संस्कृत मे उद्भूत नही है, अपितु तत्कालीन जनभाषा से उद्भूत है या उसका विकसित रूप है। इन १५०० वर्षो की प्राकृत भाषा को तीन कालों मे विभाजित किया गया है: (१) प्रथम प्राकृत (५०० ई० पू० से १ ई० तक)। (२) द्वितीय प्राकृत (१ ई० ५०० ई० तक) (३) तृतीय प्राकृत (५०० ई० से १००० ई० तक)।

**प्रथम प्राकृत**—इसमे **पालि** तथा **अभिलेखी प्राकृत** आती है।

**पालि**

पालि बौद्ध धर्म (विशेषत दक्षिणी बौद्धो) की भाषा है। मोटे रूप से इसका काल ५वी सदी ई० पू० से पहली सदी तक है। **'पालि' नाम**—'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानो मे बहुत मतभेद है। पालि शब्द के पुराने प्रयोग 'भाषा' के अर्थ मे नही मिलते। इसका प्राचीनतम प्रयोग ४थी सदी मे लका मे लिखित ग्रन्थ 'दीपबस' मे हुआ है। वहाँ इसका अर्थ 'बुद्धवचन' है। बाद मे प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ने भी इसका प्रयोग लगभग इसी अर्थ मे किया है। तब से लेकर काफी बाद तक 'पालि' शब्द का प्रयोग पालि साहित्य मे हुआ है, किन्तु कभी भी भाषा के अर्थ मे नही। भाषा के अर्थ मे वहॉ मगध भाषा, मागधी, मागधिक भाषा आदि का प्रयोग हुआ है। सिहल के लोग इसे अब भी मागधी कहते है। भाषा के अर्थ मे 'पालि' का प्रयोग अत्याधुनिक है और यूरोप के लोगो द्वारा हुआ है। यहाँ कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख किया जा रहा है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति श्री विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार सस्कृत 'पक्ति' (>पन्ति>पत्ति>पट्ठि>पल्लि>पालि) से है, एक मत के अनुसार वैदिक और सस्कृत आदि की तुलना मे यह 'पल्लि' या 'गॉव' की भाषा थी और 'पालि' शब्द 'पल्लि' का ही विकास है, अर्थात् इसका अर्थ 'गॉव की भाषा'। भण्डारकर तथा वाकरनागल के अनुसार 'पालि' शब्द 'प्राकृत' (>पाकट>पाअड>पाअल>पालि) का ही विकसित रूप है। वस्तुतः

ये ध्वन्त्यात्मक विकास वहुत तर्कसम्मत नही है। कोसाम्वी नामक वौद्ध विद्वान् के अनुसार इसका सम्बन्ध 'पाल्' अर्थात् 'रक्षा करना' मे है। इसने बुद्ध के उपदेशो को सुरक्षित रक्खा है इसीलिए यह नाम पडा है। 'पा पालेति रक्खतीति' रूप मे भी कुछ लोगो ने 'पा' मे 'लि' प्रत्यय लगाकर इसकी व्युत्पत्ति दी है। अर्थात् यह अर्थो की रक्षा करती है, अतः पालि है, किंतु यह भी कल्पना की दौड मात्र है। डॉ० मैक्सवेलेसर ने 'पालि' को 'पाटलि' (पाटलिपुत्र की भापा) से व्युत्पन्न माना है। किन्तु जैसा कि हम आगे देखेगे, पालि वहा की भापा नही थी। सबसे प्रामाणिक व्युत्पत्ति भिक्षु जगदीग कश्यप द्वारा दी गई है। प्रायः वहुत-से भारतीय विद्वान् इससे सहमत है। इनके अनुसार 'पालि' का सम्वन्ध 'परियाय' (स० पर्याय) से है। 'धम्म-परियाय' या 'परियाय' का प्रयोग प्राचीन वौद्ध साहित्य मे वुद्ध के उपदेश के लिए मिलता है। इनकी विकास-परम्परा परियाय>पलियाय>पालियाय>पालि है।

**'पालि' भाषा का प्रदेश :**

यह प्रश्न कम विवादास्पद नही है कि पालि मूलत. किस प्रदेश की भापा थी। इस प्रश्न पर प्रायः दो दर्जन विद्वानो ने विचार किया है। श्रीलका के वौद्धो तथा चाइल्डर्स आदि की यह धारणा है कि यह मगध की वोली थी। किन्तु भाषा की विवेचना करने पर यह वात अशुद्ध ठहरती है। ध्वनि और व्याकरण की दृष्टि से इसका मागधी से साम्य नही है। वेस्टरगार्ड, तथा स्टैन कोनो आदि पालि को उज्जयिनी या विध्य प्रदेश की वोली पर आधारित मानते हैं। ग्रियर्सन ने इसे मागधी माना था, यद्यपि इस पर पैशाची का भी प्रभाव स्वीकार किया था। ओल्डनवर्ग ने पालि को कलिंग की भापा कहा था। रीज डैविड्ज ने इसे कोसल की वोली कहा है। ल्यूडर्ज, पालि को पुरानी अर्धमागधी से सवद्ध मानते थे। इन मतो से एक वात स्पष्ट है कि पालि मे विभिन्न प्रदेगो की वोलियो के तत्त्व हैं, इसी कारण विभिन्न लोगो ने इसे विभिन्न स्थानो से सवद्ध किया है। वस्तुत. अपने मूल मे पालि मध्यप्रदेश की भापा है। यो उस समय वह पूरे भारत मे एक अतर्प्रांतीय भापा जैसी थी, इसी कारण उसमे अनेक प्रादेशिक वोलियो विशेषत. वुद्ध की अपनी भाषा होने से मागधी के भी

कुछ तत्त्व मिल गए। इस प्रकार अपने मूल रूप मे पालि को शौरसेनी प्राकृत का पूर्व-रूप मान सकते है।

**साहित्य :**

पालि साहित्य का सबंध प्रमुखत भगवान् बुद्ध से है, यो कोप छन्द-शास्त्र तथा व्याकरण की भी कुछ पुस्तके लिखी गई है। परम्परागत रूप से पालि साहित्य को पिटक और अनुपिटक दो वर्गो मे बाटते है, जिनमे जातक (जिसे ग्रथ न कहकर ग्रथ-समूह कहना उचित है), धम्मपद, मिलिन्दपञ्हो, बुद्धघोष की अट्ठकथा, तथा महावग्ग आदि प्रमुख है। पालि साहित्य की रचनाकाल ४८३ ई० पू० से लेकर आधुनिक काल तक लगभग ढाई हजार वर्षो मे फैला हुआ है।

**ध्वनियाँ :**

पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण कच्चायन के अनुसार पालि मे ४१ ध्वनिया थी—**'अक्खरापादयो एकचत्तालीस'**। दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण मोग्गलान के अनुसार ४३ ध्वनियाँ थी—**'अआदयो तितालिस वण्णा'**। ध्वनि-विषयक इसकी मुख्य बाते है: (१) स्वरो के ह्रस्व ऍ, ओॅ दो नए विकसित हो गये। (२) ऋ ॠ, लृ स्वर पूर्णत. समाप्त हो गये। (३) **ऐ, औ** स्वर नही रहे। (४) व्यजनो मे, वैदिक की तरह ही, पालि मे भी ळ्, ळ्ह ध्वनियाँ थी। (५) विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय भी नही रहे। (६) वैदिक तथा सस्कृत मे श्, ष्, स् तीन थे। पालि मे तीनों के स्थान मे स् हो गया। (७) अनुस्वार,पालि मे स्वतन्त्र ध्वनि है, जिसे पालि वैयाकरण ने **निग्गहीत** नाम से अभिहित किया है। (८) ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से **घोषीकरण** (माकन्दिय>मागन्दिय, उताहो> उदाहु) **अघोषीकरण** (यह प्रवृत्ति अधिक नही है। जो है उसका कारण सभवतः पैशाची प्रभाव है: मृदग>मुतिग, परिध>परिख, अगुरु> अकलु, कुसीद>कुसीत, जगल>छकल), **महाप्राणीकरण** (सुकुमार> सुखमाल, परशु>फरसु, कील>खील, पल्ल>फल्ल), **समीकरण** (यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है: चत्वर>चच्चर, निम्न>निन्न, सर्व>सब्ब, मार्ग>मग्ग, धर्म>धम्म, कर्म>कम्म, जीर्ण>जिण्ण), **र् ल् का आपसी परिवर्तन** (तरुण>तलुण, किल>किर), **महाप्राण** का ह हो

हो जाना (भवति>होति, लघु>लहु, रुधिर>रुहिर) आदि की प्रवृत्ति मिलती है।

**स्वराघात** :

पालि मे स्वराघात की स्थिति विवादास्पद है। टर्नर के अनुसार पालि मे वैदिकी की भाति ही सगीतात्मक एव बलात्मक दोनो स्वराघात था। ग्रियर्सन पालि में केवल बलात्मक स्वराघात मानते है। जूल ब्लाक को पालि मे किसी भी स्वराघात के होने के बारे मे सदेह है। मेरे विचार मे पालि मे मुख्यतः बलात्मक स्वराघात ही था, यद्यपि सगीतात्मक के भी कुछ अवशेष रहने की सम्भावना है।

**व्याकरण :**

पालि भाषा, व्याकरणिक दृष्टि से वैदिक सस्कृत की भाति ही स्वच्छद एव विविध रूपो वाली है। किन्तु साथ ही वैदिक या सस्कृत की तुलना मे उसमे पर्याप्त सरलीकरण भी हुआ है। यह सरलीकरण, उच्चारण मे समीकरण आदि के रूप मे तो हुआ ही है, साथ ही, सादृश्य के आधार पर विकास के कारण व्याकरण के क्षेत्र मे भी हुआ है। (१) व्यजनात प्रातिपदिक प्रायः नही है। अत्य व्यजन-लोप के सामान्य नियम के कारण या तो अत्य व्यजन लुप्त हो गये है, (**विद्युत>विज्जु**) या अत्य स्वरागम के कारण शब्द स्वरात (**शरत्—सरद**) हो गए है। (२) सादृश्य के कारण भिन्न-भिन्न स्वरात शब्दो के बहुत से रूप भी समान हो गए हैं। इस दिशा मे अकारात शब्दो ने अपने प्रयोग-बाहुल्य के कारण अन्यो को प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ इकारात (**अग्गि**), उकारात (**भिक्खु**) के सम्प्रदान एव सम्बन्ध के रूप अकारात के समान (**अग्गिस्स, भिक्खुस्स**) मिलते हैं। (३) लिंग तीन है। यो अपने बहु प्रयोग के कारण पुल्लिग ने नपुसकलिंग को प्रभावित किया है : जैसे '**सुख**' के लिए '**सुखो**'। (४) द्वे, उभो जैसे दो-एक रूपो को छोडकर पालि मे द्विवचन नही है। (५) वैदिक की तरह रूपाधिक्य भी पालि मे है। उदाहरणार्थ धर्म का सं० मे सप्तमी एक० मे केवल '**धर्मे**' होगा किन्तु पालि मे **धम्मे** के अतिरिक्त **धम्मस्मि** तथा **धम्मम्हि** भी है। (६) पालि सर्वनाम प्रायः पूर्ववर्ती सर्वनाम रूपो के ही ध्वनि नियमो के अनुकूल विकसित है। इनमे एक ही

अन्तर है, और वह मामूली नही है कि वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में, सारे के सारे मध्यम पुरुष बहुवचन के रूप य से शुरू होते है, किन्तु पालि मे सारे के सारे त से शुरू होते है। जैसे युष्मे—तुम्हे, युष्माकम्—तुम्हाक आदि। (७) क्रिया-रूपो मे ३ पुरुष तथा २ वचन (द्वि नही) है। पद केवल परस्मै है। आत्मने कुछ अपवादो को छोडकर नही है। धातुओ के दसो गण है, यद्यपि संस्कृत की तुलना मे कुछ मिश्रण हो गया है। एक ही धातु के कुछ रूप एक गण के समान है तो कुछ दूसरे के। इससे पता चलता है कि जन-मस्तिष्क मे गणो की सत्ता धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी।

**बोलियाँ एवं भाषा-रूप :**

पालि काल मे आर्य-भाषी भारत मे वे ही चार बोलियाँ थी, जिनका उल्लेख लौकिक संस्कृत के प्रसग मे किया जा चुका है : पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी। हाँ सस्कृत काल की तुलना मे उनके अंतर कुछ और उभर आए थे।

प्रथम प्राकृत के अन्तर्गत पालि के अतिरिक्त **अभिलेखी प्राकृत** भी आती है। इसके अधिकांश लेख शिला पर है, अत. इसकी एक सज्ञा **शिला-लेखी प्राकृत** भी है। इसकी सामग्री है—(१) अशोकी अभिलेख, (२) अशोकेतर अभिलेख। अशोकी अभिलेखो से तीसरी सदी ई० पू० मे एव अशोकेतर से ई०पू० की अतिम तीन सदियो मे भाषा की स्थिति तथा स्वरूप का पता चलता है। साथ ही यह भी पता चलता है कि उस काल मे मानक भाषा की कम-से-कम चार बोलियाँ थी · पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी-पश्चिमी, मध्यपूर्वी, पूर्वी। (विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'हिन्दी-भाषा' का 'प्रवेश')

**अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत** (र. का १०० ई०), **खरोष्ठी धम्मपद** (र. का. २०० ई०) **की प्राकृत, निय प्राकृत** (निय प्रदेश मे प्राप्त लेखो मे) तथा **मिश्रत बौद्ध संस्कृत** (पहली सदी की कृत्रिम भाषा) भी इस प्रसग मे उल्लेख्य है (विस्तार के लिए देखिए लेखक की 'हिन्दी भाषा' मे 'प्रवेश')।

**प्राकृत : (१ ई०—५००ई०)**

मध्यकालीन आर्यभाषा के प्रारम्भ मे पीछे 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति

पर विचार किया गया है। ऐसा अनुमान लगता है कि जन-भाषा का सस्कार करके जब उसे 'संस्कृत' संज्ञा से विभूषित किया गया तो वह जन-भापा, जो उसकी तुलना मे असंस्कृत थी, और पण्डितों मे प्रचलित इस भाषा के विरुद्ध, जो 'प्रकृत' या सामान्य लोगो मे बोली जाती थी, सहज ही, 'प्राकृत' नाम की अधिकारिणी बन बैठी। प्राकृत शब्द के दो अर्थ है। पहले अर्थ मे यह ५वी सदी ई० पू० से १००० ई० तक की भापा है, जिसमे **प्रथम प्राकृत** मे 'पालि' और 'अभिलेखी प्राकृत है, **द्वितीय प्राकृत** मे भारत एवं भारत के वाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और अन्य प्राकृतें है, **तृतीय प्राकृत** मे अपभ्रश एवं तथाकथित अवहट्ठ आती हैं। केवल **द्वितीय प्राकृत** के लिए भी प्राकृत नाम का प्रयोग होता है। यहाँ, 'प्राकृत' शब्द इसी दूसरे अर्थ मे प्रयुक्त किया जा रहा है। **द्वितीय प्राकृत** मे ऊपर की अश्वघोष के नाटको की प्राकृत (पहली सदी), निय प्राकृत (३री सदी), मिश्रित वौद्ध संस्कृत के प्राकृताश (पहली सदी) एव प्राकृत-धम्मपद (दूसरी सदी) की प्राकृत, इन चार को बहुत-से लोगो ने प्रथम एव द्वितीय प्राकृत के वीच मे या **सन्धिकालीन प्राकृत** कहा है। किन्तु मेरे विचार मे इन्हे भी द्वितीय प्राकृत मे ही स्थान देना उचित है। हाँ, यह अवश्य है कि आगे हम जिन प्राकृतो पर विचार करेंगे, उनकी तुलना मे ये तथाकथित सन्धिकालीन प्राकृते कुछ पुरानी है। इसीलिए यहा इनको पहले रखा गया है।

**प्राकृतो के भेद :**

प्राकृतों के धर्म, प्रदेश, प्रयोग, लेखन-आधार आदि के आधार पर कई भेद किए गए है, जिनमे मुख्य शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, अर्ध-मागधी, मागधी, केकय, टक्क, व्राचड खस आदि है। आगे इन पर सक्षेप मे (विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'हिन्दी भाषा' का 'प्रवेश') विचार किया जा रहा है।

**शौरसेनी :**

यह प्राकृत मूलत. मथुरा या शूरसेन के आस-पास की बोली थी। इसका विकास वहा की पालिकालीन स्थानीय वोली से हुआ था। मध्य देश की भापा होने के कारण इसे कुछ लोग सस्कृत की भाति उस काल की

परिनिष्ठित भाषा मानते है। मध्य देश सस्कृत का केन्द्र था, इसी कारण शौरसेनी उससे बहुत प्रभावित है। इस प्रभाव के कारण शौरसेनी मे अपेक्षाकृत प्राचीनता है तथा यह कुछ कृत्रिम है। सस्कृत नाटको की गद्य की भाषा शौरसेनी ही है। कर्पूरमजरी का गद्य इसी मे है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटको मे मिलता है। जैनो (दिगम्बर सम्प्रदाय) ने अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थो के लेखन मे भी इसका प्रयोग किया है। शौरसेनी मे तत्सम शब्द अपेक्षाकृत अधिक है। शौरसेनी की प्रमुख विशेपताएँ ये है : (१) असयुक्त तथा दो स्वरो के बीच मे आनेवाला स० त् इसमे द् हो गया है और थ् ध् (गच्छति>गच्छदि, कथय>कधोहि)। क्ष् का विकास सामन्यत क्ख् मे हुआ है (इक्षु>इक्खु, कुक्षि>कुक्खि)। यह उल्लेख्य है कि महाराष्ट्री मे यह च्छ् (इक्षु>उच्छु) हो जाता है। (३) ऋ का विकास इ है गृध्र>गिद्ध। (४) सयुक्त व्यजनो के सरलीकरण की प्रवृत्ति है, किन्तु अर्द्धमागधी महाराष्ट्री आदि से कम (कर्तुम> कादुं, उत्सव>उत्सव>ऊसव)। यह भी उल्लेख्य कि ऐसी स्थिति मे क्षतिपूरक दीर्घीकरण (अ>आ, उ>ऊ) की प्रवृत्ति भी है। (५) आदरार्थ आज्ञा के रूप महाराष्ट्री एव अर्द्धमा गधी की भाँति—एज्ज लगाकर (वट्टेज्ज) नही बनते। वे सस्कृत के अनुसार है : सं०* वर्तेत>वट्टे। (६) केवल परस्मैपद का प्रयोग मिलता है, आत्मनेपद का प्रायः नही। (७) रूपो की दृष्टि से यह कुछ बातो मे सास्कृत की ओर झुकी है जो मध्य देश मे रहने का प्रभाव है, किन्तु साथ ही, महाराष्ट्री का भी इससे काफी साम्य है।

**पैशाची**

महाभारत मे 'पिशाच' जाति का उल्लेख है। ये उत्तर-पश्चिम मे कश्मीर के पास रहते थे। ग्रियर्सन पैशाची को वही की 'दरद' से प्रभावित भाषा मानते है। हार्नले इसे द्रविडो द्वारा प्रयुक्त प्राकृत मानते है। पुरुषोत्तम देव ने अपने प्राकृतानुशासन मे संस्कृत और शौरसेनी का इसे विकृत रूप माना है। इस प्रकार इसको लेकर काफी विवाद है। पैशाची मे साहित्य नही के बराबर है। यो ऐसा अनुमान लगाने के आधार है, कि कभी इसमे काफी साहित्य था। गुणाढ्य का वृहत् कथा सग्रह 'वृहत्कथा' मूलतः

इसी मे था। इसके अब केवल दो संस्कृत रूपांतर ही—वृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर—शेप है। हम्मीरमर्दन तथा कुछ अन्य नाटको मे कुछ पात्रों ने इसका प्रयोग किया है। इसकी मुख्य विशेपताएँ हैं: दो स्वरों के बीच मे आने वाले स्पर्श वर्गों के तीसरे और चौथे घोप व्यजनो का क्रमशः पहला और दूसरा अर्थात् अघोप हो जाना · गगन>गकन, मेघः>मेखो, दामोदर>तामोतर, राजा>राचा। किसी भी भापा मे अघोपीकरण के कुछ उदाहरण तो मिलते है, किन्तु ऐसी सामान्य प्रवृत्ति नही मिलती।

**महाराष्ट्री :**

इस प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। जूल ब्लाक ने मराठी का विकास इसी के बोलचाल के रूप मे माना है। कुछ लोग इसे केवल महाराष्ट्र तक सीमित न मानकर महाराष्ट्र अर्थात् पूरे भारत की भापा मानने के पक्ष मे हैं। कुछ लोग इसे काव्य की कृत्रिम भाषा मानते रहे है। महाराष्ट्री प्राकृत साहित्य की दृष्टि से बहुत धनी है। यह काव्य-भापा रही है। गाहा सत्तसई (हाल), रावणवहो (रावरसेन) तथा वज्जालग्ग (जयवल्लभ) इसकी अमर कृतियाँ है। महाराष्ट्री की कुछ प्रमुख विशेपताएँ ये है . (१) इसमे दो स्वरो के बीच आने वाले अल्पप्राण स्पर्श (क्,त्, प्, द्, ग् आदि प्रायः लुप्त हो गएहै (प्राकृत>पाउअ, गच्छति>गच्छइ), (२) उसी स्थिति मे महाप्राण स्पर्श (ख्, थ्, फ्, ध्,घ्) का केवल 'ह' रह गया है (क्रोधः>कोहो, कथयति>कहेइ, सुख>मुह), (३) ऊष्म ध्वनियो स, श, का प्रायः 'ह' हो गया है (तस्य>ताह, पापाण>पाहाण)।

**अर्धमागधी :**

अर्धमागधी का क्षेत्र मागधी और शौरसेनी के बीच मे है अर्थात यह प्राचीन कोसल के आस-पास की भापा है। इसमे मागधी की प्रवृत्तियाँ पर्याप्त मात्रा मे (तथा कुछ शौरसेनी की) मिलती है। इसीलिए इसका नाम अर्धमागधी है। इसका प्रयोग प्रमुखतः जैन साहित्य मे हुआ है। इसकी कुछ मुख्य विशेपताए है: (१) ष्, श् के स्थान पर प्रायः स् (श्रावक>सावक, वर्प>वास) का प्रयोग। (२) अनेक स्थलो पर दत्य ध्वनियों का मूर्धन्य हो जाना (स्थित—ठिय, कृत्वा—कट्टु)। यह प्रवृत्ति अन्य

प्राकृतो की तुलना मे इसमे अधिक है। (६) चवर्ग के स्थान पर कहीं-कही तवर्ग मिलता है (चिकित्सा—तेइच्छा)। (४) जहाँ कुछ अन्य प्राकृतो मे स्वरो के बीच स्पर्श का लोप मिलता है, वहां इसमे 'य' ध्वनि मिलती है (सागर>सायर, स्थित>ठिय)। (५) गद्य और पद्य की भाषा के रूपो मे अन्तर है। सं० अः (प्रथमा एक वचन) के स्थान पर प्रायः गद्य मे मागधी की तरह 'ए' का प्रयोग हुआ है, और प्राय पद्य मे शौरसेनी के समान 'ओ' का ।

**मागधी :**

मागधी का मूल आधार मगध के आस-पास की भाषा है। लास्सन महाराष्ट्री एव मागधी को एक मानते थे। कुछ लोग इसका सम्बन्ध महाराष्ट्र से मानते है। मागधी मे कोई स्वतन्त्र रचना नही मिलती। संस्कृत नाटको मे निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष मे मिलता है। इसकी प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित है: (१) इसमे स, ष, के स्थान पर 'श' मिलता है. (सप्त>शत्त, पुरुष>पुलिश), (२) इसमे 'र' का सर्वत्र 'ल' हो जाता है: (राजा>लाजा), (३) प्रथमा एक वचन मे सस्कृत अः के स्थान पर यहाँ ए मिलता है: (देवः>देवे, सः>शे)

**केकय :**

इसका क्षेत्र प्राचीन केकय प्रदेश था, जहा आज लहँदा (पाकिस्तान मे) बोली जाती है।

**टक्क :**

इस प्राकृत का क्षेत्र वह है जो मूलतः पजाबी का क्षेत्र है, अर्थात भारत मे पजाब तथा पाकिस्तान के प्रात का कुछ भाग।

**खस :**

इस नाम की प्राकृत का कही उल्लेख नही है, किन्तु सुनीतिकुमार चटर्जी तथा कुछ अन्य लोग हिमाचल प्रदेश, गढवाल, कुमायू तथा नेपाल मे बोली जाने वाली पहाडी बोलियो का विकास 'खस' अपभ्रंश से मानते है। यदि वहाँ कोई खस अपभ्रंश थी, तो उसकी पूर्वजा प्राकृत को खस प्राकृत जा सकता है। यो मेरे विचार मे इस क्षेत्र मे शौरसेनी प्राकृत का

ही एक उत्तरी रूप था, जो कुछ स्थानीय विशेपताओं मे ही परिनिष्ठित शौरसेनी से भिन्न था। ग्रियर्सन का यह मानना कि पहाड़ी भाषाएँ राजस्थानी का विस्थापित रूप है, मेरी उपर्युक्त मान्यता का समर्थन करता है।

**व्राचड :**

व्राचड अपभ्रंश की पूर्वजा प्राकृत के लिए इस नाम का प्रयोग किया जा रहा है। इसका क्षेत्र प्राचीन सिंध क्षेत्र था। कल्पितनामा इस प्राकृत के विपय मे कुछ विशेप ज्ञात नही है।

## प्राकृत भाषाओं में कुछ सामान्य विशेषताएँ

(१) ध्वनि की दृष्टि से प्राकृत भापाएँ पालि के पर्याप्त निकट है। इनमे भी पालि की तरह ह्रस्व ए और ओ और ळ् ळ्ह का प्रयोग चलता रहा। ऐ, औ, ऋ, लृ का प्रयोग नही हुआ। ऋ का प्रयोग लिखने मे तो हुआ, किन्तु भापा मे यह ध्वनि थी नही। (२) ऊष्मो मे पालि मे केवल 'स्' का प्रयोग था। प्राकृत मे पश्चिमोत्तरी क्षेत्र मे श्, प्, स् तीनो ही कुछ काल तक थे। मागधी मे केवल 'श्' है। अन्य वहुतो मे पालि की तरह प्रायः केवल 'स्' (जैसे अर्धमागधी मे) मिलता है, और कुछ मे श्, ष् (पैशाची)। (३) प्राकृतो मे 'न' का विकास प्रायः 'ण' रूप मे हुआ है। (४) ध्वनियो के विकास के कुछ विशेप रूप भी इस काल मे दिखाई पड़ते है, यद्यपि वे सार्वभौम न होकर प्राय क्षेत्रीय अधिक है : (क) स्वरमध्यग अघोप अल्पप्राण स्पर्श का घोप : (मूकः>मूगो, लेष्टु>लेड्डु), (ख) स्वरमध्यग घोप और अघोप अल्पप्राण स्पर्श का लोप (सागर> साअर), (ग) महाप्राण>ह (भवति>होति, मुख>मुह, कथा> कहा)। (५) प्राकृतो मे व्यजनान्त शव्द प्राय. नही है। (६) द्विवचन के रूपो का प्रयोग (सज्ञा, क्रिया आदि मे) प्राकृतो मे नही मिलता। 'नीय' प्राकृत अपवाद है, जिसमे कुछ द्विवचन के रूप है। (७) वैदिकी और सस्कृत, सयोगात्मक भापाएँ थी। पालि मे भी यह विशेपतः सुरक्षित है, किन्तु प्राकृत काल मे भाषा अयोगात्मकता या वियोगात्मकता की ओर तेजी से वढने लगी।

तृतीय प्राकृत :

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, तृतीय प्राकृत मे **अपभ्रंश** भापा

आती है। तथाकथित अवहट्ट, जो अपभ्रंश एव आधुनिक आर्यभापाओ के बीच की कडी कही जाती है, सन्धिकालीन रूप है, अतः तृतीय प्राकृत की अन्तिम सीमा पर उसे भी रख सकते है।

**अपभ्रंश** (५०० ई० से १००० ई०)

अपभ्रंश तथा 'अवहट्ट' का अर्थ है 'गिरा हुआ', 'विगडा हुआ'। प्राकृत की तुलना मे भी जिस भाषा मे ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणिक परिवर्तन हो गया था उसे पडितो ने 'अपभ्रंश' या 'अवहट्ट' ('अपभ्रष्ट' का विकसित रूप) नाम से अभिहित किया। आजकल अपभ्रंश और अवहट्ट को लेकर कई तरह के मत व्यक्त किए गए है : (क) सामान्यतः अपभ्रंश को प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओ (हिन्दी, मराठी, बगला आदि) के बीच की कडी माना जाता है। (ख) कुछ लोग अवहट्ट को अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओ के सधिकाल की भापा मानते है। (ग) प्रस्तुत पक्तियो के लेखक की धारणा यह है कि अपभ्र श और अवहट्ट एक ही भाषा के नाम है। यह मात्र सयोग है कि तीन-चार संधिकालीन कवियो मे अवहट्ट नाम का प्रयोग हुआ है (विस्तार के लिए देखिए प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक की पुस्तक 'हिन्दी भाषा' का 'प्रवेश' भाग)। (घ) कुछ थोडे लोगो की धारणा यह भी है कि अपभ्र श प्राकृत और आधुनिक भाषाओ के बीच की कडी नही है, अपितु वह भी प्राकृतकालीन ही एक क्षेत्रीय भाषा है, या एक प्राकृत है। इन चारो बातो पर विचार करने पर मुझे निम्नाकित सम्भावनाए दिखाई पडती है : अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भापाओ के बीच की कडी है, हर आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का जन्म किसी-न-किसी अपभ्रंश से हुआ है तथा अवहट्ट अपभ्रंश से अलग कोई भाषा नही है। अपभ्रश को ही कुछ लोगो ने अपभ्रष्ट, अवहट्ट आदि कहा है। भाषा के अर्थ मे अपभ्रश नाम का प्रयोग छठी सदी से मिलने लगता है।

**वोलियां :**

यो तो 'प्राकृत-सर्वस्व' ग्रथ मे अपभ्र श के २७ भेद स्वीकार किए गए है, किंतु मुख्य अपभ्रंश केकय, टक्क, व्राचड, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी मानी जा सकती है, जिनके स्थान वे ही थे, जिनका

उल्लेख पीछे प्राकृतो के प्रसंग मे हो चुका है। डॉ० चटर्जी के खस नाम की एक अपभ्रंश की भी कल्पना की है जिसका स्थान पर्वतीय क्षेत्रो मे माना है। यो याकोबी ने अपभ्रंश के चार भेद, तगारे ने तीन भेद तथा नामवर सिंह ने दो भेद किए है, किन्तु ये भेद साहित्य मे प्रयुक्त भाषा के आधार पर किए गए है। प्राकृतो और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की कडी के रूप मे अपभ्रंश के ६-७ भेद मानने ही पडेंगे।

**विशेषताएं :**

(१) 'अ' का पूर्वी तथा पश्चिमी अपभ्रंशों मे सवृत-विवृत का भेद था। ऋ का लिखने मे प्रयोग था, किन्तु उसका उच्चारण रि होता था। श् का प्रचार केवल मागधी (सम्भवतः पूर्वी मागधी) मे था। ळ महाराष्ट्री मे तो था ही, साथ ही उडीसा मे बोली जाने वाली मागधी एवं गुजरात, राजस्थान, बॉगड्, पहाडी मे बोली जाने वाली शौरसेनी मे भी था। ळ्ह भी कही-कही था। (२) स्वरो का अनुनासिक रूप (ऋ का नही) प्रयुक्त होने लगा था। (३) सगीतात्मक स्वराघात समाप्त हो चुका था। बलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था। (४) अपभ्रंश एक उकार-बहुला भाषा थी। यो तो 'ललितविस्तर' तथा 'प्राकृत धम्मपद' आदि ग्रथो मे भी यह प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु वहा यह प्रवृत्ति अपने बीज रूप मे है। अपभ्रंश मे यह बहुत अधिक है, जहाँ से यह ब्रजभाषा या अवधी आदि को मिली है (जैसे एक्कु, कारणु, पियासु, अंगु, मूलु और जगु आदि)। (५) ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से जो प्रवृत्तिया (लोप, आगम, विपर्यय, महाप्राण का ह आदि) पालि मे शुरू होकर प्राकृत मे विकसित हुई थी, उन्ही का यहा आकर और विकास हो गया। य का ज, म का वँ, व का ब; ष्ण का न्ह, क्ष का क्ख या च्छ; आदि रूप मे ध्वनि-विकास की बहुत-सी प्रवृत्तिया मिलती है। (६) (विशेषत. परवर्ती अपभ्रंश मे) समीकरण के कारण उत्पन्न द्वित्वता मे एक व्यजन बच गया है, और पूर्ववर्ती स्तर मे क्षतिपूरक दीर्घीकरण हो गया (सं० तस्य, प्रा० तस्स, अप० तासु)। (७) भाषा काफी वियोगात्मक हो गई। (८) नपुसक लिंग समाप्त हो गया। (९) रूपो की सख्या कम हो गई। उदाहरण के लिए संस्कृत मे एक सज्ञा के कारकीय रूप लगभग २० होते थे,

अब ५-६ ही रह गए।

**अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भव**—इन भाषाओ का उद्भव विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशो से हुआ, जिसे इस प्रकार दिखाया जा सकता है—

| अपभ्रंश | | आधुनिक भाषाए तथा उपभाषाएं |
|---|---|---|
| शौरसेनी | ...... | **पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाडी, गुजराती** |
| केकय | ...... | लहँदा |
| टक्क् | ...... | पजावी |
| व्राचड | ...... | सिधी |
| महाराष्ट्री | ...... | मराठी |
| मागधी | ...... | बिहारी, बगाली, उडिया, असमिया |
| अर्धमागधी | ...... | पूर्वी हिदी |

कहना न होगा कि उपर्युक्त सूची मे जो नाम काले टाइप मे है, वे हिन्दी के अग है। **इस प्रकार हिन्दी भाषा का उद्भव अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी तथा अर्धमागधी रूपों से हुआ है।**

## आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं (१००० से अब तक)

लगभग १००० ई० के आस-पास अपभ्रंश के विभिन्न रूपो से उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ का विकास हुआ। आधुनिक भाषाओ मे भारतीय साहित्य रचना तो ११०० ई० मे या उसके भी बाद शुरू हुई किन्तु, उनका जन्म १००० ई० के आसपास हो चुका था। वस्तुत कोई भी भाषा जन्म लेते ही साहित्य की भाषा नही बनती। पैदा होने के सौ-डेढ सौ वर्ष बाद स्वीकृति मिलने तथा उसका स्वरूप कुछ निश्चित होने पर ही लोग उसे साहित्य-रचना के लिए अपनाते है। यहाँ सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ का परिचय दिया जा रहा है।

**सिंधी :**

'सिंध' शब्द का संबध सं० सिधु से है। सिधु नदी के कारण ही सिध

प्रदेश 'सिंध' कहलाया और वहा की भाषा 'सिंधी' कहलाई। सिंधी के अधिकाश बोलने वाले पाकिस्तान के सिंध प्रात मे है, किन्तु कुछ भारत मे भी है जो मुख्यतः बबई, अजमेर तथा दिल्ली आदि मे है। इसके बोलने वालो की ठीक संख्या अज्ञात है। सिंधी का विकास व्राचड प्राकृत से विकसित व्राचड अपभ्रंश मे हुआ है। सिंधी बोलने वाले मुख्यत. मुसलमान रहे है, इसी कारण सिंधी के शब्द-भडार मे अन्य कई आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ की तुलना मे अरबी-फारसी-तुर्की शब्दो का आधिक्य है, फिर भी सस्कृत तद्भव शब्दो की सख्या पूरे शब्द-भडार का लगभग ७५ प्रतिशत है। सिंधी भाषा मे ग, ज, ड, ब, विशेष प्रकार की अतर्मुखी ध्वनिया है। सिंधी की मुख्य बोलिया ५-६ है: विचौली, सिराइकी, थरेली, लासी, लाडी तथा कच्छी। सिंधी भाषा की लिपि फारसी लिपि के आधार पर बनी हुई है। भारतीय सिंधियो मे कुछ लोग फारसी पर आधारित सिंधी लिपि तथा कुछ लोग देवनागरी लिपि का प्रयोग करते है। पहले सिंधी मे कही-कही गुरमुखी का भी प्रयोग होता था। सिंधी मे प्राचीन साहित्य तो कम है, किन्तु आधुनिक साहित्य अच्छा है।

लहँदा :

'लहँदा' का शाब्दिक अर्थ है 'पश्चिम'। पश्चिमी पजाब मे बोली जाने के कारण इसे 'लहँदा' अथवा 'लहँदी' कहते है। यह मुख्यत. पाकिस्तान मे पजाब प्रात मे बोली जाती है। यो भारत मे भी इसके कुछ बोलने वाले रहते हैं। १९६१ की जनगणना के अनुसार पाकिस्तान मे इसके बोलने वालों की संख्या १ करोड २२ लाख थी। इसका विकास केकय प्राकृत से विकसित केकय अपभ्रंश से मूलतः हुआ है। यो इस पर व्राचड, पैशाची (पश्चिमोत्तर प्रदेश के आर्येतर लोगों की भाषा) तथा टक्क का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इसके शब्द-भंडार मे फारसी-अरबी शब्द काफी है, क्योकि इसके बोलने वाले अधिकाश मुसलमान है। पहले इसके लेखन मे इसकी अपनी लिपि लडा भी प्रयुक्त होती थी, अब फारसी का भी प्रयोग होता है। इसकी मुख्य बोलिया जटकी, मुल्तानी, जागली आदि है। इसमे साहित्य नही के बराबर है।

**पंजाबी :**

'पजाव' फारसी शब्द है जिसका अर्थ है 'पाँच नदियो का देश'। मुख्यतः पजाब मे बोली जाने के कारण इसका नाम पंजाबी है। पंजाबी के कुछ वोलने वाले पाकिस्तान मे तथा अधिकाश भारत मे है। १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत मे पजाबियो की संख्या दो करोड़ तीन लाख थी। इसका विकास टक्क प्राकृत से विकसित टक्क अपभ्रंश से माना जाता है, किन्तु साथ ही इस पर केकय तथा शौरसेनी, तथा पैशाची (कुछ) का प्रभाव रहा है। इनमे सबसे अधिक प्रभाव शौरसेनी का है। पजावी की अपनी पुरानी लिपि लंडा थी जिसे देवनागरी की सहायता से सुधार कर गुरु अगद ने, गुरुमुखी लिपि बनाई है। अब पजाबी गुरुमुखी लिपि मे ही लिखी जाती है। पजाबी मे घ, झ, ढ, ध, भ का उच्चारण कुछ क्ह, च्ह, ट्ह, त्ह, प्ह जैसा होता है। इसकी मुख्य बोलियाँ माझी, डोगरी (अव इसे प्रायः भाषा की स्थिति प्राप्त हो गई है), दोआबी, राठी आदि है। पजावी मे आधुनिक साहित्य तो पर्याप्त मात्रा मे है, किन्तु प्राचीन साहित्य बहुत थोडा है।

**हिंदी :**

हिंदी का मूल अर्थ 'हिंद (स० सिधु>फा० हिदु>हिद) का' है। इसीलिए हिंद की केंद्रीय भाषा के लिए इस नाम का प्रयोग हो रहा है। हिंदी के अतर्गत पाच उपभाषाएँ या बोली-वर्ग है : **पश्चिमी हिंदी** (खडी वोली, हरियाणी, ब्रज, बुदेली, कनौजी का समूह), **पूर्वी हिंदी** (अबधी, बघेली, छत्तीसगढी का समूह), **राजस्थानी** (उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी राजस्थानी का समूह), **पहाड़ी** (पश्चिमी तथा मध्यवर्ती पहाडी का समूह), **बिहारी** (भोजपुरी, मगही, मैथिली का समूह)। १९६१ की जनगणना के अनुसार हिंदी भाषा तथा उसके विभिन्न रूप बोलने वालों की सख्या २२ करोड ५२ लाख थी। इनमे पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसेनी प्राकृत मे विकसित शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ था। वस्तुतः अपने-अपने काल की राष्ट्रभाषा परिनिष्ठित सस्कृत, परिनिष्ठित पालि, परिनिष्ठित अपभ्रंश इसी क्षेत्र की भाषाएँ थी। उसी परम्परा मे आज इस क्षेत्र की हिंदी राष्ट्रभाषा है। पूर्वी हिंदी, अर्ध-

मागधी अपभ्रंश (अर्धमागधी प्राकृत से विकसित, जिसमे कुछ अश शौरसेनी का तथा अधिकाश मागधी का था) से तथा राजस्थानी, शौरसेनी अपभ्रंग के उस रूप से जो राजस्थान मे प्रचलित था (इसे **उपनागर** अपभ्र ग भी कहते है; इसका सवध शौरसेनी प्राकृत से है) विकसित है। पहाडी के वारे मे विवाद है। डॉ० चटर्जी इसे खस अपभ्र ग से जोडते है। मेरे विचार मे शौरसेनी प्राकृत मे विकसित शौरसेनी अपभ्रंश के उस रूप से इसका विकास हुआ जो पहाडी प्रदेश मे वोली जाती थी। साथ ही इस पर ऐतिहासिक कारणो से राजस्थानी तथा पश्चिमी हिदी का भी प्रभाव पड़ा है। यो इस क्षेत्र मे खस जाति के लोग भी रहे है, अत. उनका प्रभाव भी है। विहारी का विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है किंतु इस पर पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी तथा पहले शौरसेनी का भी पर्याप्त प्रभाव पडा है। आगे इनके वारे मे विस्तृत जानकारी दी गई है।

**गुजराती :**

'गुजरात' नाम का सवध 'गुर्जर' जाति से है: गुर्जर+त्रा>गज्जरता>गुजरात। गुजरात की भाषा गुजराती है। १९६१ की जनगणना के अनुसार गुजराती के वोलने वाले लगभग २ करोड ३ लाख थे। तेसितोरी के अनुसार प्रारम्भ मे गुजराती तथा राजस्थानी एक ही भाषा के दो स्थानीय रूप थे। इस प्रकार इसका सम्वन्ध शौरसेनी प्राकृत तथा शौरसेनी अपभ्रश के उस रूप मे है जो गुजरात मे वोला जाता था। उस प्राकृत तथा अपभ्रश को कुछ लोगो ने अलग नाम 'लाटी प्राकृत' और 'नागर अपभ्रश' दिया है। गुजराती की लिपि अपनी है जिसमे शिरोरेखा नही होती। गुजराती साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त सपन्न भाषा है। इसकी मुख्य वोलियाँ काठियावाडी, पट्टनी, सुरती आदि है।

**मराठी :**

महाराष्ट्र की भाषा मराठी का नाम सं० शब्द 'महाराष्ट्रीय' से विकसित है। १९६१ की जनगणना के अनुसार इसके वोलने वालो की सख्या लगभग ३ करोड ३३ लाख थी। इसका विकास महाराष्ट्री प्राकृत से विकसित महाराष्ट्री अपभ्र ग से हुआ है। इसकी लिपि देवनागरी है किंतु कुछ लोग मोडी का भी प्रयोग करते है। इसकी मुख्य वोलियाँ कोकडी (इसे

लोग भाषा मानने लगे है), नागपुरी, कोष्टी, माहारी आदि है। मराठी साहित्य बहुत सपन्न है।

**बंगला :**

सस्कृत शब्द बग + आल (प्रत्यय) से बगाल बना है, और वहाँ की भाषा बगाली अथवा बँगला है। अब बगाली पश्चिमी बगाल (भारत) तथा बाँगला देश मे बोली जाती है। १९६१ की गणना के अनुसार भारत मे ३ करोड ३८ लाख बँगला भाषी थे तो पाकिस्तान (अब बागला देश मे) २ कडोड ९२ लाख। अर्थात् कुल लगभग ६ करोड। बँगला का सम्बन्ध मागधी प्राकृत से विकसित मागधी अपभ्र श (जिसे गौडी अपभ्र श भी कहते है) से है। इसकी मुख्य बोलियाँ पश्चिम, दक्षिणी-पश्चिमी, उत्तरी, राजबगशी. पूर्वी आदि है। बगला की अपनी लिपि है। बगाली साहित्य बहुत ही सम्पन्न है।

**असमी**

आसाम की भाषा असमी अथवा असमिया १९६१ की जनगणना के अनुसार लगभग ३ करोड ३९ लाल लोगो द्वारा बोली जाती है। इसका सबध मागधी प्राकृत से उत्पन्न मागधी अपभ्र श के उत्तर पूर्वी रूप से है। यो इस पर प्राचीन बँगला का बहुत अधिक प्रभाव पडा है। असमी की अपनी लिपि है, जो बँगला से बहुत मिलती-जुलती है। इसकी मुख्य बोली विश्नुपुरिया है। असमी मे पर्याप्त साहित्य है।

**उड़िया :**

उडीसा की भाषा उडिया है। उडीसा का सबध 'ओड्' शब्द से है, जो मूलतः द्रविड शब्द 'ओड' से निकला है। १९६१ की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वाले लगभग एक करोड सत्तावन लाख थे। उडिया मागधी प्राकृत मे विकसित मागधी अपभ्र श के दक्षिणी-पूर्वी रूप से निकली है। उडिया भापा बँगला से बहुत मिलती-जुलती है किन्तु इसकी लिपि उससे सर्वथा भिन्न है, जो ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित है किन्तु साथ ही तेलगु लिपि से प्रभावित है। उडिया की मुख्य बोलियाँ गजामी, सभलपुरी, भत्री आदि है।

**नेपाली** (पहाडी का तीसरा रूप 'पूर्वी पहाडी'), **सिंहली** तथा **जिप्सी**

भी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे आती है, किंतु वे भारत मे नही है, अतः उनका परिचय नही दिया जा रहा है। ग्रियर्सन ने **खानदेशी** (खान देश मे बोली जाने वाली) तथा **भीली** (राजस्थान की सीमा पर बोली जाने वाली) को भी अलग स्थान दिया था, किंतु अब इन्हे अलग भाषाए नही माना जाता।

## आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण

उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ के वर्गीकरण पर विभिन्न विद्वानो (हार्नले, वेबर, ग्रियर्सन, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा, आदि) द्वारा विभिन्न रूपो मे विचार किया गया है। यहा कुछ प्रमुख का उल्लेख किया जा रहा है—

(अ) इस प्रसंग मे प्रथम नाम हार्नले का लिया जा सकता है। उन्होने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ को ४ वर्गो मे रखा है : (क) पूर्वी गौडियन—पूर्वी हिन्दी (इसी मे बिहारी भी है), बँगला, असमी, उडिया। (ख) पश्चिमी गौडियन—पश्चिमी हिंदी (राजस्थानी भी), गुजराती, सिंधी, पजाबी। (ग) उत्तरी गौडियन—गढवाली, नेपाली आदि पहाडी। (घ) दक्षिणी गौडियन-मराठी।

(आ) हार्नले ने भारतीय आर्य भाषाओ के अध्ययन के आधार पर पिछली सदी मे यह सिद्धात रखा था कि भारत मे आर्य कम-से-कम दो बार आये। पहले आर्य आधुनिक पजाब मे आकर बसे थे। कुछ दिन बाद दूसरे आर्यो का हमला हुआ। जैसे कही कील ठोकने पर कील छेद बनाकर बैठ जाती है और उस बने छेद के स्थान पर जो चीज रहती है, चारो ओर चली जाती है, उसी प्रकार नवागत आर्य उत्तर से आकर प्राचीन आर्यो के स्थान पर जम गये और पूर्वागत पूरब, दक्षिण और पश्चिम मे फैल गये। इस प्रकार नवागत आर्य भीतरी कहे जा सकते है और पूर्वागत बाहरी। इस भीतरी और बाहरी को ग्रियर्सन ने अशतः स्वीकार किया और इसी आधार पर उन्होने अपना पहला वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इसमे ३ वर्ग है· (१) बाहरी उपशाखा—(क) पश्चिमोत्तरी समुदाय (लहँदा, सिंधी), (ख) दक्षिणी समुदाय (मराठी), (ग) पूर्वी समुदाय (उडिया, बगाली,

असमी, विहारी। (२) मध्यवर्गी उपशाखा—(घ) मध्यवर्ती समुदाय (पूर्वी हिन्दी)। (३) भीतरी उपशाखा—(ङ) केंद्रीय समुदाय (पश्चिमी हिन्दी, पजाबी, गुजराती, भीली[1], खानदेशी[2]), (ख) पहाडी समुदाय (पूर्वी, मध्यवर्ती, पश्चिमी)। वाद मे ग्रियर्सन ने एक नया वर्गीकरण सामने रखा जो इस प्रकार है: (क) मध्यदेशी—(पश्चिमी हिंदी) (ख) अन्तर्वर्ती—(I) पश्चिमी हिन्दी से विशेष घनिष्ठता वाली पजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाडी (पूर्वी, पश्चिमी, मध्य,) (II) बहिरग से सम्बद्ध (पूर्वी हिंदी), (ग) वहिरंग भाषाएँ—(१) पश्चिमोत्तरी (लहँदा, सिधी), (२) दक्षिणी (मराठी), (३) पूर्वी (बिहारी, उडिया, बगाली, असमी)।

ग्रियर्सन का वर्गीकरण ध्वनि, व्याकरण या रूप तथा शब्द-समूह इन तीन बातो पर आधारित है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इन तीनो की ही आलोचना की है। उन्ही के आधार पर ग्रियर्सन के कुछ प्रमुख आधार सक्षिप्त आलोचना के साथ यहाँ दिये जा रहे है।

**ध्वनि**

ग्रियर्सन के वर्गीकरण के ध्वन्यात्मक आधार लगभग पंद्रह है, जिनमे केवल प्रमुख चार-पाँच लिये जा रहे है :

(क) ग्रियर्सन के अनुसार 'र' का 'ल' या 'ड' के लिए प्रयोग केवल बाहरी भाषाओ मे मिलता है, किन्तु यथार्थतः ऐसी बात नही है। अवधी, ब्रज, खडी बोली आदि मे भी यह प्रवृत्ति मिलती है, जैसे वर (वल), गर (गला), जर (जल), वीरा (बीडा), भीर (भीड) आदि। (ख) ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी भाषाओ मे 'द' का परिवर्तन 'ड' मे हो जाता है। वस्तुत यह बात भीतरी मे भी मिलती है। हिन्दी मे डीठि (दृष्टि), ड्योढी (देहली), डेढ (दयर्द्ध), डाभ (दर्भ), डाढा (दग्ध), डडा (दड), डोली (दोलिका), डोरा (दोरक), डँसना (दश) आदि देखे जा सकते है। (ग) ग्रियर्सन का कहना है कि 'म्ब' ध्वनि का विकास बाहरी भाषाओ मे 'म' रूप मे हुआ है तथा भीतरी मे 'ब' रूप मे, किन्तु इसके

**१, २, ये दोनो राजस्थानी-गुजराती के रूप है।**

विरोधी उदाहरण भी मिलते है। पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र मे 'जम्बुक' का 'जामुन' या 'निम्ब' का 'नीम' मिलता है। दूसरी ओर बँगला मे 'निम्बूक' का 'लेवू' या 'नेवू' मिलता है। (घ) ऊष्म ध्वनियो को लेकर ग्रियर्सन का कहना है कि भीतरी मे इनका उच्चारण अधिक दवा कर किया जाता है और वह 'स' रूप मे होता है, किन्तु वाहरी मे यह श, ख या ह रूप मे मिलता है। वगाल तथा महाराष्ट्र के कुछ भागो मे निर्वल होकर यह 'श' हो गया है। पूर्वी वगाल और असम मे और भी निर्वल होकर 'ख' हो गया है, और वंगाल तथा पश्चिमोत्तर मे 'ह' हो गया है। जहाँ तक स्वरो के वीच मे 'स' के 'ह' हो जाने का सवध है, वह वाहरी के साथ भीतरी भापाओ मे भी पाया जाता है। सं० एक-सप्तति, प० हिन्दी इकहत्तर, स० द्वादश, प० हि० वारह, सं० करिष्यति, हि० करिहइ। साथ ही वाहरी मे 'स' भी कही-कही है, जैसे लहँदा करेसी (करेगी)। 'ख' वाला विकास बडा सीमित है और मात्र पूर्वक्षेत्रीय है। उसके आधार पर धुर पूर्व और पश्चिम की भापाएँ एक वर्ग मे नही रखी जा सकती। 'श' वाली विशेषता वँगला आदि मे मागधी प्राकृत से चली आ रही है और वह प्रायः निर्वन्ध है। मराठी मे वह वाद का विकास है और सापेक्ष है (इ, ई, ए, य, आदि तालव्य ध्वनियो के प्रभाव से)। इस रूप मे तो भीतरी की गुजराती मे भी यह विकास है जैसे करशे (करिष्यति)। इस प्रकार यह भी भेदक तत्त्व नही है। (ङ) महाप्राण ध्वनियो का अल्पप्राण हो जाना भी ग्रियर्सन के अनुसार वाहरी भापाओ मे है, भीतरीमे नही। हिदी मे भगिनी का बहिन प्राकृत कल्पित रूप इठा (स० इष्टक) का ईंट, प्राकृत कल्पित रूप ऊँठ (स० उष्ट्र) का ऊँट इसके विरोध मे जाते है।

**व्याकरण या रूप-रचना :**

ग्रियर्सन ने इस प्रसग मे पाँच-छ रूप-विपयक आधारो का उल्लेख किया है जिनमे से तीन यहाँ लिये जा रहे है। (क) ग्रियर्सन 'ई' स्त्री प्रत्यय के आधार पर वाहरी वर्ग की पश्चिमी और पूर्वी भाषाओ को एक वर्ग की सिद्ध करना चाहते है, किन्तु वस्तुतः यह तर्क तव ठीक माना जाता जव भीतरी वर्ग मे यह वात न मिलती। हिन्दी मे इस प्रत्यय का प्रयोग क्रिया (गाती, दौडी), परसर्ग (की), संज्ञा (लडकी, वेटी), विशेषण

(बडी, छोटी) आदि कई वर्ग के शब्दो मे खूब होता है, अतः इसे इस प्रकार के वर्गीकरण का आधार नही मान सकते। (ख) भाषा सयोगात्मक से वियोगात्मक होती है और कुछ विद्वानो के अनुसार वियोगात्मक से फिर सयोगात्मक। ग्रियर्सन का कहना है कि सयोगात्मक भाषा सस्कृत से चल-कर आधुनिक भाषाएँ (कारक रूप मे) वियोगात्मक हो गई है, किन्तु आधुनिक मे भी वाहरी भाषाएँ विकास मे एक कदम और आगे वढकर सयोगात्मक हो रही है। जैसे हिन्दी 'राम की किताव', वगाली 'रामेर वोई'। ग्रियर्सन का यह भी कहना है कि भीतरी मे यदि कुछ सयोगात्मक रूप मिलते भी है तो वे प्राचीन के अवशेष मात्र है, अर्थात प्रवृत्ति नही है. अपवाद है। इस प्रकार वाहरी-भीतरी भाषाओ मे यह एक काफी वडा अन्तर है। किन्तु ग्रियर्सन का यह अन्तर भी कसौटी पर खरा नही उतरता। जैसा कि डा० चटर्जी ने दिखाया है तुलनात्मक ढग से जब हम वाहरी और भीतरी के कारक-रूपो का अध्ययन करते है तो देखते है कि सयोगात्मक रूपो का प्रयोग भीतरी मे वाहरी से कम नही है, अत' इस वात को भी भेदक नही माना जा सकता। ब्रज·पूतहि (कर्म), मनहि भौनहि (अधि-करण)। (ग) ग्रियर्सन विशेपणात्मक प्रत्यय 'ल' को केवल वाहरी भाषाओ की विशेषता मानते है, यद्यपि भीतरी मे भी यह पर्याप्त है, जैसे रँगीला, हठीला, भडकीला, चमकीला, गठीला, खर्चीला आदि। (३) शब्द-समूह—इसके आधार पर भी ग्रियर्सन वाहरी भाषाओ मे साम्य मानते है, किन्तु विस्तार से देखने पर यह वात भी ठीक नही उतरती। मराठी-बगाली-सिन्धी मे वगाली-हिदी से अधिक साम्य नही है। इस प्रकार ग्रियर्सन जिन वातो के आधार पर बाहरी-भीतरी वर्गीकरण को स्थापित करना चाहते थे, वे वहुत सपुष्ट नही है।

(इ) डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का वर्गीकरण इस प्रकार है: (क) उदीच्य (सिधी, लहँदा, पजावी), (ख) प्रतीच्य (गुजराती, राज-स्थानी), (ग) मध्यदेशीय (पश्चिमी हिदी), (घ) प्राच्य (पूर्वी हिदी, विहारी उडिया, असमिया, वगाली), (ङ) दक्षिणात्य (मराठी)। डा० चटर्जी पहाडी को राजस्थानी का प्राय रूपातर-सा मानते है। इसीलिए उसे यहाँ अलग स्थान नही दिया है।

(ई) डा० धीरेन्द्र वर्मा ने चटर्जी के वर्गीकरण के आधार पर ही अपना वर्गीकरण दिया है (क) उदीच्य (सिधी, लहँदा, पजावी), (ख) प्रतीच्य (गुजराती), (ग) मध्यदेशीय (राजस्थानी, प० हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, विहारी), (घ) प्राच्य (उडिया, असमी, बगाली), (ङ) दक्षिणात्य (मराठी)। इस वर्गीकरण मे हिन्दी के प्रमुख चारो रूपो को मध्यदेशीय माना गया है।

(उ) श्री सीताराम चतुर्वेदी ने सबधसूचक परसर्ग के आधार पर का (हिदी, पहाडी, जयपुरी, भोजपुरी), दा (पजावी, लहँदा), जो (सिन्धी, कच्छी), नो (गुजराती) एर (बगाली, उडिया, असमी) वर्ग बनाये है। यथार्थतः यह कोई वर्गीकरण नही है। ऐसे तो 'ल', 'र' या 'स', 'श' ध्वनियो के आधार पर भी वर्ग वनाये जा सकते हैं।

किन्तु वस्तुतः वर्गीकरण का आशय यह है कि उसके आधार पर भाषाओ की मूलभूत विशेषताएँ स्पष्ट हो जायँ। उपर्युक्त किसी भी वर्गीकरण मे यह बात नही है, ऐसी स्थिति मे वे सारे व्यर्थ हैं। इनके आधार पर कोई भाषा वैज्ञानिक निर्णय नही निकाला जा सकता। इससे अच्छा है कि इनकी अलग-अलग प्रवृत्तियो का ही अध्ययन कर लिया जाय, या यदि वर्गीकरण जरूरी ही समझा जाय तो दो वाते कही जा सकती है. (१) प्रवृत्तियो के आधार पर इन भाषाओ मे इतना वैभिन्न्य या साम्य है कि सभी वातो का ठीक तरह से विचार करते हुए वर्गीकरण हो ही नही सकता। (२) हाँ, उत्पत्ति या सम्बद्ध अपभ्रशो के आधार पर इनके वर्ग वनाये जा सकते है। किंतु यह ध्यान रहे कि इस प्रकार के वर्गो मे ध्वनि या गठन सबधी साम्य बहुत कम दृष्टियो से मिल सकता है। यो उत्पत्ति भी अपने आप मे महत्त्वपूर्ण है, अतः इसे बिल्कुल निरर्थक नही कहा जा सकता। इस वर्गीकरण का रूप मेरे विचार से यह हो सकता है: १ मध्यवर्ती वर्ग (पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती पहाडी) २ पूर्वीय वर्ग (बिहारी, बगाली, असमी, उडिया) ३. मध्यपूर्वीय वर्ग (पूर्वी हिन्दी), ४ महाराष्ट्री (मराठी), ५ पश्चिमोत्तरी वर्ग (सिधी, लहँदा, पजाबी)।

## हिन्दी का क्षेत्र, उसकी उपभाषाएँ तथा बोलियाँ

हिन्दी भाषा का क्षेत्र हिमालय प्रदेश, पंजाब के कुछ भाग, हरियाणा राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार में है, जिसे हिंदी-(भाषी) प्रदेश कहते हैं। इस पूरे क्षेत्र में हिंदी के पांच बोली-वर्ग या उप-भाषाएँ हैं, जिसके अन्तर्गत मुख्यतः १७ बोलियाँ हैं :

| भाषा | उपभाषाएँ (अथवा बोली वर्ग) | बोलियाँ |
|---|---|---|
| | | १ खड़ी बोली या कौरवी |
| | | २. ब्रजभाषा |
| हिंदी | १ पश्चिमी हिंदी[1] | ३. हरियाणी |
| | | ४. बुन्देली |
| | | ५. कनौजी |
| | | १ अवधी |
| | २. पूर्वी हिंदी | २ बघेली |
| | | ३. छत्तीसगढ़ी |
| हिंदी | | १ पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) |
| | ३ राजस्थानी | २ पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी) |
| | | ३. उत्तरी राजस्थानी (मेवाती) |
| | | ४ दक्षिणी राजस्थानी (मालवी) |
| | ४ पहाड़ी | १. पश्चिमी पहाड़ी |
| | | २ मध्यवर्ती पहाड़ी (कुमायूंनी-गढ़वाली) |
| | | १ भोजपुरी |
| | ५ बिहारी | २ मगही |
| | | ३ मैथिली |

आगे इन सबका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

---

१ मैं पश्चिमी हिंदी में ताजुज्बेकी तथा निमाड़ी को भी मानता हूँ। (दे० 'हिंदी भाषा' का 'प्रवेश' भाग)

**खड़ी बोली :**

'खडी बोली' शब्द का प्रयोग दो अर्थों मे होता है : एक तो साहित्यिक हिंदी खडी बोली के अर्थ मे और दूसरे दिल्ली-मेरठके आस-पास की लोक-बोली के अर्थ मे । यहाँ दूसरे अर्थ मे ही इस शब्दका प्रयोग किया जा रहा है । इसी अर्थ मे कुछ लोग 'कौरवी' का भी प्रयोग करते है । कुरु जनपद की बोली होने के कारण राहुल साकृत्यायन ने इसे यह नाम दिया था । 'खडी बोली' में 'खडी' शब्द का अर्थ विवादास्पदहै । कुछ लोगो ने 'खडी' का अर्थ 'खरी' (Pure) अर्थात् 'शुद्ध' माना है, तो दूसरो ने 'खडी' (Standing)। कुछ अन्य लोगो ने इसका सबध खडी बोली मे अधिकता से प्रयुक्त खडी पाई (गया, बडा, का) तथा उसके ध्वन्यात्मक प्रभाव कर्कशता से जोडा है । (विस्तार के लिए देखिए प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'हिंदी भाषा' के प्रवेश मे 'खडी बोली' ।) यो अभी तक यह प्रश्न अनिश्चित है ! खडी बोली या कौरवी का उद्‌भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है तथा इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, दिल्ली का कुछ भाग, बिजनौर, रामपुर तथा मुरादाबाद है । लोक-साहित्य की दृष्टि से खडी बोली बहुत सम्पन्न है और इसमे पवाडा, नाटक, लोककथा, लोकगीत आदि पर्याप्त मात्रा मे मिलते है । इनका काफी अंश प्रकाशित भी हो चुका है । हिंदी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तथा दक्खिनी एक सीमा तक खडी बोली पर आधारित है । दीर्घस्वर के बाद मूल व्यजन के स्थान पर द्वित्व व्यंजन (बेट्टा, बाप्पू, रोट्टी), महाप्राण के पूर्व इसी स्थिति मे अल्प-प्राण का आगम (देक्खा, भूक्खा), न का ण (अपणा, राणी, जाणा), ल का ळ (काळा, नीळा), अवधी व्यजनात, ब्रज ओकारात के स्थान पर आकारांत (घोडा; अवधी घोड, ब्रज घोरो) आदि इसकी मुख्य विशेष-ताएँ है ।

**ब्रजभाषा :**

ब्रज' का पुराना अर्थ पशुओ या गौओ का समूह' या 'चरागाह' आदि है । पशु-पालन के प्राधान्य के कारण यह क्षेत्र कदाचित ब्रज कहलाया, और इसी आधार पर इसकी बोली ब्रजभाषा अथवा ब्रजी कही जाती है । इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है । ब्रजभाषा

मथुरा, आगरा, अलीगढ, धौलपुर, मैनपुरी, एटा, वदायू, वरेली तथा आस-पास के क्षेत्रो मे बोली जाती है। इसकी मुख्य उपबोलियाँ भरतपुरी, टांगी, माथुरी आदि है। साहित्य और लोक-साहित्य दोनो ही दृष्टियो से व्रज-भापा बहुत सम्पन्न है। हिंदी प्रदेश के वाहर भी भारत के अनेक क्षेत्रो मे व्रजभाषा मे साहित्य-रचना होती रही है। सूरदास, तुलसीदास, नददास, रहीम, रसखान, विहारी, देव, रत्नाकर आदि इसके प्रमुख कवि है। खडी बोली की आकारातता के स्थान पर ओकारातता (घोरो, भलो, छोरो, करेगो, बडो), व्यजनात के स्थान पर उकारात (सवु, मालु), ने के स्थान पर नै, को का कूँ, से का सो, पर का पै आदि इसकी कुछ विशेपताएँ है।

**हरियाणी :**

'हरियाणा' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। 'हरि+यान' (कृष्ण का यान द्वारका इधर से ही गया था), 'हरि+अरण्य' (हरा वन) तथा 'अहीर+आना' (राजपूताना, तिलगाना की तरह) आदि कई मत दिए गए है, किन्तु कोई भी सर्वमान्य नही है। हरियाणी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्र श के पश्चिमी रूप से हुआ है। खडी बोली, अहीरवाटी, मारवाडी, पजावी से घिरी इस वोली को कुछ लोग खडी बोली का पजावी से प्रभावित रूप मानते है। इसका क्षेत्र मोटे रूप से हरियाणा, पजाव का कुछ भाग तथा दिल्ली का देहाती भाग है। इसकी मुख्य वोलियाँ जाट् तथा बाँगरू है। हरियाणी मे केवल लोक-साहित्य है, जिसका कुछ अंश प्रकाशित हो भी चुका है, अनेक स्थानो पर ल का ळ (काळा, सोळा, माळा), एक व्यजन के स्थान पर द्वित्व (बाब्बू भीत्तर, गाड्डी), न का ण (होणा), सहायक क्रिया हूँ, है, है, हो के स्थान पर सूँ, सै, सै, सो, ड का ड (वडा, पेड) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ है।

**बुन्देली :**

'बुन्देले' राजपूतो के कारण मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सीमा-रेखा के झाँसी, छतरपुर, सागर आदि तथा आस-पास के भागो को बुन्देल-खड कहते है। वही की बोली बुन्देली या बुन्देलखडी है। इसका क्षेत्र झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिहपुर, सिवनी, होशगावाद तथा आस-पास के क्षेत्र है। बुन्देली का विकास शौर-

सेनी अपभ्रंश से हुआ है। बुन्देली मे लोक-साहित्य काफी है, जिसमे इसुरी के फाग बडे प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि हिन्दी प्रदेश की प्रसिद्ध लोक-गाथा 'आल्हा' जिसे हिन्दी साहित्य मे भी स्थान मिला है, मूलतः बुन्देली की एक उपबोली बनाफरी मे लिखा गया था। इसकी अन्य उपबोलियाँ राठौरी, लोधाती आदि है। ब्रज के ऐ, औ का ए, ओ (ओर, जेसो), अत्य अल्पप्राणीकरण (भूँक, हात्, दूद, जीव), स का छ, (सीढी—छीडी), च का स (साँचे—साँसे), कर्म-सम्प्रदान मे 'को' के स्थान पर खो, खाँ, खँ का प्रयोग इसकी कुछ विशेपताएँ है।

**कनौजी :**

कनौज (सस्कृत कान्यकुब्ज) इस बोली का केन्द्र है, अतः इसका नाम कनौजी पडा है। यह इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर, हरदोई, पीलीभीत आदि मे बोली जाती है। कनौजी शौरसेनी अपभ्रश से निकली है। यह ब्रजभाषा के इतनी अधिक समान है कि कुछ लोग इसे ब्रजभाषा की ही उपबोली मानते है। कनौजी मे केवल लोक-साहित्य मिलता है, जिसमे से कुछ अश प्रकाशित भी हो चुका है। उकारातता (खातु, घरु, सबु), ओकारातता (हमारो या हमाओ), स्वार्थप्रत्यय इया (जिभिया, छोकरिया) तथा वा (बेटवा बचवा), औ का अउ (कउन), बहुवचन के लिए ह्वार (हम ह्वार = हम लोग) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ है।

**अवधी :**

इस बोली का केन्द्र अयोध्या है। 'अयोध्या' का ही विकसित रूप 'अवध' है, जिससे 'अवधी' शब्द बना है। इसके उद्‌भव के सबध मे विवाद है। अधिकाश विद्वान इसका सबध अर्धमागधी अपभ्रश से मानते है, किन्तु कुछ लोग इससेपालि की समानता के आधार पर इस मत को नहीमानते। अवधी का क्षेत्र लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, मिर्जापुर (अशतः), उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फैजाबाद, गोडा, बस्ती, बहराइच, सुल्तान-पुर, प्रतापगढ, बाराबकी आदि है। अवधी मे साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनो ही पर्याप्त मात्रा मे है। इसके प्रसिद्ध कवि मुल्ला दाऊद, कुतुबन, जायसी, तुलसीदास, उसमान तथा सबलसिह आदि है। ऐ, औ का अइ, अउ या अए, अओ उच्चारण, सज्ञा के तीन रूप (घोर, घोरवा, घोरौना)

स्वार्थे वा का व्यापक प्रयोग (भोलवा, मोरवा), 'ह' (सईस—सहीस, इच्छा—हिच्छा), यार (पसद—परसन्द, वियोग—विरोग) का आगम, कुछ मे महाप्राणीकरण (पुन.—फुन, पेड़—फेड), व का ब (विद्यार्थी, विद्यालय), 'मौसा' के लिए 'मौसिया', व्यजनातता (घोडा—घोर, होत, होव, करत, बड, खोट, नीक) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ है। इसकी मुख्य बोलियाँ वैसवाडी, मिर्जापुरी तथा बनौधी है।

**बघेली :**

बघेले राजपूतो के आधार पर रीवॉ तथा आस-पास का क्षेत्र बघेलखड कहलाता है और वहॉ की बोली को बघेलखडी या बघेली कहते है। बघेली का उद्भव अर्धमागधी अपभ्रश के ही एक क्षेत्रीय रूप से हुआ है। यद्यपि जनमत इसे अलग बोली मानता है, किन्तु भाषावैज्ञानिक स्तर पर यह अवधी की ही उपबोली ज्ञात होती है, और इसे दक्षिणी अवधी कह सकते है। इसका क्षेत्र रीवॉ, नागौद, शहडोल, सतना, मैहर तथा आसपास का क्षेत्र है। कुछ अपवादो को छोडकर बघेली मे केवल लोक साहित्य है। सर्वनामो मे मुझे के स्थान पर म्वॉ, मोही, तुझे के स्थान पर त्वॉ, तोही, विशेषण मे हा प्रत्यय (नीकहा), घोडा का घ्वाड, मोर का म्वार, पेट का प्याट, देत का द्यात आदि इसकी कुछ विशेषताएँ है।

**छत्तीसगढी :**

मुख्य क्षेत्र छत्तीसगढ होने के कारण इसका नाम छत्तीसगढी पडा है। अर्धमागधी अपभ्रश के दक्षिणी रूप से इसका विकास हुआ है। इसका क्षेत्र सरगुजा, कोरिया, बिलासपुर, रायगढ, खैरागढ, रायपुर, दुर्ग, नन्दगॉव, कॉकेर आदि है। छत्तीसगढी मे भी केवल लोक-साहित्य है। छत्तीसगढी की मुख्य उपबोलियॉ सुरगुजिया, सदरी, बैगानी, बिझवाली आदि है। उडिया तथा मराठी की सीमा पर की छत्तीसगढी मे ऋ का उच्चारण रु किया जाता है। कुछ शब्दो मे महाप्राणीकरण (इलाका—इलाखा), अघोषीकरण (बन्दगी—बन्दकी, शराब—शराप, खराब—खराप), स का छ तथा छ का स (सीता—छीता, छेना—सेना) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ है।

**पश्चिमी राजस्थानी :**

राजस्थानी का यह रूप पश्चिमी राजस्थान अर्थात् जोधपुर, अजमेर, मेवाड, सिरोही, जैसेलमेर, वीकानेर आदि मे वोला जाता है। इसे **मारवाड़ी** भी कहते हैं। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से इसका विकास हुआ है। मारवाडी मे साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनो ही पर्याप्त मात्रा मे है। मीरांवाई के पद इसी मे लिखे गये है। मेरवाडी, ढुढारी, मेवाडी, सिरोही आदि इसकी उपवोलियाँ है। पश्चिमी राजस्थानी मे ध् और स् दो क्लिक ध्वनियाँ है। से का सूँ या ऊँ, मे का मॉय का, की, के का नो, नी, ने आदि इसकी कुछ मुख्य विशेपताएँ है।

**उत्तरी राजस्थानी :**

उत्तरी राजस्थान मे इसका क्षेत्र अलवर,गुडगॉव, भरतपुर तथा आस-पास है। इसे **मेवाती** भी कहते है। मेवाती का नाम 'मेव' जाति के इलाके मेवात के नाम पर पडा है। इसकी एक मिश्रित वोली अहीरवाटी है जो गुडगाँव, दिल्ली तथा करनाल के पश्चिमी क्षेत्रो मे बोली जाती है। अन्य वोलियाँ राठी, नहेर, कठर, गुजरी आदि है। इस पर हरियाणी का बहुत प्रभाव है। कर्ता-कर्म नै, कर्म-सप्र० मो, कै, करण-अपादान सै, तै, इसको, उसको आदि के अतिरिक्त ऐको, वैको, झैको, कैहको आदि कुछ विशेपताएँ है। मेवाती मे केवल लोक-साहित्य है। उत्तरी राजस्थानी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रश के उपनागर रूप से हुआ है।

**पूर्वी राजस्थानी :**

राजस्थान के पूर्वी भाग मे जयपुर, अजमेर, किशनगढ आदि मे यह वोली जाती है। इसकी प्रतिनिधि वोली **जयपुरी** है जिसका केन्द्र जयपुर है। जयपुरी को ढुढाणी भी कहते है, क्योकि इस क्षेत्र का पुराना नाम ढुढाण है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित इस वोली मे केवल लोक-साहित्य है। तोरवाटी, काठैंडा, चौरासी आदि इसकी मुख्य उपवोलियाँ है। इसकी कुछ विशेपताएँ अधिकरण मे मालै, मैंने के लिए मनै और मूँनै पूर्णकृदत दीनू, लीनू आदि है।

**दक्षिणी राजस्थानी :**

इन्दौर, उज्जैन, देवास, रतलाम, भोपाल, होशगावाद मे तथा आस-पास इसका क्षेत्र है। इसकी प्रतिनिधि बोली मालवी है, जिसका मुख्य क्षेत्र मालवा है। शौरसेनी अपभ्रश के उपनागर रूप से विकसित इस बोली मे कुछ साहित्य तथा पर्याप्त लोक-साहित्य है। सोडवाडी, रॉगडी, पाटवी, रतलामी आदि इसकी कुछ मुख्य उपबोलियॉ है। कर्म परसर्ग खे, रे, करण-अपा० ती, मारे, सप्र० दे, सारू, सबध थाको, थाका, थाकी, इसकी कुछ विशेषताएँ है।

**पश्चिमी पहाड़ी :**

जौनसार, सिरमौर, शिमला, मडी, चबा तथा आसपास इसका क्षेत्र है। इसे प्राय खस नामक एक कल्पित अपभ्रश से विकसित माना जाता है, किंतु मेरे विचार मे यह शौरसेनी अपभ्रश के उत्तरी रूप से विकसित है। पश्चिमी पहाडी मे केवल लोक साहित्य मिलता है। यह जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, चमेआली, क्योठली आदि का सामूहिक नाम है।

**मध्यवर्ती पहाड़ी :**

शौरसेनी अपभ्र श से विकसित इस बोली का क्षेत्र गढवाल, कुमायूँ, तथा आसपास का कुछ क्षेत्र है। वस्तुत यह गढवाली और कुमायूँनी दो बोलियो का सामूहिक नाम है। इन बोलियो मे लोक-साहित्य तो पर्याप्त मात्रा मे है, साथ ही कुछ साहित्य भी है। कुमायूँनी की मुख्य उपबोलियॉ खसपरजिया, कुमैयॉ, गगोला तथा गढवाली की राठी, बधानी, सलानी, टेहरी आदि है।

**भोजपुरी :**

बिहार के शाहाबाद जिले के भोजपुर गॉव के नाम के आधार पर इस बोली का नाम भोजपुरी पडा है। मागधी अपभ्र श के पश्चिमी रूप से विकसित इस बोली का क्षेत्र बनारस (अंशत ), जौनपुर (अंशत.), मिर्जापुर (अशतः), गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ, बस्ती, शाहाबाद, चंपारन, सारन तथा आसपास का कुछ क्षेत्र है। हिंदी प्रदेश की बोलियो मे भोजपुरी के बोलने वाले सबसे अधिक है। इसमे केवल लोक-साहित्य मिलता है। इधर कुछ वर्षो से साहित्य की रचना

भी हुई है। ये दोनो ही पर्याप्त मात्रा मे प्रकाशित है। भोजपुरी की मुख्य उपबोलियाँ उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी तथा नागपुरिया है। स्वर मध्यम र का लोप (धरि—,धइ लरिका—लडका, करि—कइ), ढ का ह (काही) न्द का न, न्न (बून, सुन्नर). म्ह का म (ब्रम्ह—बरम), म्भ का म्ह (खम्हा), सगीतात्मकता, न का ल (लोट, लंबर, लोटिस) आदि इसकी कुछ विशेपताएँ है।

**मगही :**

सस्कृत 'मगध' से विकसित शब्द 'मगह' के आधार पर इसका नाम आधारित है। मागधी अपभ्र श से विकसित यह बोली पटना, गया, पलामू, हजारीबाग, मुंगेर, भागलपुर मे तथा आसपास बोली जाती है। इसमे लोक-साहित्य काफी है। पूर्वी, टलहा, जगली आदि इसकी कुछ मुख्य उपबोलियाँ है।

**मैथिली :**

मागधी अपभ्र श के मध्यवर्ती रूप से विकसित यह बोली हिंदी क्षेत्र और वगाली क्षेत्र की सधि पर मिथिला मे बोली जाती है। 'मिथिला' से ही इस बोली का नाम का सबध है। दरभगा, मुजफ्फरपुर, पुर्निया तथा मुंगेर आदि इसका क्षेत्र हैं। लोक-साहित्य की दृष्टि से मैथिली बहुत सपन्न है, साथ ही इसमे साहित्य-रचना अत्यत प्राचीन काल से होती चली आई है। हिंदी-साहित्य को विद्यापति जैसे रससिद्ध कवि देने का श्रेय मैथिली को ही है। इनके अतिरिक्त गोविन्ददास, रणजीतलाल हरि-मोहन झा आदि भी इसके अच्छे साहित्यकार है। इसकी मुख्य उप-बोलियाँ उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी, छिकाछिकी आदि है। अवधी की तरह तीन रूप (घोरा, घोरवा, घोरउआ), ड के स्थान पर र (घोरा, सरक); स, श, ष का सयुक्त होने पर ह (मास्टर—महटर, पुष्प—पुहुप), ज का च (मेज—मेज, कमीज—कमेच) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ है।

ऊपर जिन पाँच को उपभाषाएँ कहा गया है, उन्हे, बोली-वर्ग भी माना जा सकता है। जैसा कि सकेतित है अर्थात् बोलियो का **पश्चिमी हिंदी वर्ग, पूर्वी हिंदी वर्ग, राजस्थानी वर्ग, पहाड़ी वर्ग तथा बिहारी वर्ग।**

## हिंदी , उर्दू, हिंदुस्तानी, हिंदुई

पीछे यह सकेत किया जा चुका है कि खडी बोली नाम का एक प्रयोग तो दिल्ली, मेरठ आदि के आस-पास बोली जाने वाली लोक बोली के लिए होता है, जिसे 'कौरवी' भी कहते है, तथा दूसरा प्रयोग आज की साहित्यिक हिदी, उर्दू, हिदुस्तानी की आधार भापा के लिए होता है। वस्तुतः आज हिदी, उर्दू, हिंदुस्तानी नाम का प्रयोग जिन भापा-रूपो के लिए होता है, व्याकरणिक स्तर पर वे प्राय एक ही है,और उनका आधार वह भाषा है जो मूलतः कौरवी, पजावी, ब्रज आदि के योग से बनी होगी, कम-से कम मेरी मान्यता यही है। आज इसी खडी बोली मे जब बोल-चाल के शब्दो (आधारभूत शब्दावली), बहुप्रचलित तद्भव शब्दो, सरल तथा बहुप्रचलित सस्कृतशब्दो तथा सरल और बहुप्रचलित अरबी-फारसी-तुर्की शब्दो का प्रयोग होता है तो उसे **बोलचाल की हिंदी** या **हिन्दुस्तानी** कहते है; उन शब्दो के साथ ही जब सस्कृत के अल्पप्रचलित अतः कठिन शब्दो का भी प्रयोग होता है तो उसे **हिंदी** या **साहित्यिक हिंदी** कहते है, और जब इन शब्दो के साथ अरबी-फारसी-तुर्की के अल्पप्रचलित अतः कठिन शब्दो का प्रयोग होने लगता है तो उसे उर्दू कहते है। यो हिदुस्तानी के दो अन्य रूप भी मिलते है, एक है अग्रेजी-मिश्रित हिदुस्तानी जिसका प्रयोग अग्रेजी पढे-लिखे लोग करते है। इसमे अग्रेजी के ऐसे शब्दो का भी प्रयोग होता है जिन्हे हिदी ने स्वीकार नही किया है: आज ईवनिग मे मुझे एक मीटिग मे लेक्चर देना है। हिदुस्तानी का यह रूप भाषा-मिश्रण (code-mixing) का उदाहरण है। हिदुस्तानी का दूसरा रूप वह है जो हिंदी की अठारह बोलियो के क्षेत्रों मे प्रयुक्त होता है। इस रूप के अठारह उपरूप माने जा सकते है। जैसे भोजपुरी हिंदुस्तानी, ब्रज हिदुस्तानी, मैथिली हिदुस्तानी आदि। क्षेत्रीय हिदुस्तानी के इन रूपो मे स्थानीय तत्त्वो का मिश्रण होता है।

'हिंदुई' शब्द 'हिदू+ई' से बना है। हिदवी, हिदुई या हिन्दुवी नाम का प्रयोग प्राचीन हिंदी के लिए काफी पहले से मिलता है। १३वी सदी मे औफी और अमीर खुसरो ने इसका प्रयोग किया है। 'खालिकबारी' मे

'हिन्दी' और 'हिन्दवी' दोनो का प्रयोग एक ही भाषा के लिए हुआ है, किंतु हिन्दी का प्रयोग केवल कुछ वार है, जवकि हिन्दवी का वहुत अधिक। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले हिन्दी की तुलना मे हिन्दवी नाम ज्यादा प्रचलित था। धीरे-धीरे हिन्दवी नाम उस भापा के लिए सीमित हो गया, जिसमे सस्कृत के शब्द अपेक्षाकृत अधिक थे, और हिन्दुस्तानी उस भाषा को कहने लगे जिसमे अरवी-फारसी के शब्द ज्यादा है। गार्सा द तासी के इतिहास मे 'हिन्दुई' तथा 'हिन्दुस्तानी' नाम ठीक इसी अर्थ मे आए है। अव प्रायः लोग केवल 'दक्खिनी' या दक्खिनी तथा उसके पहले के उत्तर भारत के मसऊद, खुसरो तथा शकरगजी आदि के साहित्य की भापा के लिए ही प्राय· हिन्दुई या हिन्दवी नाम का प्रयोग करते है।

'हिन्दुस्तानी' शब्द हिन्दुस्तान+ई' से वना है। ग्रियर्सन, धीरेन्द्र वर्मा आदि कई लोगो का मत यह है कि यह नाम अंग्रेजो का दिया है। किन्तु मुझे यह शब्द 'तुजुके वावरी' मे भाषा के अर्थ मे मिला है। प्रारभ मे यह 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' का समानार्थी था किंतु आगे चलकर इसका वह अर्थ हो गया जो आज उर्दू का है, अर्थात् हिन्दी का वह रूप जिसमे अरवी-फारसी-तुर्की शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। जैसा कि ऊपर सकेतित है तासी के प्रसिद्ध इतिहास 'इस्त्वार द ल लित्रेत्यूर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी' मे 'ऐंदुस्तानी' (हिन्दुस्तानी) का प्रयोग इसी अथ मे हुआ है। आगे चलकर जव हिन्दी और उर्दू के नाम का प्रयोग एक ही भापा की ऐसी शैलियो के लिए होने लगा जिसमे क्रमश. सस्कृत और अरबी-फारसी के शब्दो का वाहुल्य था तो हिन्दुस्तानी, हिन्दी उर्दू के वीच की उस भापा को कहने लगे जिसमे न तो सस्कृत के कठिन शब्द होते है और न अरवी-फारसी के कठिन शब्द। इसमे तद्भव तथा वहुप्रचलित सस्कृत तत्सम और अरवी-फारसी के वे शब्द होते है जो वोलचाल मे भी प्रयुक्त होते है। गाधी जी ने हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे किया है।

'उर्दू शब्द मूलतः तुर्की भापा का (मेरे विचार मे चीनी का) है तथा इसका अर्थ है 'शाही शिविर' या 'खेमा'। तुर्कों के साथ ही यह शब्द भारत मे आया और इसका यहाँ प्रारभिक अर्थ 'खेमा' या 'फौजी पडाव' था। इस अर्थ मे उत्तरी भारत के कई नगरो मे 'उर्दू वाजार' (फौजी पड़ाव का

बाजार) नाम आज भी मिलता है। मुगल बादशाहो के इन फौजी पड़ावो मे धीरे-धीरे पूर्वी पंजाबी-हरियाणी-कौरवी-बज मिश्रित एक बोली विकसित हुई जिसमे अरबी-फारसी-तुर्की के शब्द काफी थे। शाहजहाँ ने दिल्ली मे लाल किला बनवाया। यह भी एक प्रकार से उर्दू' (शाही और फौजी पडाव) था, किंतु बहुत बडा था अत इसे उर्दू न कहकर 'उर्दू-ए-मुअल्ला' कहा गया तथा यहाँ बोली जाने वाली भाषा 'जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' (श्रेष्ठ शाही पडाव की भाषा) कहलाई। भाषा अर्थ मे 'उर्दू' इस 'जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' का सक्षेप है। भाषा के अर्थ मे उर्दू शब्द का प्रयोग सवसे पहले कब हुआ यह कहना कठिन है, किंतु मोटे ढग से १८वी सदी के मध्य मे यह चल पडा था, यद्यपि इसे ज्यादातर 'हिन्दी' या 'रेख़्ता' (मिश्रित भाषा कहते थे। इसके साथ ही इसे 'हिन्दुस्तानी' या 'उर्दू' नाम से भी अभिहित किया गया। १८५० तक आते-आते इस भाषा के लिए अन्य नामो का प्रचलन बन्द हो गया, और केवल 'उर्दू' नाम चलने लगा।

हिन्दी के मुख्यत: दो रूप प्राचीन कालसे आ रहे थे। एक तो बोली रूप जो ब्रज, अवधी आदि था। और दूसरा उसका एक प्रकार से मिश्रित रूप था जो किसी क्षेत्र से सम्बद्ध न होकर पूरे हिन्दी प्रदेश मे उभर रहा था। गोरखनाथ, खुसरो, कबीर आदि मे इसके प्रारंभिक रूप मिलते है। लगभग ऐसी ही मिश्रित भाषा (अरबी-फारसी-तुर्की शब्दो से युक्त) उर्दू भी थी। आगे चलकर दोनो के मूलाधार एक हो गए तथा अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्दो से लदी भाषा उर्दू कहलाई तो सस्कृत से लदी हिन्दी।

**'हिन्दी' नाम और उसके विभिन्न अर्थ :**

'हिन्दी' शब्द का सम्बन्ध सस्कृत शब्द 'सिधु' से माना जाता है। 'सिधु' सिध नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को 'सिन्धु कहने लगे। यह 'सिन्धु शब्द ईरानी मे जाकर 'हिन्दु' और फिर 'हिन्द' हो गया और इसका अर्थ था 'सिध प्रदेश।' बाद मे ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागो मे परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ मे विस्तार होता गया तथा यह हिन्द' शब्द धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी मे ईरानी का 'ईक' प्रत्यय लगने से 'हिन्दीक' बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। यूनानी 'इंदिका' अ० 'इडिया' आदि इस 'हिन्दीक' के

ही विकसित रूप है। 'हिन्दी' भी 'हिदीक' का ही परिवर्तित रूप है और इसका मूल अर्थ है 'हिन्द का'। इस प्रकार यह विशेषण है किन्तु भाषा के अर्थ मे सज्ञा हो गया है। भाषा के अर्थ मे 'हिदी' शव्द का प्रयोग सबसे पहले कव हुआ, इस पर लोगो ने विचार नही किया है। 'हिदी भापा' लिखते समय मैंने इस दिशा मे थोडी खोज की थी और मुझे इसका पहला 'प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी के जफरनामा' (१४२४ ई०) नामक फारसी ग्रथ मे मिला था। यह वात १९६० से पहले की है। उसके दस वर्ष बाद १९७० मे मुझे इसका एक और भी पुराना प्रयोग एक अन्य फारसी ग्रथ 'सिमरुलऔलिया' (रचना-काल १४वी सदी काअतिम चरण) मे मिलाहै। इसमे सैयद मुबारक ने तत्कालीन सूफी फकीरो के जीवन का वर्णन दिया है। इसमे आता है 'मादरे मोमिना अर्जदास्त कर्द वजवाने हिदी' अर्थात्, मादरे मोमिना (एक दासी) ने हिदी भाषा मे निवेदन किया।' यो इसमे हिदी के जो वाक्य 'खोजा बाला है' (लडका छोटा है) तथा 'पूनां का चॉद भी बाला है' (पूनम का चॉद भी छोटा है) आए है, वे खडी वोली के है। अर्थात् यहॉ हिदी' का प्रयोग खडी बोली हिदी के लिए हुआ है।

वस्तुतः शब्दो मे अरवी, फारसी तथा सस्कृत के आधिक्य की बात छोड दे, तो हिन्दी-उर्दू मे कोई खास अंतर नही है। दोनो एक ही भाषा की दो शैलियॉ है। इसीलिए प्रारम्भ मे 'हिन्दी' शव्द का प्रयोग हिन्दी और उर्दू दोनो के लिए होता था। तजकिरा मखजन-उल-गरायव मे आता है: 'दर जवाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त'। इस उद्धरण मे हिन्दी उर्दू का समानार्थी है तो दूसरी तरफ हिन्दी के सूफी कवि नूर मुहम्मद ने कहा है—

हिन्दू मग पर पॉव न राख्यौ।
का बहुतै जो हिन्दी भाख्यौ॥

यहॉ इस शब्द का प्रयोग हिन्दी के लिए है। मुल्ला वजही, सौदा,

---

१ यो मै 'सिंधु' शब्द को मूलतः सस्कृत न मानकर किसी द्रविड़ शब्द का संस्कृतीकृत रूप मानता हूँ। (दे० मेरी पुस्तक 'हिंदी भाषा' में प्रस्तुत प्रसंग)

मीर आदि ने अपने शेरो को हिन्दी शेर कहा है। गालिब ने भी अपने पत्रो मे कई स्थानो पर हिन्दी-उर्दू को समानार्थी रूप मे प्रयुक्त किया है। प्रस्तुत पक्तियो के लेखक का अनुमान है कि १९वी सदी के प्रथम चरण मे अग्रेजो की विशेष भाषा-नीति के कारण ही इन दोनो को अलग-अलग भाषाएँ माना जाने लगा तथा उर्दू को मुसलमानो से जोड दिया गया तो हिन्दी को हिन्दुओ से। यदि अग्रेज बीच मे न पडे होते तो आज ये दोनो भाषाएँ एक होती। यो भाषाविज्ञानवेत्ता आज भी इन दोनो को एक ही भाषा की दो शैलियाँ मानते है।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग आज मुख्य रूप से चार अर्थो मे हो रहा है :

(क) 'हिन्दी' शब्द अपने विस्तृततम अर्थ मे हिन्दी प्रदेश मे बोली जाने वाली १७-१८ बोलियो का द्योतक है। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' मे 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे होता है, जहाँ ब्रज, अवधी, डिंगल, मैथिली, खडी बोली आदि प्राय सभी मे लिखित साहित्य का विवेचन हिन्दी के अन्तर्गत किया जाता है।

(ख) भाषाविज्ञान मे प्राय 'पश्चिमी हिदी' और 'पूर्वी हिन्दी' को ही हिन्दी मानते रहे है। ग्रियर्सन ने इसी आधार पर हिन्दी प्रदेश की उप-भाषाओ को राजस्थानी, पहाडी, बिहारी कहा था, जिनमे 'हिदी' शब्द का प्रयोग नही है, किन्तु अन्य दो को हिन्दी मानने के कारण 'पश्चिमी हिन्दी' तथा 'पूर्वी हिन्दी' नाम दिया था। इस प्रकार इस अर्थ मे 'हिन्दी' आठ बोलियो (ब्रज, खडी बोली, बुन्देली, हरियाणी, कनौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढी) का सामूहिक नाम है।

(ग) हिदी का अपेक्षाकृत सकुचित रूप खडी बोली हिदी है जिसकी तीन बोलियाँ मानी जाती है . हिदी (सकृतनिष्ठ), उर्दू, हिदुस्तानी।

(घ) 'हिदी' शब्द का सकुचिततम अर्थ है 'सस्कृतनिष्ठ हिदी' (जो ऊपर सकेतित 'ग' की एक शैली है) जो आज हिन्दी प्रदेश की सरकारी भाषा है, पूरे भारत की राजभाषा है, समाचार पत्रो मे जिसका प्रयोग

१ उर्दू को भी हिदी की एक शैली के रूप में इस विकास मे समाहित कर लिया गया है।

होता है तथा जो हिन्दी-प्रदेश के शिक्षा का माध्यम है और जिसे 'परिनिष्ठित हिन्दी' या 'मानक हिन्दी' आदि नामो से भी पुकारते है।

## हिंदी भाषा का उद्भव और विकास[1]

### उद्भव

पीछे हम देख चुके है वैदिक सस्कृत काल मे आर्य भापा प्रदेश मे तीन स्थानीय वोलियाँ विकसित हो चुकी थी पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी। पालि-काल मे एक और स्थानीयवोली दक्षिणी का विकास हो गया। इस प्रकार स्थानीय बोलियो की सख्या चारहो गई। प्राकृत-काल मे स्थानीय वोलियाँ धीरे-धीरे छः-सात हो गई, जिनके नाम थे व्राचड केकय, टक्क, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी। इन्ही से अपभ्र श-काल मे छः-सात अपभ्रंगीय स्थानीय वोलियो का विकास हुआ जिन्हे प्राकृतो के नाम के आधार पर उन्ही नामो से पुकारा जा सकता है: व्राचड, केकय, टक्क, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी। इन्ही अपभ्रंशो से आधुनिक भारतीय भापाएँ उद्भूत हुई है. व्राचड→सिन्धी, केकय→लहँदा, टक्क→पजावी,महाराष्ट्री→मराठी, शौरसेनी→गुजराती, **राजस्थानी पश्चिमी हिंदी, पहाड़ी, अर्धमागधी→पूर्वी हिन्दी**, मागधी→**विहारी**, वॅगला, असमी, उड़िया।

इस प्रकार हिंदी जो पाँच उपभाषाओ अथवा वोली-समूहो (पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, पहाडी, विहारी) का सामूहिक नाम है, शौरसेनी, अर्धमागधी तथा मागथी अपभ्रंश से १००० ई० के आसपास उद्भूत हुई। यहाँ एक वात संकेत करने की है कि यो तो हिंदी के कुछ रूप पालि मे मिलने लगते है, प्राकृत मे उनकी सख्या और भी वढ जाती है तथा अपभ्रंश मे उनमे और भी वृद्धि हो गई है, किन्तु सव मिलाकर इनका प्रतिशत इतना कम है कि १०००ई० के पूर्व हिन्दी का उद्भव नही माना जा सकता। साहित्य के इतिहासो मे कुछ लोगो ने हिन्दी का प्रारम्भ और भी वाद मे माना है; किंतु वास्तविकता यह है कि साहित्य मे प्रयोग के आधार पर वे निष्कर्प आधारित है और साहित्य में भाषा का प्रयोग जन्म के साथ ही नही हो जाता। जव किसी भापा मे

जनमने के बाद कुछ प्रौढता आ जाती है, उसका रूप निखर आता है तथा वह वहुस्वीकृत हो जाती है तभी साहित्यकार उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम वनाता है। इस तरह यदि लगभग ११५० ई० के आस-पास से भी हिंदी साहित्य मिले तो भी उस भाषा का आरभ १००० ई० के आस-पास ही मानना पडेगा।

## विकास अथवा इतिहास

हिंदी भाषा १००० ई० मे जनम कर विकसित होते-होते अब लगभग १००० वर्षो की हो गई है। उसके इन १००० वर्षो के इतिहास अथवा विकास को तीन कालो मे बाँटा जाता है :

### (१) आदिकाल (१००० ई०—१५०० ई०)

हिंदी भाषा अपने आदिकाल मे सभी बातो मे अपभ्रंश के बहुत अधिक निकट थी, क्योंकि उसी से हिंदी का उद्भव हुआ था। आदिकालीन हिंदी की मुख्य विशेषताएँ नीचे दी जा रही है।

**ध्वनि :**

आदिकालीन हिंदी मे मुख्यतः उन्ही ध्वनियो (स्वरो-व्यंजनो) का प्रयोग मिलता है, जो अपभ्रंश मे प्रयुक्त होती थी। मुख्य अन्तर ये है : (१) अपभ्रंश मे केवल आठ स्वर थे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ। ये आठो ही स्वर मूल स्वर थे। आदिकालीन हिंदी मे दो नए स्वर ऐ, औ विकसित हो गए, जो संयुक्त स्वर थे तथा जिनका उच्चारण क्रमश. अए, अओ जैसा था। (२) च, छ, ज, झ सस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश मे स्पर्श व्यजन थे, किंतु आदिकालीन हिंदी मे वे स्पर्श-सघर्षी हो गए और तव से अव तक स्पर्श-संघर्षी ही है। न, र, ल, स सस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश मे दत्य ध्वनियाँ थे। आदिकाल मे ये वर्त्स्य हो गए। अपभ्रंश मे ड़, ढ़, व्यजन नही थे। आदिकाल हिंदी मे इनका विकास हुआ। न्ह, म्ह, ल्ह पहले संयुक्त व्यजन थे, अव वे क्रमशः न, म, ल के महाप्राण रूप हो गए, अर्थात् सयुक्त व्यजन न रह कर मूल व्यजन हो गए। (३) सस्कृत तथा फारसी आदि से कुछ नए शब्दो के आ जाने के कारण कुछ सयुक्त

व्यजन हिदी मे आ गए होगे जो अपभ्र श मे नही थे। कुछ अपभ्रंश शब्दों के लोप के कारण कुछ ऐसे सयुक्त व्यजनो, स्वरानुक्रमो (vowel sequence) तथा व्यजनानुक्रमो (consonant sequence) आदि के लोप की भी सभावना हो सकती है, जो अपभ्र श मे रहे होगे।

**व्याकरण :**

आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण १००० या ११००० ई० के आसपास तक अपभ्रंश के बहुत निकट था। भाषा मे काफी रूप ऐसे थे जो अपभ्र ग के थे। किंतु धीरे-धीरे अपभ्र श के व्याकरणिक रूप कम होते गए और हिन्दी के अपने रूप विकसित होते गए, तथा धीरे-धीरे १५०० ई० तक आते-आते हिन्दी अपने पैरो पर खडी हो गई और अपभ्र श के रूप प्रायः प्रयोग से निकल गए। आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण समवेततः अपभ्रंश व्याकरण से इन वातो मे भिन्न है (१) अपभ्र श सस्कृत, पालि, प्राकृत आदि की तुलना मे वियोगात्मक होते हुए भी एक सीमा तक सयोगात्मक भापा थी। काफी क्रिया तथा कारकीय रूप सयोगात्मक होते थे, किन्तु आदिकालीन हिन्दी मे वियोगात्मक होते रूपो का प्राधान्य हो चला। सहायक क्रियाओ तथा परसर्गो (कारक-चिन्हो) का प्रयोग काफी होने लगा और धीरे-धीरे सयोगात्मक रूप कम हो गए और उनका स्थान वियोगात्मक रूप लेते गए। (२) नपुसक लिंग एक सीमा तक अपभ्रंश मे था यद्यपि, सस्कृत, पालि, प्राकृत की तुलना मे उसकी स्थिति अस्पष्ट-सी होती जा रही थी। आदिकालीन हिन्दी मे नपुसक लिग का प्रयोग प्रायः पूर्णतः समाप्त हो गया। गोरखनाथ मे कुछ प्रयोगो को कुछ लोगो ने नपुंसक लिग का माना है, किन्तु यह मान्यता पूर्णतः असदिग्ध नही कही जा सकती। (३) हिन्दी वाक्य-रचना मे शब्द-क्रम धीरे-धीरे निश्चित होने लगा था। अपभ्रंग मे शब्द-क्रम बहुत निश्चित नही था।

**शब्द-भण्डार .**

आदिकालीन हिन्दी का शब्द-भंडार अपने प्रारम्भिक चरण मे अपभ्र श का ही था किन्तु धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन आते गए, जिनमे उल्लेख्य दो-तीन है : (१) भक्ति-आदोलन का प्रारम्भ हो गया था, अतः तत्सम् शब्दावली, आदिकालीन हिन्दी मे अपभ्र श की तुलना मे कुछ वढने

लगी थी। (२) मुसलमानो के आगमन से कुछ पश्तो, फारसी-अरबी-तुर्की शब्द हिन्दी मे आए। उदाहरणार्थ · गोरखवानी मे अकलि, नूर, गूँगा, अलह, काजी, पृथ्वीराजरासो मे अब्बीर, नजर, जीन, सोर, गाजीस मसेर, चन्दायन मे खून, तुरसी, सुरमा मीर आदि। (३) (भक्ति-आन्दोलन तथा मुसलमानी शासन का प्रभाव समाज पर भी पडा और जिसके परिणामस्वरूप इस वात की भी सभावना हो सकती है कि कुछ ऐसे पुराने शब्द जो अपभ्रंश मे प्रचलित थे, इस काल मे अनावश्यक अथवा अल्पावश्यक होने के कारण या तो हिन्दी शब्द-भडार से निकल गए या फिर प्रयोग बहुत कम हो गया।

**साहित्य में प्रयोग .**

इस काल मे साहित्य मे प्रमुखत: डिगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, व्रज तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है। इस काल के प्रमुख हिन्दी साहित्यकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह, चन्दबरदायी, कबीर, ख्वाजा बदा नेवाज तथा शाह मीराजी आदि है।

## (२) मध्यकाल (१५०० ई०—१८०० ई०)

**ध्वनि :**

इस काल मे आकर ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-भडार के क्षेत्र मे मुख्यत. आगे दिए गए परिवर्तन हुए। ध्वनि के क्षेत्र मे दो-तीन बाते उल्लेख्य हैं : (१) फारसी की शिक्षा की कुछ व्यवस्था तथा दरबार मे फारसी भाषा का प्रयोग होने से उच्च वर्ग मे तथा नौकरी-पेशा लोगों मे फारसी का प्रचार हुआ, जिसके कारण उच्च वर्ग के लोगो की हिन्दी मे तुर्की-अरबी-फारसी के काफी शब्द प्रचलित हो गए और क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ये पाँच नए व्यजन हिन्दी मे आ गए। (२) शब्दात का 'अ' कम-से-कम मूल व्यजन के बाद आने पर लुप्त हो गया। अर्थात् 'राम' का उच्चारण 'राम्' होने लगा। मानस के अनेक छद दोषपूर्ण हो जाएँगे यदि उनमे 'राम' न पढकर 'राम्' पढा जाए : राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम। किन्तु 'भक्त' जैसे शब्दो मे जहाँ अ के पूर्व सयुक्त व्यंजन था, 'अ' बना रहा। कुछ स्थितियो मे अक्षरात 'अ' का भी लोप होने लगा। उदाहरण

के लिए आदिकालीन 'जपता' अब उच्चारण मे 'जप्ता' हो गया। (३) ह के पहले का अ कुछ स्थितियो मे ए जैसा उच्चरित होने लगा था। पाडु-लिपियो मे ऐसे 'अ' के स्थान पर 'ए' के प्रयोग से इस बात का अनुमान लगता है।

**व्याकरण :**

व्याकरण के क्षेत्र मे भी मुख्यत तीन ही बाते उल्लेख्य है. (१) इस काल मे हिन्दी भाषा व्याकरण के क्षेत्र मे पूरी तरह अपने पैरो पर खडी हो गई। अपभ्र श के रूप प्राय हिन्दी से निकल गए। जो कुछ बचे थे, वे वह थे जिन्हे हिन्दी ने आत्मसात कर लिया था। (२) भाषा, आदि-कालीन भाषा की तुलना मे और भी वियोगात्मक हो गई। सयोगात्मक रूप और भी कम हो गए। परसर्गो तथा सहायक क्रियाओ का प्रयोग और भी बढ गया। (३) उच्च वर्ग मे फारसी का प्रचार होने के कारण हिन्दी वाक्य-रचना फारसी वाक्य-रचना से प्रभावित होने लगी थी। उदाहरण के लिए हिन्दी की प्रारम्भिक परम्परा के अनुकूल सूर मे आता है 'इन्द्र कह्यो मम करो सहाइ।' यहाँ 'कि' का प्रयोग नही है, किन्तु बाद मे फारसी शब्द 'कि' के प्रयोग से वाक्य बनने लगे। रामप्रसाद निरजनी के 'भाषा योगवासिष्ठ' (१७४१ ई०) मे आता है "वेद मे एक ठौर कहा है कि 'जब लग जीवता रहे तब लग कर्म को करना'।"

**शब्द-भंडार :**

शब्द-भडार की दृष्टि से ये बाते मुख्य है. (१) इस काल मे आते-आते काफी शब्द फारसी (लगभग ३५००), अरबी (लगभग २५००), पश्तो (लगभग ५०), तथा तुर्की (लगभग १२५) से हिदी मे आ गए और इन आगत विदेशी शब्दो की संख्या लगभग ६००० मे ऊपर हो गई। फारसी से कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी आई। (२) भक्ति-आदोलन के चरम विंदु पर पहुँचने के कारण तत्सम शब्दो का अनुपात भाषा मे और भी बढ गया। (३) यूरोप से सपर्क होने के कारण कुछ पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रासीसी तथा अग्रेजी शब्द भी हिंदी मे आ गए।

**साहित्य में प्रयोग :**

इस काल मे धर्म की प्रधानता के कारण राम-स्थान की भाषा अवधी

तथा कृष्ण-स्थान की भाषा ब्रज मे ही विशेष रूप से साहित्य रचा गया। यो दक्खिनी, उर्दू, डिंगल, मैथिली और खडी बोली मे भी साहित्य-रचना हुई। इस काल के प्रमुख साहित्यकार जायसी, सूर, मीराँ, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, देव, बुरहानुद्दीन, नुसरती, कुली-कुतुबशाह, वजही तथा वली आदि है।

## (३) आधुनिक काल (१८०० ई० से अब तक)

**ध्वनि :**

आधुनिक कालीन हिंदी मे ध्वनि के क्षेत्र मे चार-पाँच बाते उल्लेख्य है. (१) आधुनिक काल मे शिक्षा के व्यवस्थित प्रचार के कारण तथा प्रारभ मे हिंदी प्रदेश मे अनेक क्षेत्रो मे कचहरियो की भाषा उर्दू होने के कारण क़, ख़, ग़, ज़, फ़ जो मध्यकाल मे केवल उच्च वर्गो के या फारसी पढे-लिखे लोगो तक प्रचलित थे, इस काल मे प्राय १९४७ तक सुशिक्षित लोगो मे खूब प्रचलित हो गए, किंतु स्वतन्त्रता के बाद स्थिति बदली है और अंग्रेजी मे प्रयुक्त होने के कारण ज़, फ़ तो एक सीमा तक अब भी प्रयोग मे है किंतु क़, ख़, ग़ के ठीक प्रयोग मे कमी आई है। नई पीढी, कुछ अपवादो को छोडकर इनके स्थान पर प्राय. क, ख, ग बोलने लगी है। हिंदी की उर्दू शैली मे इन पाँचो का ठीक उच्चारण होता है। (२) अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ बहुशिक्षित लोगो मे ऑ (कॉलिज, डॉक्टर, ऑफिस, कॉफी आदि मे) ध्वनि भी हिंदी मे प्रयुक्त हो रही है। यो सामान्य लोग उसके स्थान पर आ का प्रयोग करते है। (३) अंग्रेजी शब्दो के प्रचार के कारण कुछ नये सयुक्त व्यजन (जैसे ड्र) हिंदी मे प्रयुक्त होने लगे है। (४) स्वरो मे ऐ, औ हिंदी मे आदिकाल मे आये थे। उस समय इनका उच्चारण अए, अओ था, अर्थात् वे सयुक्त स्वर थे। आधुनिक काल मे, मुख्यत १९४० के बाद ऐ, और औ की स्थिति कुछ भिन्न हो गई है। इस सम्बन्ध मे ३ बाते उल्लेख्य है (क) पश्चिमी हिंदी क्षेत्र मे ये स्वर सामान्यत मूल स्वर के रूप मे उच्चरित होते है। (ख) पूर्वी हिंदी क्षेत्र मे अब भी ये अए, अओ रूप मे सयुक्त स्वर के रूप मे ही प्रयुक्त हो रहे है। (ग) नैया, वैयाकरण, कौआ जैसे शब्दो मे, पश्चिमी

तथा पूर्वी दोनो ही हिंदी क्षेत्रो मे ऐ, औ का उच्चारण क्रमशः सयुक्त स्वर अइ, अउ रूप में अर्थात् सस्कृत उच्चारण के समान होता है। (५) मध्य-काल मे अ का लोप शब्दात मे तथा कुछ स्थितियो मे अक्षरात मे होना आरंभ हुआ था। आधुनिक काल तक आते-आने यह प्रक्रिया पूरी हो गई। अव हिंदी मे उच्चारण मे कोई भी शव्द अकारात नही है। (६) व ध्वनि आदि तथा मध्यकाल मे कुछ अपवादो को छोडकर प्राय. द्वयोष्ठ रूप मे उच्चरित होती थी, अव वह कुछ अपवादो को छोडकर हिंदी मे काफी शव्दो मे कम-से-कम पश्चिमी क्षेत्र मे दन्तोष्ठ्य रूप मे उच्चरित होती है। संभावना यह है कि द्वयोष्ठ्य व का प्रयोग धीरे-धीरे बहुत कम रह जाएगा।

**व्याकरण :**

व्याकरण की दृष्टि से अधोलिखित वाते कही जा सकती है: (१) आदिकाल मे हिंदी की विभिन्न वोलियो के व्याकरणिक अस्तित्व का प्रारंभ हो गया था, किंतु काफी व्याकरणिक रूप ऐसे थे, जो आस-पास के क्षेत्रो मे समान थे। मध्यकाल मे उनमे इस प्रकार के मिश्रण मे काफी कमी हो गई थी। सूर, बिहारी, देव आदि की व्रजभापा तथा जायसी, तुलसी आदि की अवधी इस वात का प्रमाण है। आधुनिक काल तक आते-आते व्रज, अवधी, भोजपुरी मैथिली आदि कई वोलियो का व्याकरणिक अस्तित्व इतना स्वतत्र हो गया है कि उन्हें वडी सरलता से भापा की सज्ञा दी जा सकती है। (२) हिंदी प्रायः पूर्णत एक वियोगात्मक भापा हो गई है। (३) प्रेस, रेडियो शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेपण आदि के प्रभाव से हिंदी व्याकरण का रूप काफी स्थिर हो गया है। कुछ अपवादो को छोडकर हिंदी व्याकरण का रूप सुनिश्चित हो चुका है। व्याकरण के इस स्थिरीकरण मे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का मुख्य हाथ रहा है। (४) कहा जा चुका है कि मध्यकाल मे हिंदी वाक्य-रचना एक सीमा तक फ़ारसी से प्रभावित हुई थी। आधुनिक काल मे अग्रेजी शिक्षा का प्रचार फारसी की तुलना मे कही अधिक हुआ है। साथ ही समाचार-पत्रो, रेडियो तथा सरकारी कामो मे प्रयोग के कारण भी अग्रेजी हमारे अधिक निकट आई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हिंदी भाषा-वाक्य-रचना,

मुहावरा तथा लोकोक्ति के क्षेत्र मे अग्रेजी ने बहुत अधिक प्रभावित है। अंग्रेजी ने विराम-चिह्नो के माध्यम से भी हिंदी वाक्य-रचना को प्रभावित किया है। (५) इधर कुछ वर्षो मे 'कीजिए' के लिए 'करिए', 'मुझे' के लिए 'मेरे को', 'मुझको' के लिए 'मेरे ने', 'तुझ मे' के लिए 'तेरे मे', 'नही जाता है' के स्थान पर 'नही जाता', 'नही जा रहा है' के स्थान पर 'नही जा रहा' जैसे नये रूपो तथा नई वाक्य-रचना का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अर्थात् हिंदी भाषा का रूप-रचना तथा वाक्य-रचना दोनों ही क्षेत्रो मे परिवर्तित हो रही है।

**शब्द-भंडार :**

शब्द-भडार की दृष्टि से १८०० से अब तक के आधुनिक काल को मोटे रूप से छ -सात उपकालो मे विभाजित किया जा सकता है। १८०० से १८५० तक का हिंदी शब्द-भडार मोटे रूप से वही था जो मध्यकाल के अतिम चरण मे था। अतर केवल यह था कि धीरे-धीरे अग्रेजी के अधिकाधिक शब्द हिंदी भाषा मे आते जा रहे थे। १८५० से १९०० तक अग्रेजी के और शब्दो के आने के अतिरिक्त आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के कारण तत्सम शब्दो का प्रयोग बढा और कुछ पुराने तद्भव शब्द परिनिष्ठित हिंदी से निकल गए। उदाहरण के लिए 'इद्री' निकल गया और 'इद्रिय' आ गया, यद्यपि 'इद्री' का बहुवचन 'इद्रिया' अब तक चल रहा है। १९०० के बाद द्विवेदी काल तथा छायावादी काल मे अनेक कारणो से तत्सम शब्दो का प्रयोग बढना आरम्भ हो गया। प्रसाद पत, महादेवी वर्मा का पूरा साहित्य इस दृष्टि से दर्शनीय है। इसके बाद प्रगतिवादी आदोलन के कारण तद्भव शब्दो के प्रयोग मे पुन: वृद्धि हुई तथा तत्सम शब्दो के प्रयोग मे कुछ कमी हुई। १९४७ तक लगभग यही स्थिति रही। १९४७ के बाद के शब्द-भडार मे कई बाते उल्लेख्य है: (क) अनेक पुराने शब्द नए अर्थो मे प्रचलित हो गए है। उदाहरण के लिए 'सदन' शब्द राज्यसभा तथा लोकसभा के लिए प्रयुक्त हो रहा है। (ख) अभिव्यक्ति की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अनेक (फिलमाना, घुसपैठिया) नए शब्द आ गए है। (ग) साहित्य मे नाटक, उपन्यास, कहानी कविता की भाषा बोलचाल के बहुत निकट है, उनमे अरबी, फारसी तथा

अग्रेजी के जन-प्रचलित शब्दो का काफी प्रयोग हो रहा है, किंतु आलोचना की भाषा अब भी एक सीमा तक तत्सम शब्दो से काफी लदी हुई है। (घ) इधर हिंदी को पारिभाषिक शब्दो की बहुत आवश्यकता पडी है क्योंकि हिंदी अब विज्ञान, वाणिज्य, विधि आदि की भी भाषा है। इसकी पूर्ति के लिए अनेक शब्द अंग्रेजी, सस्कृत आदि से लिए गए है तथा अनेक नए शब्द बनाए गए है। स्वतन्त्रता के पूर्व हिंदी मे मुश्किल से ५-६ हजार पारिभाषिक शब्द थे किंतु अब उनकी सख्या लगभग एक लाख से ऊपर है, और दिनोदिन उसमे वृद्धि होती जा रही है। हिन्दी शब्द-भडार अनेक प्रभावो को ग्रहण करते हुए तथा नए शब्दो से समृद्ध होते हुए दिनोदिन अधिक समृद्ध होता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप हिंदी अपनी अभिव्यंजना मे अधिक सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ होती जा रही है।

**साहित्य मे प्रयोग :**

आधुनिक काल राजनीति का है। अतः भारतीय राजनीति के केन्द्र दिल्ली की भाषा खडी बोली, ब्रज, अवधी आदि को पीछे छोड प्रायः एकमात्र हिंदी क्षेत्र की साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई है। अन्य बोलियो मे यदि कुछ लिखा भी जा रहा है तो अपवादतः। यही खडी बोली हिंदी हमारी राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा भी बन गई है।

# हिंदी ध्वनियाँ

हिन्दी ध्वनियो की विकास-परम्परा यो तो मूल भारोपीय भाषा से प्रारम्भ होती है, किन्तु यहाँ हम उतने पीछे न जाकर वैदिक संस्कृत से ही उसे देख रहे है।

## वैदिक ध्वनियाँ

वैदिक सस्कृत की ध्वनियो के बारे मे थोडा विवाद है, किन्तु मोटे ढग से ये ध्वनियाँ थी : **मूल स्वर**—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ; **संयुक्त स्वर**—ए (अइ), ऐ (आइ) ओ (अउ), औ (आउ)। **व्यंजन**—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, व़, स, ष, श, ह, ळ, ळ्ह; **शुद्ध नासिक्य ध्वनि**—अनुस्वार। 'अ' विवृत पश्च था, अर्थात् अ-आ के उच्चारण-स्थान एक थे, 'ऋ' आक्षरिक 'र' तथा 'लृ' आक्षरिक 'ल' थी। स्वरो का **वर्गीकरण है : सवृत** : इ, ई, उ, ऊ, **विवृत**—अ, आ; अग्र—इ, ई, ऋ, ॠ, लृ, **पश्च**—उ, ऊ, अ, आ। **स्पर्श**—पाँचो वर्गो के प्रथम चार-चार व्यंजन; **नासिक्य** ङ, ञ, ण, न, म, **पार्श्विक** : ल, ळ (अल्पप्राण) ळ्ह (महाप्राण); **प्रकंपित**, र; **संघर्षी** : स, ष, श, ह, व। ह के अघोष रूप विसर्ग, उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीय थे। **अर्ध स्वर**—य, व। अर्थात् व दो थे। स्थान प्राय: आज के हिन्दी के ही थे। मुख्य अतर थे : (१) न, ल, स दंत्य थे। (२) ळ, ळ्ह, ट, ठ, ड, ढ, ण, ष मूर्धन्य थे। अनुस्वार शुद्ध नासिक्य ध्वनि था अर्थात् ससार का उच्चारण कुछ 'सअँसार' जैसा होता था।

**सस्कृत ध्वनियाॅ**

सस्कृत मे आकर प्राय: वही ध्वनियाॅ रही। हाॅ थोड़ा-सा परिवर्तन अवश्य हुआ : (१) ए, ओ मूल स्वर हो गए और इनका उच्चारण क्रमश: अर्धविवृत अग्र तथा अर्धविवृत पश्च होने लगा। (२) सयुक्त स्वर ऐ औ क्रमश: अइ, अउ उच्चरित होने लगे। (३) ऋ, ॠ, लृ लेखन मे स्वर थे, किन्तु उच्चारण में ये रि, री, लि्र हो गए। (४) सस्कृत व्यजनों से ळ, ळ्ह निकल गए। यो मेरे विचार मे सामान्य जनता उनका प्रयोग करती थी, सुसस्कृत सस्कृतज्ञ नही।

**पालि ध्वनियाॅ**

ये प्राय: सस्कृतकी ही थी। मुख्य अन्तर थे : (१)ह्रस्व स्वर एँ, ओँ विकसित हो गए; (२) अ आ मे जीभ के स्थान मे भेद हो गया, अ अर्ध-विवृत और आ विवृत; (३) ऐ, औ भापा से निकल गए; (४) ळ, ळ्ह पालि मे है। (५) श, प भापा से प्राय: निकल गए। केवल कुछ क्षेत्रो मे ही उच्चरित होते थे।

**प्राकृत ध्वनियाँ**

ये प्राय: पालि की ही थी। मुख्य अतर यह था कि श, ष लेखन मे पुन: प्रयुक्त होने लगे।

**अपभ्रंश ध्वनियाॅ**

ये प्राकृत के समान ही है।

**हिन्दी ध्वनियाँ**

अन्य भाषाओ की तरह ही हिन्दी मे भी ध्वनियाॅ दो प्रकार की है : स्वर, व्यंजन।

**स्वर :**

स्वर उन ध्वनियो को कहते है जिनके उच्चारण मे (मुँह मे) वायु-मार्ग मे किसी भी प्रकार की पूर्ण या अपूर्ण रुकावट नही होती। परम्परा-गत पुस्तको मे हिन्दी वर्णमालामे निम्नाकित स्वरो का उल्लेख मिलताहै :

अ आ इ ई उ ऊ
ऋ ए ऐ ओ औ
अं अ.

उच्चारण की दृष्टि से इनमे केवल निम्नांकित दस ही स्वर हैं—

अ आ इ ई उ ऊ

ए ऐ ओ औ

क्योंकि 'ऋ' उच्चारण के स्तर पर 'रि' अर्थात् व्यजन (र) और स्वर (इ) का योग है; 'अं' अ तथा अनुस्वार [जो विभिन्न शब्दों मे ङ् (गंगा), मै (चचल), ण् (पडित), न् (आनन्द), म् (पंप) का कार्य करता है] का मिला हुआ रूप है, तथा अः अ + ह (जैसे प्राय. मे) है। इस तरह शेष तीनो अर्थात् ऋ, अं, अः स्वर न होकर स्वर-व्यंजन के मिले हुए रूप है।

इन दस मे एक ऑ मिलाकर स्वरो की सख्या ग्यारह मानी जा सकती है। यह अवश्य है कि ऑ का प्रयोग सभी नही करते। ह्रस्व ए तथा आ भी कुछ शब्दो मे (बेच, ओसारा) मिलते है।

## हिन्दी स्वरो का वर्गीकरण

(१) **मात्रा के आधार पर**—मात्रा के आधार पर स्वर दो प्रकार के होते है. (क) **ह्रस्व**—जिनके उच्चारण मे कम समय लगता है। हिन्दी मे अ, इ, उ, ह्रस्व स्वर है। (ख) **दीर्घ**—जिनके उच्चारण मे अपेक्षाकृत अधिक समय लगे। हिन्दी मे आ, ऑ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ दीर्घ स्वर है।

(२) **जीभ के भाग के आधार पर**—कुछ स्वरो के उच्चारण मे जीभ का अग्रभाग काम करता है, कुछ मे मध्य भाग तथा कुछ मे पश्च-भाग। इसी आधार पर स्वर तीन प्रकार के माने गए है: **अग्र स्वर**—इ, ई, ए, ऐ; **मध्य स्वर**—अ, **पश्च स्वर**—उ, ऊ, ओ, औ, ऑ, आ।

(३) **हवा के नाक और मुँह के रास्ते निकलने के आधार पर**—जिन स्वरो के उच्चारण मे हवा केवल मुँह से निकलती है उन्हे मौखिक या निरनुनासिक स्वर कहते है। अ, आ, ऑ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ ऐसे ही स्वर है। जिन स्वरो के उच्चारण मे हवा नाक से भी निकलती है, उन्हे अनुनासिक स्वर कहते है। उपर्युक्त स्वरो के अनुनासिक रूप है· अँ, आँ, इँ, ईं, उँ, ऊँ, एँ, ऐं, ओं, औं। ऑ के अनुनासिक रूप का प्रयोग

हिन्दी मे नही होता।

(४) **ओष्ठों की स्थिति के आधार पर**—कुछ स्वरो के उच्चारण मे ओष्ठ वृत्तमुखी या गोलाकार होते है। इस आधार पर दो भेद होते है। **वृत्तमुखी**—उ, ऊ, ओ, औ, ऑ; **अवृत्तमुखी**—अ, आ, इ, ई, ए, ऐ।

(५) **जीभ के उठने-न उठने के आधार पर**—जीभ के उठने से मुखविवर सँकरा हो जाता है। इसीलिए जब जीभ वहुत ऊपर उठ जाती है तो उसे सवृत्त तथा वहुत नीचे होती है तो विवृत्त कहते है। वीच मे अर्धसंवृत्त तथा अर्धविवृत्त भी होते है। हिन्दी स्वरो के इस आधार पर निम्नाकित भेद है· (क) **सँवृत्त**—इ, ई, उ, ऊ; **अर्धसवृत्त**—ऐ, ओ; **अर्धविवृत्त**—ऐ, अ, औ, ऑ, **विवृत्त**—आ।

(६) **जीभ के अचल या चल होने के आधार पर**—स्वर प्रकृति के आधार पर मूल और संयुक्त दो प्रकार के होते है। **मूल स्वर** मे जीभ एक स्थान पर होती है। हिन्दी मे अ, आ, ऑ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ मूल स्वर है। **संयुक्त स्वर** मे जीभ एक स्वर के स्थान से दूसरे स्वर के स्थान की ओर चलती है और इस चलने की स्थिति मे उच्चारण हो जाता है। ए, औ, पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र मे मूल स्वर रूप मे उच्चारित होते है, किंतु, पूर्वी हिदी क्षेत्र मे संयुक्त स्वर रूप मे। पूर्वी हिदी प्रदेश मे ऐ 'अ+ए' का संयुक्त रूप है तो औ 'अ+ओ' का।

| | अग्र | मध्य | पश्च |
|---|---|---|---|
| सवृत | इ, ई | | उ, ऊ |
| अर्धसवृत्त | ए | | ओ |
| अर्धविवृत्त | ऐ | अ | औ<br>ऑ |
| विवृत्त | | | आ |

**व्यंजन**

व्यंजन उन ध्वनियो को कहते है जिनके उच्चारण मे (मुख-विवर मे) वायुमार्ग मे पूर्ण या अपूर्ण व्यवधान उपस्थित होता है।

हिन्दी के परम्परागत ग्रन्थो मे हिन्दी वर्णमाला मे निम्नांकित व्यंजन मिलते है :

क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व श
ष स ह

किन्तु उपर्युक्त व्यंजनो के अतिरिक्त प्रयोग मे ड़, ढ़, क़, ख़, ग़, ज़, फ़, व ध्वनियाँ भी है। न्ह, म्ह, ल्ह दिखते है सयुक्त व्यजन पर है मूल। ये क्रमश न, म, ल के महाप्राण हैं। लेखन मे व को छोडकर शेष का प्रयोग तो है किन्तु उच्चारण मे उपर्युक्त व्यजनो मे 'ष' नही है। इसके स्थान पर 'श' का ही उच्चारण होता है। इस तरह उच्चारण के स्तर पर हिन्दी वर्णमाला मे निम्नाकित व्यजन है :

| | |
|---|---|
| क ख ग घ ङ | क़, ख़ ग़ |
| च छ ज झ ञ | ज़ |
| ट ठ ड ढ ण | ड़, ढ़ |
| त थ द ध न | न्ह |
| प फ ब भ म | म्ह फ़ |
| य र ल व | व ल्ह |
| श स ह | |

उपर्युक्त सूची मे दो व है। 'व' तो दोनो ओठो से बोला जाता है तथा 'व' ऊपर के दाँत तथा नीचे के ओठ से। काफी लोग क़, ख़, ग़, ज़, फ़ के स्थान पर क, ख, म, ज, फ, बोलते है। हिन्दी की उर्दू शैली मे क़, ख़, ग़, ज़, फ़ का समुचित प्रयोग होता है। उन्य लोगो मे कम ही लोग ज़, फ़ का ठीक प्रयोग करते है। क़, ख़, ग़, का प्रयोग तो और भी कम लोग करते है।

## हिन्दी व्यंजनों का वर्गीकरण

हिंन्दी व्यजनो को निम्नाकित आधारो पर वर्गीकृत किया जा सकता है .

(१) **स्थान के आधार पर**—जिस स्थान मे उच्चारण किया जाता है वह व्यजन का उच्चारण-स्थान कहलाता है। स्थान के आधार पर निम्नाकित वर्ग वनते है — (क) **ओष्ठ्य** (दोनो ओठो से उच्चरित)—प, फ, ब, भ, म, म्ह, व, (ख) **दतोष्ठ्य** (ऊपर के दाँत, नीचे के ओठ से) —फ, व, (ग) **दंत्य** —त, थ, द, ध, (घ) **वर्त्स्य** (मसूडो के पास से उच्चरित)—न, न्ह, र, ल, ल्ह, स, ज; (ङ) **तालव्य** (तालु से)—च, छ, ज, झ, ञ; (च) **पूर्वतालव्य** (मूर्द्धा तथा तालु की मधि के पास से) —ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़; (छ) **कोमल तालव्य** ( कोमल तालु अर्थात् तालु के सवसे पिछले भाग से)—क, ख, ग, घ, ङ, ख़, ग़, (ज) **जिह्वा-मूलीय** (जीभ की जड से ) — क़, (झ) **स्वरयन्त्रमुखी** (गले के भीतर स्वरयत्र के मुख से)—ह ।

(२) **प्रयत्न के आधार पर** —किसी व्यजन के उच्चारण मे जो यत्न किया जाता है उसे प्रयत्न कहते है। प्रयत्न के आधार पर निम्नाकित वर्ग वनते है (क)**स्पर्श**—जिसके उच्चारण मे एक अग दूसरे का स्पर्श करे क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, व, भ, क स्पर्श व्यजन है। (ख) **संघर्षी**—जिसके उच्चारण मे दो अग एक दूसरे के इतने निकट आ जाए कि वीच से निकलने वाली हवा सघर्ष या घर्षण करती हुई निकले . फ, व, स, ज, श, ख, ग, ह। (ग) **स्पर्श संघर्षी**—जिसके उच्चारण मे दो अग एक दूसरे को स्पर्श करे, साथ ही जव वे एक दूसरे से दूर हटने लगे तो हवा कुछ देर के लिए अगो के समीप रहने के कारण सघर्ष करती हुई निकले। च, छ, ज, झ स्पर्ष-सघर्पी व्यजन है। (घ)**नासिक्य**—जिसके उच्चारण मे हवा नाक से निकले ङ, ञ, ण, न, न्ह, म, म्ह, । (ङ)**पार्श्विक** —जिसके उच्चारण मे जीभ वीच मे स्पर्प करे और हवा एक या दोनो पार्श्वो से निकले · ल, ल्ह।(च)**उत्क्षिप्त**—जिसके उच्चारण मे जीभ ऊपर उठकर झटके के साथ नीचे को आए : ड़, ढ़। (छ) **प्रकंपित**— जिसके

उच्चारण मे कपन हो ' र। (ज) सघर्षहीन सप्रवाह—जिसके उच्चारण मे हवा विना सघर्प के निकलती रहे। इन्हे अर्धस्वर भी कहते है . य, व।

(३) प्राणत्व के आधार पर—'प्राण' का अर्थ है 'हवा'। जिन व्यजनो के उच्चारण मे कम हवा निकलती है उन्हे अल्पप्राण तथा जिनमे अधिक हवा निकलती है उन्हे महाप्राण कहते हैं। अल्पप्राण— क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व, ड; महाप्राण—ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, न्ह, फ, भ, म्ह, ल्ह, ढ।

(४) घोषत्व के आधार पर—गले मे स्थित स्वर-यन्त्र मे स्वर-तन्त्रियों के बीच हवा के घर्षण के साथ जो ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं उन्हे घोप ध्वनि कहते है। ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, न्ह, ब, भ, म, म्ह, य, र, ल, ल्ह, व, ह, ड, ढ, ज़, ग़, व, तथा सभी स्वर घोष है। जिन ध्वनियो के उच्चारण मे यह घर्पण नही होता अर्थात स्वर-तन्त्रिया दूर-दूर रहती है उन्हे अघोष कहते है क, ख, क़, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, स, श, फ़, अघोष है।

अगले पृष्ठ के चार्ट मे हिन्दी व्यजन वर्गीकृत रूप मे दिए गए है।

## हिन्दी ध्वनियो का औच्चारणिक विवरण

**स्वर अ**— अर्धविवृत अवृत्तमुखी ह्रस्व मध्य स्वर। **आ**—विवृत अवृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर। **ऑ**—अर्धविवृत ईषत् वृत्तमुखी पश्च स्वर **इ**—सवृत अवृत्तमुखी ह्रस्व अग्रस्वर। **ई**—सवृत अवृत्तमुखी दीर्घ अग्र स्वर। **उ**—सवृत वृत्तमुखी ह्रस्व पश्च स्वर। **ऊ**— संवृत वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर। **ए**— अर्धसवृत अवृत्तमुखी दीर्घ अग्रस्वर। **ऐ**—अर्धविवृत अवृत्तमुखी अग्र स्वर। **ओ**—अर्धसवृत वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर। **औ**—अर्धविवृत दीर्घ पश्च स्वर।

**व्यंजन : क**—अघोष अल्पप्राण कोमलतातव्य स्पर्श। **ख**—अघोष महाप्राण कोमल तालव्य स्पर्श। **ग**—घोष अल्पप्राण कोमल तालव्य स्पर्श। **घ**—घोष महाप्राण कोमल तालव्य स्पर्श। **ङ**—घोष अल्पप्राण कोमल तालव्य नासिक्य। **क़**—अघोप अल्पप्राण जिह्वामूलीय स्पर्श। **ख़**—अघोष कोमल तालव्य सघर्षी। **ग़**—घोष कोमल तालव्य संघर्षी। **च**—अघोष

## हिन्दी व्यंजन

| प्रयत्न | स्थान | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | द्वयोष्ठ्य | दत्योष्ठ्य | दत | वर्त्स्य | तालव्य | पूर्व-तालव्य | कोमलतालव्य | जिह्वामूलीय | स्वरयत्नमुखी |
| स्पर्श | प् फ्<br>ब् भ् | | त् थ्<br>द् ध् | | | ट् ठ्<br>ड् ढ् | क् ख्<br>ग् घ् | क़् | |
| स्पर्श-सघर्षी | | | | | च् छ्<br>ज् झ् | | | | |
| नासिक्य | म् म्ह | | | न् न्ह् | ञ् | ण् | ङ् | | |
| पार्श्विक | | | | ल् ल्ह् | | | | | |
| प्रकपित | | | | र् | | | | | |
| उत्क्षिप्त | | | | | | ड़ ढ़ | | | |
| संघर्षी | | फ़् व् | | स् ज़् | श् | | ख़् ग़् | | ह् |
| सघर्षहीन सप्रवाह | व् | | | | | | | | |

**टिप्पणी**— स्पर्श तथा स्पर्श-सघर्षी मे ऊपर की पक्तियाँ अघोष और नीचे की घोष है। नासिक्य, पार्श्विक, प्रकपित, उत्क्षिप्त और संघर्षहीन सप्रवाह के खानो की सभी ध्वनियाँ घोष है। संघर्षी मे हर खाने की पहली ध्वनि अघोप और दूसरी घोप है। (श् अघोप है और ह् घोष)।

अल्पप्राण तालव्य स्पर्श सघर्षी। छ—अघोष महाप्राण तालव्य स्पर्श सघर्षी। ज—घोष अल्पप्राण तालव्य स्पर्श-सघर्षी। झ—घोष महाप्राण तालव्य स्पर्श-सघर्षी। ञ—घोष अल्पप्राण तालव्य नासिक्य। ज़—घोष वर्त्स्य सघर्षी। ट—अघोष अल्पप्राण पूर्वतालव्य स्पर्श। ठ—अघोष महाप्राण पूर्वतालव्य स्पर्श। ड—घोष अल्पप्राण पूर्वतालव्य स्पर्श। ढ—घोष महाप्राण पूर्वतालव्य स्पर्श। ण घोष अल्पप्राण पूर्वतालव्य नासिक्य। ड़—घोष महाप्राण पूर्वतालव्य उत्क्षिप्त। ढ़—घोष महाप्राण पूर्वतालव्य उत्क्षिप्त। त—अघोष अल्पप्राण दत्य स्पर्श। थ—अघोष महाप्राण दत्य स्पर्श। द—घोष अल्पप्राण दत्य स्पर्श। ध—घोष महाप्राण दत्य स्पर्श। न—घोष अल्पप्राण वर्त्स्य नासिक्य। न्ह—घोष महाप्राण वर्त्स्य नासिक्य। प—अघोष अल्पप्राण ओष्ठ्य स्पर्श। फ—अघोष महाप्राण ओष्ठ्य स्पर्श। ब—घोष अल्पप्राण ओष्ठ्य स्पर्श। भ—घोष महाप्राण ओष्ठ्य स्पर्श। म—घोष अल्पप्राण ओष्ठ्य नासिक्य। म्ह—घोष महाप्राण ओष्ठ्य नासिक्य। फ़—अघोष दतोष्ठ्य सघर्षी। य—घोष अल्पप्राण तालव्य अर्धस्वर (सघर्षहीन सप्रवाह)। र—घोष अल्पप्राण वर्त्स्य प्रकपित। ल—घोष अल्पप्राण वर्त्स्य पार्श्विक। ल्ह—घोष महाप्राण वर्त्स्य पार्श्विक। ब—घोष अल्पप्राण ओष्ठ्य अर्धस्वर (सघर्षहीन सप्रवाह)। ब—घोष दतोष्ठ्य सघर्षी। स—अघोष वर्त्स्य सघर्षी। श—अघोष तालव्य सघर्षी। ह—घोष स्वरयत्रमुखी सघर्षी।

## हिन्दी ध्वनियो का विकास—सामान्य नियम

हिन्दी ध्वनियो का विकास यो तो फारसी तथा अग्रेजी से भी हुआ है किन्तु मुख्यत, सस्कृत से हुआ है अतः यहाँ उसी को लिया जा रहा है।

### सस्कृत स्वर

(१) **क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम**—सस्कृत शब्दो मे सयुक्त या दीर्घ व्यंजन (द्वित्त) के पूर्व यदि ह्रस्व स्वर हो, तो हिन्दी मे दो व्यजनो के स्थान पर प्रायः एक रह जाता है, तथा शब्द मे मात्रा की उस कमी को पूरा करने के लिए ह्रस्व स्वर प्रायः दीर्घ हो जाता है, जिसे क्षतिपूरक दीर्घीकरण (Compensatory lengthening) कहते है। इसमे

अ का आ, इ का ई, अथवा ए तथा उ का ऊ या ओ हो जाता है :

अ>आ : कर्म>कम्म>काम, सप्त>सत्त>सात, अष्ट>अट्ठ> आठ, हस्त>हत्थ>हाथ, सर्प>सप्प>साप, अद्य>अज्ज >आज।

इ>ई : भिक्षा>भिक्ख>भीख, शिक्षा>सिक्ख>सीख, इक्षु> इक्खु>ईख, जिह्वा>जिब्भ>जीभ।

>ए . छिद्र>छिद्द>छेद, शिम्बा>*सिम्म>सेम, विल्व> विश्ल>बेल।

उ>ऊ · दुग्ध>दुद्ध>दूध, पुत्र>पुत्त>पूत, बुभुक्षा>बुभुक्खा> भूख, उष्ट्र>उट्ट>ऊँट।

>ओ पुस्तिका>पुत्थिआ>पोत्थिअ>पोथी, कुष्ट>कुड्ढ> कोढ>कोढ।

(२) **केन्द्रीकरण का नियम**—अ स्वर मध्य है तथा अन्य स्वर अग्र या पश्च है। इसीलिए 'अ' का उच्चारण सरल है। यही कारण है कि मुख-सुख के लिए प्राय. सभी स्वर केन्द्रीय स्वर अ मे परिवर्तित हो जाते है। इसे केन्द्रीकरण कहते है · आभीर>अहीर, तित्तिर>तीतर, परीक्षा >परख, अगुरु>अगर(बत्ती) आदि।

(३) अक(>अग>अग>अअ>आ)आ मे विकसित हो जाता है: घोटक>घोडा, चणक>चना, दोरक>डोरा, सप्तक>सत्ता, चित्रक>चीता, आदि।

(४) इका(>इगा>इगा>इआ>इअ>ई) 'ई' मे विकसित हो जाती है: शाटिका>साडी, घोटिका>घोड़ी, घटिका>घड़ी, होलिका>होली, आदि।

व्यंजन . मूल

(१) **महाप्राणों के ह होने का नियम**—सस्कृत शब्दो का महाप्राण व्यंजन मुख्यत: यदि वह आदि मे नही है (भू>हो, जैसे कुछ अपवाद है) तो प्रायःह मे परिवर्तित हो जाता है।

ख्>ह . मुख>मुँह, आखेट>अहेर (शिकार), आखेटिक>अहेरी।

घ्>ह् · अरघट्ट>रहँट, मेघ>मेह, प्राघूर्ण>पाहुव।

छ>ह् : ×

झ्>ह् · ×

ट्>ह् ×

ढ>ह् × (कदाचित मूल शब्द आरोढण>आरोहण)

थ>ह् · कथ्>कह्, यूथी>जूही।

ध>ह दधि>दही, वधिर>वहरा, वधू>वहू, साधु>साहु, गोधुम>गेहू।

फ>ह : मुक्ताफल>मुक्ताहल (मोती),कटकफल>कटहल।

भ>ह · आभीर>अहीर, गभीर>गहरा, गर्दभ>गहरा, दुर्लभ> दुलहा।

छ, झ, ठ, ढ से हिन्दी मे 'ह' के विकास के उदाहरण मुझे नहीं मिले।

(२) **घोषीकरण का नियम**—सस्कृत के शब्दो के स्वर मध्यम अघोष अल्पप्राण स्पर्श हिन्दी मे परपरागत तद्भव शब्दो मे घोष अल्पप्राण स्पर्श या स्पर्शसघर्षी हो गये है

क>ग : शाक>साग, ककण>कगन, ककाल>कंगाल, एकादश> ग्यारह।

च>ज . कुचिका>कुजी, पचक>पजा।

ट>ड . ड् ध्वनि हिदी मे अंत्य तथा स्वर-मध्यम स्थिति मे, ड़ हो जाती है, अत· ट का ड होकर नही रुकता, अपितु वह ड़ हो जाता है घोटक>घोडअ>घोड़ा, घोटिका>घोडिआ>घोड़ी, घटिका>घडिआ>घड़ी, अक्षवाटक>अक्खवाडअ> अखाड़ा, गुटिका>गुडिआ>गुडिआ, कीटक>कीडअ> कीड़ा।

त>द . ×

प>व गोपेन्द्र>गोविन्द, उपायन>बायन। प का ब मे विकास हुआ, किंतु अनेक शब्दो मे व शिथिल होकर व हो गया : पूपक> पूवा, अष्टापचाशत>अट्ठावन, आपाक>आँवा, गोपेन्द्र>

गोविन्द, विटपक>विरवा, अग्रपद>अगुवा। कुछ शब्दो मे व का उ हुआ और फिर उ पूर्ववर्ती अ आदि से मिलकर 'औ' हो गया : सपत्नी>सौत, कर्पादिका>कौडी।

(३) **म सम्बन्धी नियम**—अनेक शब्दो मे स्वर मध्यग म् शिथिल होकर वँ हुआ, और फिर व् की अनुनासिकता पूर्ववर्ती स्वर पर चली गई या लुप्त हो गई . आमलक>आँवला, ग्राम>गाँव, कुमार>कुँवर, कुमारी>कुँवारी, श्यामल>साँवला, धूम>धुआँ, चमर>चँवर, भ्रमर>भँवर। कुछ शब्दो मे व और भी शिथिल होकर उ हो गया और पूर्ववर्ती अ, आ से मिलकर वह औ बन गया : दमनक>दौना, गमन+क>गौना, वामन+क>बौना, भ्रमरक>भौरा।

(४) **ण विषयक नियम**—परिनिष्ठित हिन्दी मे प्रयुक्त तद्भव शब्दो मे सर्वत्र ण के स्थान पर न हो गया है ककण>कगन, चणक>चना, प्राघूणक>पाहुना, स्वर्णकार>सुनार, पर्ण>पान, कर्ण>कान।

(५) **व का ब हो जाने का नियम**—कुछ शब्दो मे 'व' का 'ब' हो जाता है · वधू>बहू, वारिद>बादल, वानर>बन्दर, वक्र>बाँका, दूर्वा>दूब, वृद्ध>बूढा।

(६) **य का ज हो जाने का नियम**—कुछ शब्दो मे य का ज हो जाता है . यमुना>जमुना, जमना, यव>जौ, कार्य>काज, यूक>जू, शय्या>सेज, यत्र>जतर।

(७) **ष का प्रायः स**—मुषल>मूसल, कषपट्टिका>कसौटी, षड>साँड, वर्ष>बरस, उषर>ऊसर, आषाढ>असाढ, षष्ठि>साठ। कभी-कभी ख पुरुष>पुरखा, मेष>मेख (मीन-मेख निकालना), षड्राग>खट्राग (मे पडना), झष>झख (मारना), शोषण>सोखना, पाषाण>पखान, वर्षा>बरखा। **कभी-कभी** ह : पाषाण>पहाड, पाहन, कृष्ण>कान्ह। कभी-कभी **छ** : षट्>छ।

(८) **स का प्रायः स**—सर्व>सब, सर्प>साँप, सप्त>सात, सौभाग्य>सुहाग। **कभी-कभी ह** स्ना>नहा, सप्तति>हत्तर (६९, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८) **अपवादतः च** : लालसा>

लालच, कृसरान्न>खिचडी।

(९) **श का प्रायः स**—श्वास>साँस, शत>सौ, विंशति>बीस, शाक>साग, श्यामल>साँवला, शाटिका>साडी, श्रावन>सावन, शृगाल>सियार। **कभी-कभी ह** दश>रह (११, १२, १३, १७, १८), दह (१४), लह (१६), केशरी>केहरी।

(१०) **र का कभी-कभी ल**—वारिद>वादल, हरिद्रा>हल्दी पत्र>पत्तल, चत्वारिंशत्>चालीस, वब्बूर>ववूल, करीर>करील।

(११) **ल का कभी-कभी र**—लाला>राल, लोष्ठक>रोडा, अट्टालिका>अटारी, श्लाघ>सराह् (धातु), कवल>कौर, शृगाल>सियार, वाँगूली>लगूर।

व्यंजन-संयुक्त

सयुक्त व्यजनो का सस्कृत से हिन्दी तक विकास होने मे हम पाते है कि कभी तो इनमे किसी एक या दो का लोप (सप्त>सात, उष्ट्र>ऊँट) हो जाता है और कभी एक (स्ना>नहा) या दोनो परिवर्तित हो जाते (षड>साँड) है, या इसी प्रकार कुछ घटित होता है। इसका विस्तृत विवेचन मेरे विचार मे अभी तक नही हुआ है। कम-से-कम मैने नही देखा। मैने इस दिशा मे कुछ काम किया है जिसके आधार पर सयुक्त व्यजनो के हिन्दी मे विकास के विषय मे निम्नाकित निष्कर्ष निकाले है। उच्चारण के आधार पर व्यजनो को सशक्त या अपेक्षाकृत अशक्त कहा जा सकता है। जिस व्यजन के उच्चारण मे जितनी दृढता होगी वह उतना ही सशक्त और जिसके उच्चारण मे जितनी ही अदृढता होगी वह उतना ही अशक्त होगा। इस दृष्टि से सस्कृत व्यजनो को मै पाँच वर्गो मे रखना चाहूँगा—

(१) **सर्वाधिक सशक्त**—वर्गो के प्रथम चार वर्ण (स्पर्श)
(२) **उनसे अशक्त**—स, ष, श (ऊष्म)
(३) **उनसे भी अशक्त**—वर्गो के पाँचवे वर्ण (नासिक्य)
(४) **उनसे भी अशक्त**—य, र, ल, व (अतस्थ)
(५) **सर्वाधिक अशक्त**—ह

उपर्युक्त के आधार पर सयुक्त व्यजन दो प्रकार के हो सकते है :

(क) **सम** : जिसमे दोनो ही वल की दृष्टि से समान हो। जैसे भक्त, दुग्ध सप्त।

(ख) **विषम** : जिसमे एक वली हो तथा एक निर्वल हो। जैसे अग्नि, कर्म, अंगुष्ठ, जिह्वा।

**सम संयुक्त व्यंजन :**

यदि दोनो समान शक्ति के हो तो पूर्ववर्ती व्यजन का लोप हो जाता है। इसका कारण यह है कि पूर्ववर्ती का उच्चारण पूरा नही होता अत॰ वह परवर्ती की तुलना मे, पूर्णोच्चरित है, उस स्थिति मे, कुछ अशक्त हो जाता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उसके साथ स्वर नही होता। उदाहरणार्थ—

(१) स्पर्श + स्पर्श—भक्त > भत्त > भात, दुग्ध > दुद्ध > दुध, सप्त > सत्त > सात।

(२) अन्तस्थ + अन्तस्थ—आर्यक > आजा, आर्यिका > आजी, कुमायूनी इजा (मा-सर्व > सव (अपवाद कल्य > कल, दे० आगे)

**विषम सयुक्त व्यंजन :**

जैसा कि स्वाभाविक है कि विषम अर्थात् यदि सयुक्त व्यजन मे एक सशक्त हो और एक अशक्त, तो अशक्त का लोप होगा तथा सशक्त **यथावत या कुछ परिवर्तित होकर** वना रहेगा। नासिक्य व्यजन लुप्त होते भी है, तो प्राय पार्श्ववर्ती स्वर को प्रभावित कर जाते है। इसी प्रकार स, श, प, ह आदि अवशिष्ट व्यजन को महाप्राणित कर जाते है।

(१) **स्पर्श × नासिक्य**

**कवर्ग**—अकन > आँकना, पक > पाँक् टक > टाँक्, मग > भाँग।

**चवर्ग**—च ञु > चोंच, प च > पाँच, मक्षिचका > भचिया।

**टवर्ग**—भाण्डक > भाँडा, मण्ड > माँड, मण्डप > माँडव, पण्ड > साँड्, कण्टक > काँटा

**तवर्ग**—इन्धन > ईधन, वन्धन > वाँधना, सधि > सेध।

**पवर्ग**—कम्पन>कॉपना, (शिम्बा>सेम अपवाद है)।

**मिश्र**—अग्नि>आग, सपत्मी>सौत।

आगे-पीछे का कोई अन्तर नही है; सन्धि, अग्नि। ज्ञ अपवाद है, ज्ञ के स्थान पर प्राय. न (राज्ञी>रानी, यज्ञोपवीत>जनेऊ) हो जाता है। तथाकथित तत्सम एव अर्धतत्सम शब्दो मे ग्य या ग्यं (ज्ञान-ग्यॉन, आज्ञा>आग्याँ, यज्ञ>यग्य, जग्य) होता है।

(२) **स्पर्श+अन्तस्थ** .

सूत्र>सूत, पुत्र>पूत, गुर्जर>गूजर, पत्र>पात, पत्ता, पक्व>पक्का, अर्क>आक, चक्र>चाक, सर्प>साँप। आगे-पीछे आने का कोई अन्तर नही : अर्क, चक्र।

(३) **स्पर्श+ऊष्म :**

क्ष>ख। इसमे 'क+ष' है। 'ष' का लोप तो होता है किन्तु वह क को प्रभावित करके उसे महाप्राण 'ख' बना देता है : अक्षि>आँख, क्षेत्र>खेत, शिक्षा>सीख, बुभुक्षा>भूख, वाष्प>भाप। ष पहले आए तब भी कोई अतर नही पडता : पुष्कर>पोखरा, शुष्क>सूखा। स्त>थ (पुस्तिका>पोथी, हस्त>हाथ स्तन>थन, हस्ती>हाथी, मस्तक>माथा) मे भी वही बात है। अन्य उदाहरण, कुष्ठ>कोढ (ठ>ढ>ढ), अष्ट>आठ, अगुष्ठ>अँगूठा, पश्चिम>पच्छिम, रुष्ट>रूठा, अगुष्ठिका>अँगूठी, पृष्ठ>पीठ, काष्ठ>काठ, पक्ष>पख। अर्थात् ऊष्म स्पर्श को महाप्राण बना देता है।

(४) **नासिक्य+अन्तस्थ :**

पर्ण>पान, कर्ण>कान, कर्म>काम, धर्म>धाम, शून्य>सूना, पूर्णिमा>पूनो (शरत पूनो), प्राघूर्णक>पाहुना, (चूर्ण>चूर अपवाद), चून, धर्म>धाम (तीर्थ), अन्य>आन, शून्य>सुन्न, पुण्य>पुन्न, पुन, ऊर्ण>ऊन, अरण्य>अरना

(एक प्रकार का जगली भैसा)।

(५) **ऊष्ण नासिक्य :**

रश्मि>रास, रस्सी।

(६) **ऊष्ण+अतस्थ :** यस्य>जिस, तस्य>तिस, कस्य>किस, श्वशुर>ससुर,श्याला>साला, श्वास>साँस, श्वश्रु>सास।

(७) **कोई व्यंजन ह :**

जिह्वा>जीभ, गुह्यिका>गुझिया, गृह>घर (दूर रहने पर भी 'ह'-लोप)।

**त्रिव्यंजन :**

तीन व्यजनो के सयुक्त रूप मे भी प्राय: यही बात देखी जाती है : अन्त्र>आँत, उष्ट्र>ऊँट, चन्द्र>चाँद, पक्ति>पाँत, तीक्ष्ण>तीखा, यत्रक>जाँता, पार्श्व>पास।

**अन्तस्थ×अन्तस्थ :**

(१) ल उच्चारण मे मध्यरेखा पर स्पर्श होता है, अत. वह य, व की तुलना मे अधिक सशक्त होता है, यही कारण है कि ल्य, ल्व मे य, व लुप्त हो जाता है : मूल्य>मोल, कल्य>कल, बिल्व>बेल। (२) यदि य, व व्यजन ज, ब बनकर स्पर्श हो जाएँ तो वे सशक्त हो जाते है : व्याघ्र>बाघ, सर्व>सब, कार्य>काज।

**विशेष नियम :**

सयुक्त व्यजनो मे एक व्यजन के लोप तथा उसके प्रभाव से शेष के महाप्राणीकरण, मूर्धन्यीकरण, तालव्यीकरण की भी प्रवृत्ति मिलती है, जिन्हे विशेष नियम के रूप मे यहाँ रखा जा रहा है। विशेष नियम का कारण यह है कि अन्यो मे जो शेष बचता है प्राय: अपरिर्वतित रहता है किन्तु इनमे वह भी परिर्वतित हो जाता है। महाप्राणीकरण-विषय की

कुछ बाते प्रसगतः ऊपर भी आ चुकी है।

**महाप्राणीकरण :**

(१) स्पर्शो के साथ स, ष, श, ह का योग हो तो स्वभावतः स, ष, श, ह का लोप होता है, किंतु शेष स्पर्श महाप्राण हो जाता है। मेरे विचार मे इसे दो रूपो मे स्पष्ट किया जा सकता है (१) स ष. श का विलय 'ह' मे हो जाता है और 'ह' के योग से महाप्राणता सभव है (कब+ही=कभी); (२) स, ष, श, ह लुप्त हो जाते हैं किंतु उनके प्रभाव से अवशिष्ट अल्पप्राण महाप्राण मे परिवर्तित हो जाते है। उदाहरणार्थ . (क) शिक्षा>सीख. भिक्षा>भीख, बुभूक्षा>भूख, शुष्क>सूखा, पुष्कर>पोखर, क्षीर>खीर, इक्षु>ईख, क्षेत्र>खेत, स्कंभ>खंभा; (दूर रहने पर भी) गृह>घर, (ख) वृश्चिक>बिच्छू (अपवाद आश्चर्य>अचरज, यह उपयुक्त शब्दो की तरह परम्परागत रूप मे विकसित न होकर आधुनिक विकास है अतः अर्धतत्सम है), अष्ट> आठ, कुष्ठ>कोढ, अँगुष्ठ>अँगूठा, काष्ठ>काठ, रुष्ट>रूठ, (अपवाद—उष्ट्र>ऊँट (घ) प्रस्तर>पत्थर, पुस्तिका>पोथी, हस्त> हाथ, मस्तक>माथा, स्तन>थन, हस्ती>हाथी, चिह्न>चिन्ह, (ङ) जिह्वा>जीभ, ब्राह्मण>ब्राम्हन, ब्राम्हण, (पश्चवर्ती प्रभाव) वाष्प> भाप। उल्लेख्य है कि न्ह, म्ह भी महाप्राण है।

**मूर्धन्यीकरण :**

(२) **तवर्ग (प्रथम चार)+र—टवर्ग (प्रथम चार)**—मेरे विचार मे ऐसा इसलिए है कि 'र' मूर्धा से उच्चरित (ऋतुरषाणा मूर्द्धा) है, अत तवर्ग का मूर्धन्यीकरण हो गया। त+ट=ट : त्रसर>टसर, करपत्र>करवट (आरा), कैवर्त>केवट, उद्वर्तन>उबटन, कर्त> काट, वर्त्म>बाट, कर्तरी>कटारी, चित्र>छीट, त्रुट्>टूट, (अपवाद : अन्त्र>आँत, त्रयोविंशति>तेईस, चित्रक>चीता, वर्तिका> वत्ती, पत्र>पात, पुत्र>पूत, सूत्र>सूत, वेत्र>वेत, करपत्र>करौत (हरियाणी मे आरा), करौंती (हरियाणी मे 'सरौता'), क्षेत्र>खेत,

रात्रि>रात। लगता है, कुछ क्षेत्रों मे 'र' के प्रभाव से टवर्ग हुआ तथा कुछ मे निर्बल 'र' लुप्त हो गया। कुछ शब्दो मे दूर होने पर भी प्रभाव · वृतक>वड़ा, मृत्तिका>माटी, मिट्टी, विकृत>विकट। **'ल' का भी अपवादत: यही प्रभाव :** तिलक>टीका, गलगति>गिरगिट। **प्रवृत्त्यात्मक :** विभीतक>वहेड़ा। **थ+र—ठ :** अर्धचतुर्थ—अहुँठ (३/२), (दूर होने पर) ग्रंथि—गाँठ, थियेटर—ठेठर (भोजपुरी मे)। **अपवाद :** सार्थ—साथ, चतुर्थ—चौथा। **प्रवृत्त्यात्मक :** प्रस्था—पठा, स्थग—ठग, उत्थान >उठान। **द+र—ड, बीच में या अन्त में होने पर ड़ .** कपर्दिका—कौड़ी। **दूर होने पर भी :** दर>डर, दोरक>डोरा। **ल का भी यही प्रभाव :** दोलिका>डोली। **अपवाद :** दद्रु>दाद, भाद्रपद>भादो, निद्रा>नींद, चन्द्र>चाँद। **प्रवृत्त्यात्मक :** दंडक>डंडा, दशन>डँसना, विभीतक>बहेडा। **ध+र=ढ़, बीच में या अन्त में होने पर ढ़ :** धृष्ट> ढीठ, सार्ध>साढे, अर्धतृतीय>अढाई, ढाई, वर्ध>वढ। **ल के प्रभाव से :** शिथिल>ढील। **अपवाद :** अर्ध>आधा। प्रवृत्त्यात्मक—स्तब्ध> ठाढ। क्वाथक>काढा।

**तालव्यीकरण :**

(३) **तवर्ग (प्रथम चार)+य—चवर्ग (क्रमश प्रथम चार।** मेरे विचार मे 'य' तालव्य है, अत: त, थ, द, ध दंत्य स्पर्श से हटकर तालव्य हो गए। **त+य=च :** नृत्य>नाच, सत्य>साँच, सच, कृत्यगृह> कचहरी। **प्रवृत्त्यात्मक .** तंडुल>चावल। **थ+य>छ ·** मत्स्य>मछली त्स>थ। प्रवृत्त्यात्मक. उत्साह>उछाह, उत्संग>उछंग। **द+य=ज .** अद्य>आज, वाद्य>वाजा, द्यूत>जुआ, विद्युत>बिजली। वैद्यनाथ> बैजनाथ। **ध+य=झ :** संध्या>साँझ, बध्या>बाँझ, युध्य>जूझ, सम्बुध्य>समझ, अध्यापक>झा, उपाध्याय>ओझा, अनध्याय> अझा, मध्यधार>मझधार।

## अन्य भाषाएँ

संस्कृत के अतिरिक्त पश्तो, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं से भी हिंदी मे शब्द आए है, और इन भाषाओं से भी हिंदी ध्वनियाँ विकसित हुई

है, किंतु उनमे नियम जैसी व्यापकता नही है। अपवाद केवल एक है :
**फ़ारसी आदि के अल्पोच्चरित ह स आ**

तुर्की, फारसी, अरबी आदि से आए शब्दो मे शब्दान्त के अल्पोच्चरित ह युक्त अह् का विकास हिंदी मे आ हो जाता है : गुन्नह् > गुन्ना, किनारह् > किनारा, बस्तह् > बस्ता, ख़जानह् > ख़जाना, तमाशह् > तमाशा, बेचारह् > बेचारा। इस तरह के सैकडो शब्द हिंदी मे है।

आगे हिंदी की प्राय सभी ध्वनियो का पृथक्-पृथक् इतिहास दिया जा रहा है। यहाँ अरबी शब्दो को अलग से न लेकर फारसी के साथ ही रखा गया है, क्योकि अरबी के शब्द फारसी के माध्यम से ही आए है। पुर्तगाली शब्द, कुछ तो सीधे पुर्तगाली से आए है, तथा कुछ अन्य भाषाओ के माध्यम से। इसका दो-टूक निर्णय करना कठिन है कि कौन-कौन किन अन्य भाषाओ के माध्यम से आए है। इसीलिए पुर्तगाली शब्द पुर्तगाली उच्चारण को पृष्ठभूमि मे रखकर ही दिए गए है।

**अ** . (१) **स० अ स**—स० गर्दभी > प्रा० गद्दही > हि० गदही, गधी, स० स्थग—प्रा० ठग > हि० ठग, स० खर्जुर > प्रा० खज्जूर > हि० खजूर। (२) **स्वराघातरहित स० आ से**– स० भाडागार- प्रा० भडागार > हि० भडार, स० आभीर > प्रा० अहीर > हि० अहीर, स० आपाढ > प्रा० आसाढ—हि० असाढ। (३) **स० इ से** > स० विभीतक > प्रा० वहेडअ > हि० बहेडा, स० वारिद > हि० बादल। (४) **स० ई से** स० परीक्षा > प्रा० परिक्खा—हि० परख। (५) **सं० उ से** स० अगुरु > प्रा० अगरु > हि० अगर (अगरबत्ती)। (६) **स० ऋ से**—स० कृष्ण > कन्हैया। (७) **सं० ए से** > स० एरड > प्रा० एरड > हि० अरड। (८) **स० ओ से** > शोभाजन > हि० सहिजन (एक पेड)। (९) **तुर्की अ से** (बेगम, तोशक) (१०) **फ़ा० अ से** (अन्दर, अनार)। (११) **पुर्त० अ से** (अनन्नास, गमला), (१२) **अ० अ से** (जज, बस)। (१३) **अं० ऑ से** (अफसर अगस्त, अर्दली)। (१४) **अ० ऐ से** (जनवरी, अलबम)। (१५) **अ० ए से** (दिसम्बर, फरवरी)। (१६) **अं० इ से** (रपट, इजन)।

**आ** : (१) **स० आ से**—स० शाक > प्रा० साग > हि० साग, स० श्वास > हि० साँस, स० काष्ठ > प्रा० कट्ठ > हि० काठ। (२) **म० अ से** (यदि यह अ सयुक्त या दीर्घ व्यजन के पूर्व हो) > स० चक्र > प्रा०

चक्क>हि० चाक, सं० हस्त>प्रा० हत्थ>हि० हाथ, सं० सर्प>सप्प>हि० साँप, सं० कर्म>प्रा० कम्म>हि० काम। (३) सं० अक से—स० घोटक>प्रा०>घोडअ>हि० घोड़ा, स० चणक>प्रा० चणअ>हि० चना०, स० दोरक>प्रा० डोरअ>हि० डोरा, (४) सं० ऋ से (यदि यह सयुक्त या दीर्घ व्यजन के पूर्व हो)—स० नृत्य>प्रा० णच्च>हि० नाच, सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह,>हि० कान्ह, (५) तुर्की, फ़ा०, अ० आ से (दारोगा, चाकू, आजाद् पास) (६) 'अह्' से (खज़ानह्>खज़ाना, किनारह्>किनारा, मसालह्>मसाला, बस्तह्>बस्ता)। (७) पुर्त० आ से (अनन्नास, अल्मारी, काजू)।

इ : (१) सं०इ से—सं०विटपक>प्रा० विरवअ>हि० बिरवा, स० माणिक्य>प्रा० माणिक्क>हि० मानिक। (२) स० अ से—स० गलगति हि० गिरगिट; सं० पञ्जर>प्रा० पजर>हि० पिंजरा। (३) सं० ई से—सं० दीपक>प्रा० दीअअ>हि० दिया, स० दीपावली>प्रा० दीवाअली>हि० दिवाली। (४) स० ऋ से—स० मृत्तिका>प्रा० मिट्टिआ>मिट्टी, सं० शृगाल>प्रा० सिआल>हि० सियार। (५) सं० ए से—सं० गोपेन्द्र>हि० गोविन्द। (६) तुर्की, फ़ा० अ० इ से (चिक, आतिशबाजी, इजन)

ई : (१) सं० ई से—स० गृहिणी>प्रा० घरिणी>हि० घरनी, सं० क्षुरी>प्रा० छुरी>हि० छुरी, स० क्षीर>प्रा० खीर>हि० खीर। (२) सं० इ से—(जो दीर्घ या सयुक्त व्यजन के पूर्व हो) स० इक्षु>इक्खु>हि० ईख, स० भिक्षा>प्रा० भिक्ख>हि० भीख, (३) सं० इ से (अन्य स्थितियो मे)—स० दधि>प्रा० दहि>हि० दही, सं० अपि>प्रा० वि>हि० भी। (४) स० इका से—स० घोटिका>प्रा० घोडिया>हि० घोडी; स० होलिका>प्रा० होलिआ>हि० होली, स० आरात्रिका>हि०आरती। (५) सं ऋ से>स० पृष्ठ>प्रा०पिट्ठ>हि० पीठ (६) तुर्की फ़ा० अ० इ से—कालीन, क्रीम)। (७)अ० इ से—(अर्दली, तिजोरी, जुलाई)।

उ : (१) सं० उ से—स० कटुक>प्रा० कडुअ>हि० कडुआ, स० गुटिका >प्रा० गुडिया>हि० गुड़िया। (२) सं ऊ से—स० प्रभूत>प्रा० बहुत्त>हि० बहुत, स० धूम>हि०धुआँ, स० द्यूत>प्रा० जूअ>हि० जुआ। (३) सं० अ से—स० पश्च>प्रा० पुच्छ (स० मे भी प्रयुक्त)>हि० पूँछ, स० पलाल>हि० पुआल। (४) स० ऋ से—स० वृद्ध>प्रा० बुड्ढ>हि० बुड्ढा। (५) सं० ओ (को) से—स० एकोन>प्रा० अउण>हि० उन (उनतीस, उनतालिस, उनसठ) (६) स० स्म से—स० स्मृति> हि० सुरत (स>स, ऋ>र, म>व>उ)। (७) सं० व से—स० स्वर्णकार>प्रा० सुण्णार> हि० सुनार (सोनार भी)। (८) तुर्की, फ़०, अ० उ से (उजबक, कुर्ता, उस्तरा, कुश्ती फुटबाल, हुक)।

ऊ : (१) स० ऊ से—स ऊषर>प्रा० ऊसर>हि० ऊसर, ऊर्ण>प्रा० उण्ण>हि० ऊन। (२) स० उ से—(दीर्घ या सयुक्त व्यजन के पूर्व का)—स उष्ट्र>प्रा० उट्ट>हि ऊँट, स० पुत्र>प्रा० पुत्त>हि० पूत (सपूत, कपूत), दुग्ध>प्रा० दुद्ध>हि० दूध (४) सं० 'उक' या 'उका' से—स० बालुका>प्रा० बालुआ>हि बालू, स० भल्लुक>प्रा० भल्लुअ>हि० भालू, स० शक्तुक प्रा०>सत्तुअ> हि० सत्तू। (५) सं० इ से—स० वृश्चिक >हि० बिच्छू। (६) स० इक से—स० गैरिक>प्रा० गेरुअ>हि० गेरू। (७) स० ऋ से—स० पृच्छ>प्रा० पुच्छ, हि० पूछ्, स० वृद्ध>प्रा० बुड्ढ>हि० बूढा। (८) सं० औ से—स० पौष>प्रा० पुस्स>हि० पूस। (९) तुर्की, फा०, पुर्त०, अ० ऊ से (बारूद, कूच, अगूर, खरबूजा, काजू, जून, प्रूफ, सूप)

ए : (१) स० ए से—स० अग्रे>प्रा० अग्गे>हि० आगे; स० मेघ> मेह>हि० मेह, सं० क्षेत्र>खेत्त>खेत। (२) स० अ से—स० शय्या>प्रा० सेज्जा>हि० सेज (कदाचित् य के प्रभाव से), स० कचुलिका>प्रा कचुलिआ>हि० केचुली, स० मज्जा>हि० भेजा (३) सं० इ से (जिसके बाद सयुक्त व्यजन हो)—स० शिम्बा>

हि० सेम, सं० छिद्र>प्रा० छिद्द>हि० छेद, स० बिल्व>प्रा० बिल्ल>हि० बेल। (४) सं० ऐ से—स० कैवर्त>प्रा० केवट्ट>हि० केवट, स० तैल>प्रा० तेल>हि० तेल, स० गैरिक>प्रा० गेरुअ> हि० गेरू। (५) स० उ से—स० फुप्फुस<हि० फेफ (ड़ा)। (६) स० अयो से—स० त्रयोदश<प्रा० तेरस, तेरह<हि० तेरह, स० त्रयोविंशति<प्रा० तेवीस<हि० तेइस (७) सं० अइ से–स० नवति <प्रा० नब्बए<हि० नब्बे, नब्वे, प्रा०सप्तनवति<प्रा० सत्तानवे >हि० सत्तानवे। (८) स० ओ से—स० गोधूम>हि० गेहूँ, (गोहूं बालियो में)। (९) तुर्की, फ़ा० ए से (बेग, बेगम, सफेद, रेगम) (१०) पुर्त० ए से (मेज)। (११) अ० ऍइ से (एक्सरे, रेडियो)

ऐ . (१) स० ऐ से—स० चैत्र>प्रा० चइत्त>हि० चैत, स० वैराग्य> हि० वैराग। (२) सं० अइ से—स० प्रविष्ट्—पइट्ठ>हि० पैठ्, सं० उपविष्ट्>प्रा० वइट्ठ्->हि० बैठ्। (३) स० इ से—स० द्विशाखिका>हि० वैसाखी। (४) स० अय से—स० नयन>हि० नैन। (५) तुर्की, फा० अइ से (कैंची, मैदान, खैर)। (६) अ० ऐ से (गैस, वैड, टैक, वैक)।

ओ . (१) स० ओ से—स० घोटिका>प्रा० घोडिआ>घोडी, स० होलिका>प्रा० होलिआ>हि० होली, स० दोरक>प्रा० डोरअ> हि० डोरा। (२) स० उ से (यदि बाद मे सयुक्त व्यजन हो)—स० पुष्कर>प्रा० पुक्खर, पोक्खर>पोखर, स० कुष्ट>प्रा० कुड्ढ >हि० कोढ, स० पुस्तिका>प्रा० पुत्थिया, पोत्थिअ>हि० पोथी (३) स० ऊ से—स० मूल्य>प्रा० मोल्ल>मोल, स० भूर्ज> भुज्ज>हि० भोज (पत्र)। (४) स० औ से—स० सौभाग्य> प्रा० सोहग्ग>हि० सोहाग, स० मौक्तिक>प्रा० मोत्तिअ>हि० मोती, (५) सं० व से—स० स्वर्ण>प्रा० सोण्ण>हि० सोना। (६) सं० 'अयू' से—स० मयूर>प्रा० मऊर>हि० मोर। (७) स० अव से—स० अलवणल>प्रा० अलोणअ>हि० अलोना, स० अवश्या>प्रा० ओस्सा>हि० ओस। (८) सं० उप से—

स० उपल+क>प्रा० उवल+अ>हि० ओला। (६) सं० अप से —स० अपसार>प्रा० ओसार >हि० ओसार (ा, ई)। (१०) तुर्की, फ़ा० ओ से—(तोप, दारोगा, जोर, गोश्त)। (११) पुर्त० ओउ से (गोभी, बोतल)। (१२) अं० ओउ से (कोट, नोट, रेडियो)।

औ : (१) स० औ से—सं० गौ (अउ) रव>हि० गौरव। (२) स० अप से—स० सपत्नी>सौत, स० कपर्दिका>प्रा० कवड्डिआ> हि० कौड़ी, स० अपर>प्रा० अवर>हि० और। (३) सं० आम से—स०वामन+क>हि० बौना, स० चामर>हि० चौंर। (४) सं० अउ से—सं० जतुगृह>प्रा० जउहर>हि० जौहर, स० चतुष्क >प्रा० चउक्क>हि० चौक, स० चतुर्दश>प्रा० चउद्दह>हि० चौदह। (५) सं० अव से—सं० यव>प्रा० जव>हि० जौ। सं० लवग>हि० लौंग, स० नव>प्रा० णव>हि० नौ। (६) तुर्की, फा० अउ से (सौगात, मौसम, फ़ौज)। (७) पुर्त० ओ से (पिस्तौल)। (८) पुर्त० आ से (तौली)। (९) पुर्त० ओआ से (तौलिया)।

क : आदि क् (१) स० क् से—सं० कातर>प्रा० काअर, कायर> हि० कायर, स० कटाहिका>प्रा० कडाहिया>हि० कडाही; सं० कर्ण>प्रा० कण्ण>हि० कान, सं० क्वाथ>काढा (२) तुर्की, फ़ा० क् से (कुर्ता, कुमक, कमजोर, किताब)। (३) पुर्त० क् से (काजू, कप्तान, कमरा)। (४) अ० ईषत महाप्राणयुक्त क् से (कमेटी, ककरीट, कलक्टर)।

मध्य क् : (१) सं० क् से—स० एकविंशति>प्रा० एक्कवीसइ> हि० इक्कीस; स० शकट+क>छकडा। सं० कर्कर प्रा० कक्कर> हि० ककड़; स० वक्र>बाँका, सं० चिक्कण>प्रा० चिक्कण> चिकना, स० पक्व>प्रा० पक्क>हि० पका। (६) तुर्की, फ़ा० क् से (मुचलका, आवकारी, इनकार)। (९) पुर्त०, अ० क् से (अलकतरा, तवाकू, एकड, एक्सरे)।

अंत्य क्: (१) सं क् से—सं० ग्राहक>प्रा० गाहक>हि० गाहक्, सं० चतुष्क>प्रा०>प्रा० चउक्क>हि चौक्, सं० माणिक्य>प्रा० प्रा० माणिक्क>हि० मानिक्, सं चक्र>प्रा० चक्क>हि० चाक्। सं० वुक्क>प्रा० मुक्क>हि भूँक। (७) तुर्की, फ़ा० क् से (उजवक, कुमक, चाबुक, ऐनक)। (१०) अं० (मूल या सयुक्त) क् से (वैक, चेक, ट्रक, टैक)।

ख. आदि ख्: (१) सं० ख् से—स०>खर्जू>प्रा० खज्जू, खज्ज> खाज; स० खट्वा>प्रा० खट्टा, खट्ट>हि० खाट्; (२) सं क्ष् से—सं० क्षेत्र>प्रा० खेत्त>हि० खेत, स० क्षीर>प्रा० खीर> हि० खीर। (३) स० क से स० कर्पर>प्रा० खप्पर>हि० खप्पर। (४) सं० स्क् से—सं० स्कभ>प्रा० खम्भ>हि० खम्भा। (५) सं ष् से —स० षटराग>खटराग।

मध्य ख्: (१) सं ख् से—स० खसखस> प्रा० खसखस>हि० खसखस। (२) स० क्ष् से—स० द्वादशाक्षरी>हि० बारह-खडी, सं० अक्षवाटक> प्रा० अक्खवाडग>अक्खवाडअ>हि० अखाडा; सं० म्रक्षण>प्रा० मक्खण>हि०मक्खन, माखन। (३) स० ख्य् से—स० व्याख्यान> प्रा० वक्खाण>हि० वखान्। (४) स० ष्क् से—सं० पुष्कर>प्रा० पुक्खर, पोक्खर>हि० पोखर, पोखरा; स० शुष्क>प्रा० सुक्ख>हि० सूखा।

अंत्य ख (१) स० ख् से>स० दु:ख>हि० दुख्, स० सुख्>सुख्; (२) स० क्ष से—सं० अक्षि>प्रा० अक्खि>हि० आख्; स० लक्ष> प्रा० लक्ख>लाख्; स० इक्षु>प्रा० इक्खु>हि० ईख्। (३) सं० ष् से—सं० झष>हि०, झख (मुहावरा—झख मारना); स० मीनमेष>हि० मीनमेख (मुहावरा—मीनमेख निकालना); (४) स० ष्क् से—स शुष्क>प्रा० सुक्ख>सूख् (धातु)।

ग: आदि ग् (१) सं० ग् से—स० गम्भीर>प्रा० गहिर> हि० गहरा, स० गुटिका>प्रा० गुडिआ>हि० गुडिया, स० ग्राम>प्रा० गाम>हि० गाँव; स० ग्रथि>प्रा० गण्ठि, गाठि हि० गाठ्। (२)

स० क् से—सँ० कंदुक>प्रा० गेंदुअ>हि० गेंद, सं० एकादश>हि० ग्यारह। (४) सं० घ् से—सं० घट्>प्रा० गढ>हि० गढ़ (धातु)। (५) फा०, पुर्त०, अ० ग् से (गदा, गर्मी; गमला, गिरजा, गिलास, गोल)।

मध्य ग : (१) सं० ग् से—सं० अगुरु>प्रा० अगरु>हि० अगर (बत्ती), सं० फाल्गुन> प्रा० फग्गुण>हि० फागुन, सं० अंगिका> प्रा० अँगिआ>हि० अँगिआ, सं० गर्गर> प्रा० गग्गर>हि० गागर, सं० अग्निस्थिका>प्रा० अग्गिट्ठिआ>हि० अँगीठी, सं० अग्रहायण> प्रा० अग्गहण> हि० अगहन। (२) सं० क् से—सं० शकुन>प्रा० सगुन>हि० सगुन, सं० मक्त>हि० मगन। सं० ककाल> हि० कगाल,। (९) तुर्की, फा० ग् से (बेगम, तगार, कारीगर)। (१०) फा० क से (नक्कार>नगाड़ा)। (११) अ० क से (डिक्री>डिग्री)।

अन्त्य ग (१) सं० ग् से-शृंग>प्रा० सिंग>हि० सींग्; लवग>लौंग्, सं० स्थग>हि० ठग्, सं० वल्गा>प्रा० वग्ग>हि० बाग् (घोड़े की), सं० अग्नि>प्रा० अग्गि>हि० आग, सं० सौभाग्य>प्रा० सोहग्ग>हि० सोहाग्, सं मुद्ग>प्रा० मुग्ग>हि० मूंग। (२) सं० क् से—सं० लोक>प्रा० लोग>हि० लोग्, सं० शाक>प्रा० साग >हि० साग्, सं० काक>हि० काग्। (३) फा ग् से (तग्, रंग्, रग्)। (८) पुर्त०, अ० ग् से (परेग=कील, बैंग, जग)। (१०) अ० क से (कॉर्क>काग)।

घ. आदि घ (१) सं० घ् से—सं० घट+क>प्रा० घडअ>हि० घडा, सं० घोटिका>प्रा० घोडिआ>हि० घोडी, >घटिका> घडिआ>घडी। (२) सं० ग्, ह् के योग से—सं० गृह>प्रा० घर >हि० घर; सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी>हि० घरनी।

मध्य घ् (१) सं० घ से—सं० व्याघ्रिणी>हि० बाघिन, सं० उद्घाट्न, प्रा० उग्घाड्>हि० उघाड (ना)। (२) सं० ग तथा ह से—सं० विग्रह>प्रा० विग्गह>हि० बीघा।

अंत्य घ् : (१) सं० घ से—सं० जघा>प्रा०जंघ>हि० जाँघ, सं० व्याघ्र>
प्रा० वग्घ>हि० वाघ।

क़् : आदि क़् : (१) तुर्की फा० क़् से (कुर्क, कदम, कब्ज)।

मध्य क़् : (१) तुर्की फ़ा० क़ से (चकमक) अक्ल)।

अंत्य क़् : (१) तुर्की, फ़ा० क़् से (चकमक, खन्दक, गर्क)।

ट् : आदि ट् : (१) ट से —स० टकशाला>टकसाल (२) सं० त् से—
(र या ल पास हो तो) सं० तिलक>हि० टीका, टिकली; सं०
त्रसर>प्रा० टसर>हि० टसर (रेशम)। (३) अ० ट् से (टैंक,
टाइप, टिकट)।

मध्य ट् : (१) सं० ट् से—स० कंटक>प्रा० कंटअ>हिं० काँटा; सं०
कषपट्टिका>प्रा० कसवट्टिआ>हि० कसौटी; (२) स० त से
—सं० कर्तरिका>प्रा० कट्टरिआ>हि० कटारी। उद्वर्त्तन>हि०
उवटन। सं० मृत्तिका>प्रा० मिट्टिआ>हि० मिट्टी। (३)
पुर्त० द् से—पुर्त० वाल्दे>हि० बाल्टी। (४) अ० ट् से (एटलस,
नोटिस)।

अंत्य ट् (१) स० ट से—स० अरघट्ट>प्रा० रहट्ट>हि० रहट;
सं० हट्>प्रा० हट्ट>हि० हाट। (२) स० त से—सं० कर्त>
प्रा० काट्; स० कैवर्त>प्रा० केवट्ट>हि० केवट, सं० करपत्र>
प्रा० करवट्ट>हि० करवट् (काशी करवट); (३) सं० ष्ठ से—
स० कोष्ठ>प्रा० कोट्ट>हि० कोट (पुराना किला)। (४) अ०
ट् से (कोट एजेंट टिकट)।

ठ् : आदि ठ् : (१) स० ठ् से—सं० ठक्कुर>प्रा० ठक्कुर>हि० ठाकुर
(ठक्कुर शब्द स० मे है, किंतु मूलत. यह सं० शब्द नही है। कुछ
लोगो ने इसे तुर्की 'तेगिन' से जोडा है)। (२) स० स्थ् से—स०
स्थग>प्रा० ठग>हि० ठग; स० स्थाप्य>प्रा० ठप्प>हि० ठप.।

मध्य ठ् : (१) स० ठ् से—सं० कठिका>प्रा० कढिआ>हि० कठी,
स० कोष्ठागारिका>प्रा० कोट्ठारिआ>हि० कोठरी; स०
अगुष्ठ+क>प्रा० अगुट्ठअ>हि० अगूठा, (३) स० ट से—सं०
मिष्टान्निका>ही० मिठाई; सं० लष्टिका>प्रा० लट्ठिआ>हि०

लाठी; (४) सं० स्थ से—स० प्रस्था (पयति)>प्रा० पट्ठा—>हि० पठा—(भेज्); स० अग्निस्थिका>प्रा० अग्गिट्ठिआ>हि० अगीठी (५) स० त्थ से—स० उत्थान>प्रा० उट्ठान>हि० उठान।

अंत्य ठ. (१) सं० ठ् से—स० शुठि>प्रा० सुठि>हि० सोठ्। (२) स० ट से—स० षट्षष्टि>प्रा० छासट्ठ>हि० छियासठ्; सं० प्रविष्ट>प्रा० पइट्ठ>हि० पैठ् (धातु); स० अष्ट>अट्ठ>आठ्; (३) स० र के समीप थ से—स० ग्रथि>प्रा० गठि>हि० गाँठि>गाँठ्।

ड : आदि ड् : (१) स० ड् से—सं० डमरू>हि० डमरू; स० डाकिनी>प्रा० डाइणि>हि० डाइन। (२) स० द् (प्राय ल, र, का समीपवर्ती) से—स० दोरक>प्रा० डोरअ>हि० डोरा; स० दर>प्रा० डर>हि० डर; दाह>डाह, दशन>डँसना। (३) अ० ड् से—डाक्टर, डिग्री।

मध्य ड् · (१) स० ड् से—स० भाण्डागारिक>प्रा० भडारिअ—हि० भण्डारी; सं० अण्डक>हि० अडा। (२) सं० स्थ् —स० से अस्थि>प्रा० हड्डि>हि० हड्डी। (३) अ० ड् से—रेडियो, सोडा।

अंत्य ड् : (१) सं० ड् से—सं० मड>हि० माँड्। (२) अं० ड् से—कार्ड्, गार्ड।

ढ् : आदि ढ् : (१) स० ढ् से—स० ढाल>हि० ढाल। (२) स० ध (र के समीप) से—स० धार>ढाल, सं० अर्धतृतीय>प्रा० अड्ढतिय, अड्ढइ>हि० अढाई, ढाई, स० धृष्ठ>प्रा० ढिट्ठ>हि० ढीठ। (५) सं० थ (ल के समीप) से—स० शिथिल>प्रा० सिढिल>हि० ढीला।

मध्य ढ् · कुछ मिश्र शब्दों में—बेढब।

त : आदि त : (१) स० त से—सं० तुन्द>प्रा० तुद>हि० तोद; सं० तालक>प्रा० तालअ>हि० ताला; स० त्रयोविंशति>प्रा० तेवीस>हि० तेइस, स० त्वरित>हि० तुरत, तुरत। (२) तुर्की, फ़ा० त से (तमग़ा, तमचा, तग, तंदूर)। (३) पुर्त० त से (तौलिया,

तंबाकू)। (७) अं० ट् से (तारकोल, तारपीडो, तिजोरी)।

मध्य त् : (१) सं० त् से—सं० पश्चाताप>प्रा० पच्छताव>हि० पछ-ताबा; सं० स्रोतक>प्रा० सोतअ>हि० सोता (चश्मा), सं० आदित्यवार>हि० इतवार। सं० अन्त्र>अप० अंत+डी>हि० अँतड़ी; सं० चित्रक>प्रा० चित्तअ>हि० चीता; सं० कार्तिक> कत्तिक>कातिक; सं० पित्तल>प्रा० पित्तल>हि० पीतल; सं० मौक्तिक>प्रा० मोत्तिअ>हि० मोती; सं० नप्तृक>प्रा० नत्तिअ> हि० नाती; सं० विज्ञप्तिका>प्रा० विनत्तिआ>हि० विनती, विनती; (२) सं० ट् से (अपवादत) सं० कटवर>हि० कतवार (कूड़ा)। (३) तुर्की, फा० त् से (कोतल, कुर्ता, उस्तरा, उस्ताद) (४) पुर्त० त् से (सतरा, इस्त्री, मिस्त्री, फ़ीता, पिस्तौल)। (५) अं० ट् से (पतलून, केतली, सितबर, अस्पताल)।

अंत्य त् : (१) सं० त् से—सं० दंत>प्रा० दन्त>हि० दाँत्, सं० क्षेत्र >प्रा० खेत्त>हि० खेत्; सं० रात्रि>रत्त>रात्; सं० भक्त> प्रा० भत्त>हि० भात्, सं० पक्ति>प्रा० पति>हि पाँत्। सप्त>प्रा० सत्त>हि० सात्। सं० वार्ता>प्रा० वत्ता, बत्त> हि० बात्। (२) तुर्की, फ़ा० त् से (सौगात् गनीमत् किस्त, मस्त, अमानत)। (३) पुर्त० त् से (इस्पात् परात्)। (४) अं० ट से (अगस्त्)।

थ् : आदि थ्. (१) सं० थ् से—सं० स्थाली>प्रा० थाली>हि० थाली; सं० स्थानक>प्रा० थानअ>हि० थाना; सं० स्तन>प्रा० थण> हि० थन (२) अं० थ से (थर्मामीटर, थर्मस, थिएटर)।

मध्य थ् : (१) सं० थ् से—सं० कथन+ई>हि० कथनी, (२) सं० त् से सं० मस्तक>प्रा० मत्थअ>हि० माथा; सं० पुस्तिका>प्रा० पोत्थिअ>हि पोथी; सं० हस्ती>प्रा० हत्थी>हि० हाथी, (२) अं० थ से— ईथर।

अंत्य थ्. (१) सं० थ से—सं० पथ>हि० पथ्; सं० कपित्थ>प्रा० कइत्थ>हि० कैथ्। सं० सार्थ>प्रा० सत्थ>हि० साथ, (२) सं० त् से—सं० मस्तक>प्रा० मत्थअ>हि० माथा; सं० हस्त>प्रा०

हत्थ>हि० हाथ्। सं० लोत्र>प्रा० लोत्त>हि० लोथ् (लाश)।
(६) अं० थ से (बर्थ—रेल की, रेडियो का तार—अर्थ)।

द : आदि द् (१) स० द् से—स० दुर्बल>प्रा० दुब्बल>हि० दुबला; स० दद्रु>प्रा० दद्दु>हि० दाद; स० दुग्ध>प्रा० दुद्ध>हि० दूध; स० द्रोणक>प्रा० दोणअ>हि० दोना। स० द्वौ>प्रा० दो>हि० दो। (२) तुर्की, फा० द् से (दारोगा, देर, देहात), (३) अं० ड् से (दलेल, दराज, दर्जन, दिसम्बर)।

मध्य द् (१) स० द् से—स० वारिद>प्रा० बद्दल>हि० बादल; सं० हरिद्रिका>प्रा० हलिद्दिआ, हलिद्दी>हि० हल्दी; स० भाद्रपद>प्रा० भाद्दवअ>हि० भादो, भादों, स० गर्दभक>प्रा० गद्दहअ>गदहा (गधा), (२) तुर्की, फा० द् से (उर्दू, बहादुर, आदत आदि)। (३) पुर्त० द् से (पादरी)। (४) अं० ड् तथा द् से (अर्दली अकादमी, फैदम)।

अंत्य द् (१) स० द् से—स० तुन्द>प्रा० तुन्द>हि० तोद; स० बिन्दु>प्रा० बिन्दु>हि० बूद; स० दद्रु>प्रा० दद्दु, दद्द>हि० दाद्; सं० निद्रा>प्रा० निद्दा>हि० नीद्। (४) तुर्की, फा० द् से (बारूद, आबाद, खराद, खुद)। (५) पुर्तगाली द् से (गारद)।

ध : आदि ध : स० ध् से—स० धान्य>प्रा० धण्ण>हि० धान्; स० धूम्र>प्रा० धुम्म>हि० धुआँ।

मध्य ध् (१) स० ध् से—स० अधकार>पा० अधकार>प्रा० अधआर, अधयार, अधियार>हि० अधेरा; स० उद्धार>प्रा० उद्धार>हि० उधार; (२) स० द (महाप्राण के ह से मिलकर) से—स० गर्दभ+क>प्रा० गद्दह+अ>हि० गदहा>गधा (गर्दभी से गधी भी)।

अंत्य ध् सं० ध् से—स० अश्वगधा>हि० असगंध, स० दुग्ध>प्रा० दुद्ध>हि० दूध।

प : आदि प् (१) स० प् से—सं० पाषाण> प्रा० पहाण>हि० पहाड़, स० पारद>प्रा० पारअ>हि० पारा, स० प्रहेलिका>प्रा०

पहेलिआ>हि० पहेली; स० स्पर्श>हि० परस्। (२) फा० प् से (पजा, परगना, परदा)। (३) पुर्त० प् से (पादरी, परात, पावरोटी)। (४) अ० प् से (पप, पतलून, पार्क, पार्सल, पाउडर, प्रेस)।

**मध्य प्**. (१) स० प् से—स० स्वप्न>हि० सपना; स० सुपुत्र>हि० सपूत, स० कर्पटक>प्रा० कप्पडअ>हि० कपड़ा, सं०उत्पलक>प्रा० उप्पलअ>हि० उपला, सं० पिप्पल>प्रा० पिप्पल>हि० पीपल, (२) सं० त्म से—स० आत्मनाम्>प्रा० अप्पणो>हि० अपना। (३) फ़ा० प से (आबपासी)।(४) पुर्त० प् से (आलपिन, कप्तान, इस्पात)। (५) अं० प् से (आपरेशन, डिपो, टेम्पो, अपील)।

**अंत्य प्**: (१) सं० प् से—स० कम्प्—>प्रा कप्—>हि० काँप्; स० शूर्प>प्रा० सुप्प>हि० सूप्; स० सर्प>सप्प>हि० साँप, सं० वाष्प>हि० भाप्। (२) स० त्म से—स० आत्म>प्रा० अप्प> हि० आप्। (३) तुर्की, फा० प् से—(तोप्, गप) (४) अं० प् से (टाइप्, क्लिप्, पंप्, कैंप)।

**फ** आदि फ्. स० फ् से—स० फाल्गुन>प्रा० फग्गुण>हि० फागुन; स० फण>प्रा० फण>हि० फन, स० स्फोटक>प्रा० फोडअ> हि० फोडा, (२) स० प (ऊष्म के समीप का) से—स०पाश>हि० फाँस, स० परशु>प्रा० फरसु>हि० फरसा।

**मध्य फ्**. स० फ् से—स० सफल>हि० सफल।

**अंत्य फ्**. (१) स० फ् से—स० कफ>हि० कफ् (इसे कदाचित अ० कफ के प्रभाव से प्राय: कफ भी कहते है); स० गुफ>हि गफ। (२) स० प से—स० शतपुष्प>हि० सौफ् (यद्यपि यह संस्कृत से विकसित शब्द है, किन्तु इसे प्राय, लोग 'सौफ' कहते है)।

**ब्** आदि ब्: (१) स० ब् से—स० वीटक>प्रा० बीडग, बीडअ> हि० बीडा (पान), स० वधिर+क>प्रा० बहिर+अ>हि० वहिरा, वहरा, स० ब्राह्मण>प्रा० बम्हण>हि० बाम्हन्। (२) स० व् से—स० वटक>प्रा० वडग, वडअ>हि० बड़ा (दही वडा), सं० वधू>प्रा० बहू>हि० वहू, स० द्वात्रिंशत>प्रा० वत्तीसा>हि० वत्तिस, स० व्याघ्र—प्रा० बग्घ>हि० बाघ, (३) स० प् से—

सं० उपविष्ट्>प्रा० बइट्ठ>हि० बैठ् (धातु), सं० प्रभूत>प्रा० बहुत>हि० बहुत; (४) सं० भ् से—सं० भगिनी>प्रा० भइणी>बहिणी>हि० बहिन्। (५) सं० म से>सं० मल्लिका बेला (बोली—बेइला, बेइल)। (६) तुर्की, फ़ा०से(बारूद, बेगम, बदन, बयान, (७) पुर्त०ब् से (बाल्टी, बंबा, बोतल)। (८) अं० ब् से से (बैंक, बडल, बटन, बम)।

मध्य ब्. (१) सं० ब् से--सं० लम्बक>प्रा० लम्बअ>हि० लम्बा; सं० दुर्बल+क>प्रा० दुब्बल+अ>हि० दुबला, सं० निम्बुक> निम्बुअ>हि०नीबू। (१)सं०म से—सं०ताम्र>प्रा०तम्म, तम्ब> हि० ताँबा, स०आम्रिका>प्रा०अम्बिया>हि०अँबिया (टिकोरा); (३) स० प् से—स० गोपेन्द्र>प्रा० गोबिन्द>हि० गोविन्द, (४) स० भ् से—स० अभ्रक>हि० अबरक। (५) सं० व से— स० उद्वर्त्तन—हि० उबटन। (६)तुर्की, फ़ा० से—(उजबक, काबू, (आबकारी, आबनूस, आबादी) (७)पुर्त० ब् ब् से(चाबी, बबा)। (८) अ० ब् से (अक्तूबर, अलबम, नबर, रबड़)।

अन्त्य ब् (१) सं० ब् से—स कदम्ब>हि कदम्ब। (२) सं० व् से— स० सर्व>प्रा० सब्ब>हि० सब्, स० दूर्वा>प्रा० दुब्वा, दुब्ब> हि>दूब्। (२) फा० ब् से (असबाब्, खूब्, कबाब, अजीब्)। (३) अं० ब् से (टब्, हब्, निब्, क्लब्)।

भ् आदि भ्. (१) सं० भ् से—स० भूर्ज>प्रा० भुज्ज>हि० भोज (पत्र), स० भिक्षा>प्रा० भिक्खा>भिक्ख> हि० भीख, सं० भ्रमर+क>प्रा० भवँरअ>हि० भवँरा, भौरा, (२) सं० व् (समीप के 'ष' का प्रभाव) से- स० वेष>हि० भेस (जैसा देश वैसा भेस), स० वाष्प>हि० भाप। (३) सं० म् (जिसके समीप ह हो) से--स० महिष>प्रा० महिम>हि० भैंस (म>व>ब+ ह=भ), (विना ह के) स० मज्जा>प्रा० मज्जा>हि० भेजा। (५) सं० प से—स० अपि>प्रा० वि>हि० भी (जोर के कारण ई)। (६) सं० ब् से—सं० बुषक, बुशक>प्रा० भुस्सअ> हि० भूसा (ऊष्म के कारण महाप्राणत्व)।

मध्य भ् : (१) सं० भ् से—आभूषण, आभ्पण्, सं० उद्भर (ति) > हि० उभर (ना)। सं० गर्भिणी > प्रा० गब्भिणी > हि० गाभिन।
(२) पुर्त० ब् से—पुर्त० कोवि > हि० गोभी।

अंत्य भ् . (१) सं० भ् से—सं० लाभ > हि० लाभ्, सं० लोभ > हि० लोभ्। (२) सं० व से—सं० जिह्वा > प्रा० जिब्भा, जिब्भ > हि० जीभ्।

च् : आदि च् : (१) सं० च् से—सं० चैत्र > प्रा० चइत > हि० चैत; सं० चक्र > प्रा० चक्क > हि० चाक; सं० चणक > प्रा० चणअ > हि० चना। (२) सं० त से—सं० तडुल > प्रा० तडुल > चाउल > चावल। (३) तुर्की, फ़ा० च् से (चकमक, चाकू, चिक, चदा, चरबी, चश्मा, चादर)। (४) पुर्त० च् से (चावी)। (५) अं० च् से (चेक, चिमनी, चाकलेट, चुरुट)।

मध्य च् : (१) सं० च् से—सं० अचल > प्रा० अचल > हि० आंचल, सं० कूर्चिका > प्रा० *कुञ्चिआ > हि० कूची, सं० कच्चर+क > प्रा० कच्चरअ > हि० कचडा। (२) सं० त से—सं० कृत्यगृहिका > प्रा० किच्चहरिया > हि० कचहरी। (३) सं० स् से—सं० कृसरान्न > प्रा० खिच्च+डी > हि० खिचडी। (४) सं० ज्ञ से—सं० अज्ञातकं > फा० हि० अचानक। (७) सं० स्त् से—सं० स्तंभित > हि० अचभित। (८) तुर्की फा० च् से (खच्चर, मुचलका, आलूचा, परचा, बच्चा)। (१०) अं० च् से (पक्चर, बोलियों मे पचर)।

अंत्य च् · (१) सं० च् से—सं० चचु > प्रा० चंचु > हि० चोंच्; सं० पंच > प्रा० पच > हि० पाँच्, (२) सं० त से—सं० नृत्य > प्रा० नच्च > हि० नाच्, सं० सत्य > प्रा० सच्च > हि० साच्, साँच्, सच्। (३) सं० स से—सं० लालसा > हि० लालच्। (४) तुर्की फा० च् से (कूच्, चम्मच्)। (५) अं० च् से (मैच्, बेच, टार्च् इच्)।

छ् · आदि छ् (१) सं० छ् से—सं० छत्रक > प्रा० छत्तअ > हि० छाता; सं० छाया > प्रा० छाआ > हि० छाँह; सं० छिद्र प्रा० छिद्द > हि०

छेद। (२) सं० ष् से—सं० षट्पद>प्रा० छप्पय>हि० छप्पय; सं० षष्ठ>प्रा० छट्ठ>हि० छठ (I)। (३) सं० श् से—सं० शक-टक>प्रा० *छक्ककडअ>हिं० छकडा, सं० शल्कल<हि० छिलका। (४) सं० च् से -सं० चित्र>हि० छीट। सं० क्ष् से—सं० क्षुद्र+क>प्रा० छुट्टु+अ>हिं० छोटा; सं० क्षुरक>प्रा० छुरअ>हि० छुरा।

मध्य छ् (१) सं० क्ष् से—सं० कक्षपट्टिका>प्रा० कच्छुट्टिया>हि० कछौटी, सं० ऋक्षिणी>हि० रीछनी। (२) सं० त्स् से—सं० उत्साह>प्रा० उच्छाह>हि०>उछाह, सं० उत्सग>प्रा० उच्छग>हि० उछग (गोद), सं० वत्सक>प्रा० वच्छअ>हि० बाछा (प्रा० मे ड प्रत्यय से बछडा)। सं० मत्स्य>प्रा० मच्छ+ली>हि० मछली। (३) सं० च् से—सं० वृश्चिक>प्रा० विच्छुअ>हि० बिच्छू, सं० पश्चाताप>प्रा० पच्छाताअ>हि० पछतावा।

अत्य छ् (१) सं० छ् से—सं० पृच्छ>प्रा० पुच्छ>हि० पूछ् (धातु); सं० पुच्छ>प्रा० पुच्छ>पूँछ। (२) सं० क्ष से—सं० ऋक्ष>प्रा० रिच्छ>हि० रीछ्। (३) सं० श से—सं० श्मश्रु>प्रा० म्हच्छु>हि० मूँछ।

ज आदि ज् (१) सं० ज् से सं० जतुगृह>प्रा० जउहर>हि० जौहर, सं० जिह्वा>प्रा० जिब्भा>हि० जीभ; सं० ज्येष्ठ>प्रा० जेट्ठ>हि० जेठ, सं० ज्वल>प्रा० जल्>हि० जल् (धातु)। (२) सं० द से सं० द्यूत>प्रा० जूआ। (३) सं० य् से सं० यमुना>जमना, जमना; सं० यूप>प्रा० जूस>हि० जूस (अ० भी जूस), सं० यव>प्रा० जो>हि० जौ, सं० यादृश>प्रा० जइस्—हि० जैसे (I), सं० यूक>प्रा० जूअ>हि० जूँ। (४) फा० ज् से—(जासूस, जिल्द, जवाब)। (५) पुर्त० ज् से (जँगला)। (५) अं० ज से (जज, जक्शन, जनवरी)

मध्य ज् (१) सं० ज से—सं० स्वजन>सजण, सज्जण>हि० सजन, साजन, सं० पजरक>प्रा० पजरअ>हि० पिजरा, पिजडा, सं० कज्जल>प्रा० कज्जल>हि० काजल, सं० वाणिज्यकारक>प्रा०

वाणिज्जारअ>हि० वनिजारा वनजारा। (२) स० द्य् से—सं० विद्युत—इका>प्रा० विज्जुलिआ>हि० बिजली, स० वाद्य+क>प्रा० वज्जअ>हि० बाजा, (३) स० च् से—कुचिका>कुजी, पचक>पजा। (४) स० य् से—स० यवानिका>अजवाइन; सरयू>सरजू। (५) स० द् से—स० गदाधर>हि० गजाधर (नामो मे)। (६) फ़ा० ज् से (पायजामा, अजीव, इजलास)। पुर्त० ज् से (काजू, गिरजा)। (७) अं० ज् से (एजेंट, एजेंसी, इंजीनियर, इंजन)।

अंत्य ज्: (१) स० ज् से—स० भ्रातृजाया>प्रा० भाउज्जा>हि० भावज्। (२) स० राज्य>रज्ज>हि० राज्, लज्जा>प्रा० लज्ज>हि० लाज्, (३) स० द से—स० अद्य>प्रा० अज्ज>हि० आज्, स० अन्नाद्य>प्रा० अणज्ज>हि० अनाज्, स० खाद्य>प्रा० खोज्ज>हि० खोज्। (४) स० य् से—स० तृतीय>प्रा० तिइज्ज>अप० तइज्ज>हि० तीज्; स० कार्य>प्रा० कज्ज>हि० काज्; स० शय्या>प्रा० सेज्जा>हि० सेज्। (५) फ़ा० ज् से (हज्, रज्, इलाज, गज)। (६) पुर्त० ज् से (काज—बटन का)। (७) अं० ज् से (जज्, गैरेज, ब्रिज)।

झ्: आदि झ्: (१) स० झ से—स० झाट>प्रा० झाड हि>झाड,>सं० झप>प्रा० झख>हि० झख (मुहावरा—झख मारना)। (२) स० श् से—स० शद्>प्रा० झड्>हि० झड (ना)। (३) स० ध से—स० ध्वजदडक> *झडअ>झडा (इसे प्लाट्स ने 'जयतक' से जोडा है।), स० अध्यापक>प्रा० अज्झावय>अज्झा>झा।

मध्य झ्. (१) सं० झ् से—स० झंझा>प्रा० झझा>हि० झझा। (२) स० ध से—स० उपाध्याय>हि० ओझा, स० अनध्याय>हि० अझा।

अंत्य झ् (१) स० ध से—स० सध्या प्रा० सझ>हि० साँझ, स० वध्या>प्रा० वझ>हि० बाँझ्।

ङ् मध्य ङ्: (१) स० ङ् से—स० ककाल>हि० कगाल, (२) स० न् से—स० नग्न—क >प्रा० नग्गओ>हि नगा। (३) आगम—

स० कर्कर>प्रा० कक्कर; >हि० कंकड़ (४) फ़ा० ङ से (दगल, तंग, जग, रगीन)। (५) अ० ङ् से (बैंक, टैंक)।

ञ : आदि मे तथा अत मे नही आता। मध्य ञ् : (१) सं० ञ् से—सं० पचक>पचअ>पजा। (२) आगम—सं० मज्जन>हि० मजन, (३) फ़ा० से (रज, गज, सजीदा)। (४) अ० से (इजन, इजीनियर, इच, रिंच)।

ण : आदि मे यह हिंदी मे नही आता। मध्य ण् : (१) स० ण् से—स० अगणित>हि० अगणित (अगँडित्), स० प्रामाणिक>हि० प्रामाणिक (प्रामाँड़िक्), स० वर्णन>हि० वर्णन (वरडँन्)। अर्थात् इनमे ण अनुनासिक उत्क्षिप्त है। स्पर्शयुक्त ण —स० पण्डित> हि० पंडित; स० खण्ड>हि० खंड। (२) अ० शब्दो में (अंडरवियर, कट्रोल, कडक्टर, वडल)। अंत्य ण् (३) स० ण् से—सं० गुण>हि० गुण, स० पण >हि० प्रण (उत्क्षिप्त डँ है)।

न . आदि न् (१) स० न् से—स० नव>प्रा० णअ, णउ>हि० नौ; सं० निद्रा>प्रा० णिद्द>हि० नीद्। स० नृत्य>प्रा० णच्च>हि० नाच । (२) स० ज्ञ् से—सं० ज्ञातिगृह>प्रा० णइहर>हि० नैहर। (३) स० ल से—स० लवण>प्रा० लोण>हिदी नोन, नून (बोलियो मे)। (४) तुर्की, फ़ा० न् से (नागा, नमक, नाख़ून, नहर) (५) पुर्त० ल से—पुर्त० लेलॉव>हि० नीलाम(बोलियो में लिलाम कहते है, जो मूल के अधिक निकट है)। (६) अं० न् से (निव, निकर, नोटिस)। मध्य न् (१) स० न् से—स० पानीय>प्रा० पाणिअ>हि० पानी; (२) स० ण से—स० चणक>प्रा० चणअ >हि० चना; स० गृहणी>प्रा०>घरिणी>हि घरनी; सं० प्राघूर्णक>प्रा० प्राहुणग>पाहुणअ>हि० पाहुना; सं० स्वर्णकार>प्रा० सुण्णार >हि० सुनार, (३) स० ज्ञ से—स० विज्ञप्तिका>प्रा० विण्णत्तिआ>हि० बिनती। (४) तुर्की, फा० न् से (गनीमत, अनार, आमदनी), (५) पुर्त० न् से (अनन्नास, सन्तरा)। (६) अ० न् से (चिमनी)।

अंत्य न् . (१) सं० न् से—स० स्तन>प्रा० थण>हि० थन्; सं०

भगिनी>प्रा० भइणी, वहिणी, बहिण्य>हि० बहिन्, वहन्; सं० धान्य>प्रा० धण्ण>हि० धान् । (२) सं० ण् से—सं० ऊर्णा> प्रा० उण्णा>हि० ऊन्; सं० कर्ण>प्रा० कण्ण>हि० कान; सं० पर्ण>प्रा० पण्ण>हि० पान्, सं० कंकण>प्रा० कंकण>हि० कंगन। (३) सं० ञ् से—सं० अष्टापंचाशत>प्रा० अट्ठावण>हि० अट्ठावन् । (४) स० ल से—सं० जम्बूफल>जम्बुल>जम्मुन>हि० जामुन् (५) तुर्की, फ़ा० न् से (क़ालीन, आसमान्, अरमान्, कानून) (६) पुर्त० न से (आलपिन्, क्रिस्तान्, कप्तान्) । (७) अं० न् से (दर्जन्, आपरेशन्, टेलीफोन्) ।

न्ह : आदि न्ह : मानक हिंदी में नहीं है ।

मध्य न्ह : (१) सं० ष्ण् से—सं० कृष्ण+क>प्रा० कण्हअ>हि० कान्हा, कन्हैया ।

अन्त्य न्ह : (१) सं० ष्ण से—सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह>हि० कान्ह् । (२) स० ह्न से—सं० चिह्न>हि० चिन्ह् ।

म् : आदि म् (१) सं० म् से—सं० मक्षिका>प्रा० मक्खिआ>हि० मक्खी, सं० मृत्तिका>प्रा० मिट्टिआ>हि० मिट्टी; सं० म्रक्षण>प्रा० मक्खण (तेल, लेप), हि० मक्खन, माखन्; सं० श्मश्रु (दाढी-मूछ) >प्रा० मुच्छु>हि० मूँछ; (२) स० ब् से—स० बकुलश्री>प्रा० वउलसिरी, वोलसिरी>मध्ययुगीन हिंदी मौलसिरी>आधुनिक हि० (स० प्रभाव के) मौलश्री । (३) तुर्की, फ़ा० म् से (मुचलका, मजदूर, मर्द,मस्त), (४) पुर्त० म् से (मिस्त्री, मारतौल) । (५) अ० म् से (मलेरिया, मशीन, मिल, मिनट) ।

मध्य म् . (१) स० म् से—स० मामिका>प्रा०मामिआ>हि० मामी; स० चर्म>प्रा० चम्म, हि० चमडा, स० जम्बूफल>जम्बुल>प्रा० जम्बुल>हि० जामुन । (२) स० द्व् से>स० उद्वेष्टते>प्रा०उव्वेढइ>हि० उमेठ (ना) । (३) तुर्की, फ़ा० म् से (तमगा, कुमक, अमानत, आमदनी, कमीना) (४) पुर्त० म् से (अलमार, गमला, कमरा) । (५) अ० म् से (कैमरा, चिमनी) ।

अत्य म् : (१) स० म् से स० नाम>प्रा० नाम>हि० नाम्, सं०

कर्म>प्रा० कम्म>हि० काम्; स० निम्ब>प्रा० णिम्म>हि० नीम्; स० आम्र>प्रा० अम्ब, अम्म>हि० आम्; स० दम्म (मूलत: ग्रीक)>प्रा० दम्म>हि० दाम्। (२) सं० भ् से—स० वल्लभ>प्रा० वल्लभ>हि० बालम्। (३) तुर्की, फ़ा० म् से— (बेगम्, जाजिम्, आराम्, गरम्, इनाम्, कसम्)। (४) पुर्त० व् से (नीलाम)। (५) अं० म् से (टीम्, आइसक्रीम, अलबम्, बम्)।

**म्ह्: आदि म्ह्**: मानक हिंदी मे नही है।

**मध्य म्ह्**: (१) स० ष्म् से—स० कुष्मांडक प्रा० कुम्हडअ>हि० कुम्हडा; स० तुष्मे>प्रा० तुम्हे>तुम्ह+करक>तुम्ह+अरअ> तुम्हारा, स०*तुष्मे>प्रा०तुम्हे>अप० तुम्हइँ>हि० तुम्हे।(२) स० म्भ् से—स० कुम्भकार>प्रा० कुभार, कुम्हार>हि०कुम्हार (३) सं० ह्म् से—स० ब्राह्मण>बम्हण>हि० बाम्हन (बोली) स० ब्रह्मा>हि० ब्रम्हा।

**अंत्य म्ह्**: स० ह्म् से—विपर्यय द्वारा—स० ब्रह्म>हि० ब्रम्ह्।

**ल्: आदि ल्**: (१) स० ल् से—स० लक्ष>प्रा० लक्ख>हि० लाख्, सं० लोक>प्रा० लोग>हि० लोग; (२) सं० य् से—सं० यष्टिका>प्रा० लट्ठिआ>हि० लाठी (य् से ल् सामान्यत सभव नही है)। (३) तुर्की, फा० ल् से (लाश, लगाम, लबालब, लिफाफा)। (४) पुत० ल् से (लबादा)। (५) अ० ल् से (long cloth>लट्ठा, लाड्री, लाइसेस, लैप)।

**मध्य ल्**: (१) स० ल् से—स० शिथिल>प्रा० सिढिल>हि० ढीला, स० श्यालक>प्रा० शिआलअ>हि० साला; स भल्लुक>प्रा० भल्लुअ>हि० भालू; स० वल्लभ>हि० बालम। (२) सं० र् से —स० हरिद्री (हरिद्रा भी)>प्रा० हलिद्दी>हि० हल्दी; स० चत्वारिंशत्>प्रा० चत्तालीसा>हि० चालीस्। स० पर्यड्क>प्रा० पल्लग>हि० पलंग (३) सं० ड् से—स० तडाग>प्रा० तलाअ तलाव>हि० तालाब (४) स० द्र् से—स० भद्र+क>प्रा० भल्लअ>अप० भल्ला>हि० भला। (५) स० त् से—स० *विद्युतिका>प्रा० बिज्जुलिआ>विज्जुली>हि० बिजली; सं०

अतीसी, अतसी>प्रा० अतसी, अलसी>हि० अलसी । (६) सं० ड् से—स० षोडश>प्रा० *सोडस, सोलह>हि० सोलह् । (७) तुर्की, फा० ल् से (गलीचा, मुचलका, अक्लमद, कलाबाजी, अदालत (८) पुर्त० ल् से (आलपिन, नीलाम, गमला) । (९)अं० ल् से (एटलस, अलबम, पलास, पतलून, कालर) । (१०) अ० र् से—अ० ड्रिल>दलेल ।

अंत्य ल् : (१) स० ल् से—स० कज्जल>प्रा० कज्जल>हि० काजल; स० खल>हि० खरल्, स० गल्ल>प्रा० गल्ल>हि० गाल्; स० कल्य>प्रा० कल्ल>हि० कल्; स मूल्य>प्रा० मोल्ल>हि० मोल्, सं० विल्व>प्रा० वेल्ल>हि० वेल्(श्रीफल)। (२) स० र्ण् से—स० घूर्ण>प्रा० घोल्ल>हि० घोल् (धातु) । (३) स० त् से—स० हारीत>हि० हारिल (एक पक्षी) । (४) स० र् से—स० वब्बूर>प्रा० बब्बूर>हि० बबूल(कीकर) । (५) तुर्की, फा० ल् से (ख्याल्, कोतल्; लाल्, बगल्, काहिल्) । (६) पुर्त० ल् से (पिस्तौल्, बोतल्) । (७) अ० ल् से (गोल्, जेल्, अस्पताल्) ।

ल्ह् . आदि ल्ह् परिनिष्ठित हिन्दी मे आदि मे नही आता ।

मध्य ल्ह् . (१) स० ल्ह् से—स० कुल्हरिका>हि० कुल्हड, स० चुल्हक >प्रा० चुल्हअ>हि० चूल्हा । (२) स० ठ् से—कुठारक>हि० कुल्हाडा ।

र् आदि र् (१) स० र् से—स० अरघट्ट>प्रा० अरहट्ट>रहट्ट >हि० रहट्; स० रात्रि>प्रा० रत्ति>हि० रात्; स० राज्ञी> प्रा० रञ्ञी, राणी>हि० रानी, (२) स० ऋ से री—स० ऋक्ष >प्रा० रिच्छ>हि० रीछ । (३) स० न्य् से—स० न्यज>प्रा० णच>हि० रच । (४) स० ल् से—स० लाला>हि० राल। (५) तुर्की, फा० र् से (रब्बा=एक गाडी, रूमाल, रोशनी, रिश्ता, (६) अ० र् से (रगरूट, रजिस्ट्री, रबर) ।

मध्य र् . (१) स० र् से—स० गैरिक>प्रा० गेरुअ>हि० गेरू, सं० आरात्रिक>प्रा० आरत्तिअ>हि० आरती; (२) स० ऋ से—

सं० कृ०>प्रा० कर>हि० कर्, स० मृ>मर>मर; स० गृहिणी >प्रा० घरिणी>हि० घरनी; (३) स० द् से—स० एकादश> प्रा० एगारह>हि० ग्यारह; स० द्वादश>प्रा० बारस>बारह> हि० बारह्। (४) स० ल् से—स० प्रक्षाल—>प्रा० पक्खार— >हि० पखार (ना); स० अट्टालिका>प्रा० अट्टारिआ>हि० अटारी; (५) सं० ट से—स० वाटिका>प्रा० वाडिआ>हि० वाडी>बारी; स० विटपक>प्रा० विडवअ>विरवअ>हि० विरवा। (६) आगम—स० कोटि>प्रा० कोडि>हि० करोड़; अ० डजन<दर्जन, स० पण>हि० प्रण्, सं० खल>हि० खरल्, स० शाप>हि० श्राप। (७) तुर्की, फ़ा० र् से (कुर्ता, बारूद, सुराग, आबरू, आराम)। (८) पुर्त० र् से (अलमारी, पादरी, गिरजा, सन्तरा, कमरा)। (९) अं० र् से (आपरेशन, दराज, ओवर-सियर, सर्कस)।

अन्त्य र् (१) स र् से – स० अपर<प्रा० अवर, अउर<हि० और, स० माकर>प्रा० मक्कार>हि० मक्कार, (२) सं० ल् से—स० अवेला>हि० अबेर्, सवेला>सबेर् (अबेर-सबेर), स० कवल> हि० कौर्, स० शृगाल>प्रा० सिगाल>हि० सियार्। (३) स० त् से—स० सप्तति>प्रा० सत्तरि>हि० सत्तर्, स० सप्त-सप्तति>प्रा० सत्तहत्तरि>हि० सतहत्तर्, सतत्तर्। (४) सं० ट् से—स० आखेट>प्रा० आहेड>हि० अहेर् (शिकार)। (५) स० ऋ से– स० ज्ञातिगृह>प्रा० णइहर>हि० नैहर्, स० पितृगृह >हि० पीहर्। (६) तुर्की, फ़ा० र् से (बहादुर्, खच्चर्, अजीर्, अदर्, अनार्, काश्तकार्)। (७) अं० र् से (अक्तूबर्, कडक्टर, इन्स-पेक्टर, टाइपराइटर, कलेंडर)। (७) अ० शब्द मे आगम – अ० टमाटोउँ (Tomato)>हि० टमाटर्। इस प्रकार का यह अकेला शब्द है।

ड़ आदि मे यह ध्वनि नही आती।

मध्य ड़ : (१) स० ड् से - स० पीडा>प्रा०पीडा>हि० पीडा; स० पण्डित>पडइ>हि० पाँडे, स० गड्डुलिका>प्रा०गड्डुरिगा< हि० गडरिया, स० जाड्य>प्रा०जड्डा>हि० जाडा, स० ओड्रिक<

ओड्डिअ>हि० उडिया। (२) सं० ट् से—सं० घोटक>प्रा० घोडअ>हि० घोडा,-स० वाटिका>प्रा० वाडिआ>हि० बाड़ी (वारी भी); स० कटाहिका>प्रा० कडाहिआ>हि० कडाही; सं० अष्टत्रिंशत>प्रा० अट्ठतीसा >हि० अडतिस, स० हट्टताल> हि० हडताल (कदाचित् गुजराती होते)। (३)स० द् से—सं० सदंशिका>प्रा० संडसिया>हि० सँडसी, स० कपर्दिका>प्रा० कवड्डिआ>हि० कौडी। (४)स० त् से—स० बिभीतक>प्रा० बहेडय>हि० बहेडा; स० प्रतिवेश>प्रा० पडोस>हि० पडोस, सं० आम्रातक >प्रा० अम्बाटक>अबाडय>*अम्माडअ>हि० आमडा, अमडा। (५) स० र् से—स० कच्चर+क>प्रा० कच्चरअ>हि० कचडा; स० द्वादशाक्षरी>हि० बारहखड़ी, सं० प्रस्तारक>पहाडा; सं० कच्चपूरिका>हि० कचौडी। (६) स० ल् से—स० पूपालिका> प्रा० पूवलिया>हि० पूडी (पूरी भी)। (७) फा० र् से—फा० शरक (मूलत अरबी)>हि० सड़क। (८) अं र् से (बूचडखाना)।

अन्त्य ड् (१) स० ड् से—स० एड्डक>प्रा० एड>हि० एड्, स० षड (शड भी)>प्रा० सड>हि० सॉड्; स० खड>प्रा० खड> हि० खॉड्; स० शुड>प्रा० सुड>हि० सूंड्। (२) सं० ण् से—स० पाषाण<प्रा० पहाण<हि० पहाड़। (३) सं० ट् से—स० पर्पट <प्रा० पप्पड<हि० पापड्, स० कोटि>प्रा० कोडि>हि० करोड्; (४) सं० स्थ् से—स० अस्थि>प्रा० हड्डि,हड्ड>हि० हाड् (हड्डी प्रा० अवशेष है)। (४) स० र् से—स० कर्कर>प्रा० कक्कड> हि० ककड़, स० कुल्हरक>हि० कुल्हड। (५)तुर्की र् से (तगाड़्) (६) अं० र् से (रबड़्, एकड्, बूचड्)।

ढ्. यह ध्वनि आदि मे नही आती।

मध्य ढ्· (१) स० ढ् से—स० गाढ>प्रा० गाढ>हि० गाढा। (२) स० थ् से>स० क्वाथ+क>प्रा० कड्ढअ>हि० काढा। (३) स घ से—स० अर्द्धतृतीयक>प्रा० अड्ढइअ>हि० अढाई, स० द्वि-अर्द्धक>प्रा० डिअड्ढअ>हि० डेढा, ड्योढा, स० सार्द्ध>प्रा० सड्ढ>साढ़े; स० वर्धकिन्>प्रा० वड्ढकिअ>हि० बढई; सं०

वृद्ध>प्रा० बुड्ढअ>हि० वूढा। (४)स० ठ् से—सं० पठन>प्रा० पढण>हि० पढना, स० पीठिका>हि० पीढी। (५)सं० ड् से—स० गडिका>प्रा० गटिआ>हि० गढी।

अत्य ढ्. (१) स० ढ् से—स० गूढ>प्रा० गूढ>हि० गूढ, स० आषाढ>प्रा० आसाढ>हि० असाढ्, (२) स० ठ् से—स० पठ्>प्रा० पढ्>हि० पढ् (धातु)। (३) स० ट् से—स० कुष्ट>प्रा० कोड्ढ>हि० कोढ्, स० घट>प्रा० गढ>हि० गढ् (धातु), स० दष्ट्र>प्रा० दड्ढ>हि० दाढ्। (४) सं० ध से—स० द्विअर्द्ध>प्रा० डिअड्ढ>हि० डेढ्, स० वर्द्ध>प्रा० बड्ढ>हि० बाढ, वढ (धातु)। (५) स० ध से—स क्रुध्य (ति)>प्रा० कुड्ढ>हि० कुढ् (धातु)। (६) सं० र्ष् से—स० कर्ष>प्रा० कड्ढ>हि० काढ।

फ़्. आदि फ़् (१) फा० फ् से (फायदा, फ़ासला, फरमाइश, फौज)। (२) पुर्त० फ् से (फीता, फर्मा)। (३) अ० फ् से (फैशन, फोटो, फीस, फैक्टरी)।

मध्य फ़् (१) फा० फ् से (अफसोस, खुफ़िया, गिरफ़्तार, अफवाह)। (२) पुर्त० फ् से (काफ़ी)। (३) अ० फ़् से (अफसर, ऑफिस, सोफा, मफलर, टेलीफोन)

अत्य फ़् (१) फ़ा० फ़् से (साफ, इसाफ, उफ, गफ, कफ, खरीफ)। (२) अ० फ़् से (रफ, कफ)। (३) सं० ष्प से—स० शतपुष्पा>हि० सौफ। इसे उर्दू मे 'फे' से लिखते है। हिन्दी का भी पढा-लिखा समाज इसे 'सौफ' न कहकर 'सौफ' ही कहता है। इस प्रकार अत्य स्थिति मे फ, ध्वनि फा०, अ० के अतिरिक्त, कम-से-कम एक शब्द मे स० से भी विकसित हुई है।

स्: आदि स् (१) सं० स् से—स० सर्प>प्रा० सप्प>हि० सॉप्, स० सत्य>प्रा० सच्च>हि० साच्, सच्, स० सप्त>प्रा० सत्त>हि० सात्, स० स्वामी>प्रा० सावी>प्राचीन हि० साई, गोस्वामी>गोसाई। (२) स० श् से—स० शाटिका>प्रा० साडिआ>हि० साडी, स० शाक>प्रा० साग>हि० साग्, स० शय्या>प्रा०

सेज्जा>हि० सेज्, सं० श्रेष्ठि>प्रा० सेट्ठि>हि० सेठ्; स० श्रावण>प्रा० सावण>हि० सावन्,, स० श्यामलक>प्रा० साँवलअ>हि० साँवला, स० श्यालक>प्रा० सिआलय, सालअ>हि० साला, स० श्वास>प्रा० सास>हि० साँस्, स० श्वश्रु>प्रा० सस्सु>हि० सास्, स० शृंग>प्रा० सिंग>हि० सींग्, स० शृंगाटक>प्रा० सिंघाडअ>हि० सिंघाडा, (३) सं० ष् से—स० षंड>प्रा० संड>हि० साँड् । (४) तुर्की, फ़ा० स् से (सौगात, सुराग; सफेद, सरकार, सज़ा) । (५) फा० श् से—फा० शरक>हि० सड़क। (६) पुर्त० स् से (साया, सतरा)। (७) अं० स से (सर्कस, सर्जन, साइकिल, सलाद)।

मध्य स् : (१) स० स् से—स असिद+क>प्रा० असिअ+अ>हि० हँसिया; स० श्वसुर>प्रा० ससुर>हि० ससुर, सं० कांस्य+क>प्रा० कस्स+अ>हि०काँसा, (२) सं० श् से—स० लशुन>प्रा० लसुण>हि० लहसुन, स० दशन>प्रा० डसण>हि० डँसना; सं० रश्मि>प्रा० रस्सि>हि० रस्सी, स० अश्रु>प्रा० अस्सु>हि० आँसू, असगन्ध (एक बूटी) । (३) सं० ष् से—स० ऊषर>प्रा० ऊसर>हि० ऊसर, स कषपट्टिका>प्रा० कसवट्टिया>हि० कसौटी; आषाढ>प्रा० आसाढ>हि० असाढ, स० *मातृष्वसिका>माउसिआ>हि० मौसी । (४) फा० स् से (अफसोस, आसमान, आसान) । (१०) पुर्त० स् से—(इस्त्री, इस्पात, पिस्तौल, मिस्त्री) । (११) अ० स् से (आइसक्रीम, एक्सरे) ।

अंत्य स् : (१) सं० स् से—स घास>प्रा० घास>हि० घास्; स० श्वास>प्रा० सास>हि० साँस् । स० कस्य>प्रा० किस्स>हि० किस् । (२) स० श से—स० दश>प्रा० दस>हि० दस्, स० विंशति>वीसइ>हि० बीस् । स० रश्मि>प्रा० रस्सि>हि रास् (घोडे की), स० पार्श्व>प्रा० पस्स>हि० पास् । स० श्वश्रु>प्रा० सस्सु>हि० सास्, स० अवश्या>प्रा० ओस्सा>हि० ओस् । (३) स० ष से—स वर्ष>हि० बरस्; स० यूष>

प्रा० जूस>हि० जूस्; (४) फ़ा० स् से (अफसोस्, आबनूम, चाप-
लूस)। (५) फ़ा० श् से—अब्रश (मूलतः अरबी)>हि० अपरस
(एक चर्म रोग)। (६) पुर्त० स् से (अनन्नास्)। अं० स् से
(एटलस्, कांग्रेस, प्रेस्, बस)।

ज़् : आदि ज़् (१) फ़ा० ज़् से (जहर, जरा, जोर), (२) अं० ज़् से
(जीरो, जीन)।

मध्य ज़्. (१) तुर्की ज़् से (उज़बक,। (२) फ़ा० ज़् तथा ज़् से (आजाद,
कर्ज़दार, अजदहा, पज़ावा, औज़ार)। (३) अं० ज़ से (सेपटीरेजर,
चिम्पैंजी)।

अंत्य ज़् : (१) फ़ा ज़ से (राज़, आवाज़, अन्दाज़)। (२) अं० ज़
तथा झ् से (ब्लाउज्, दराज, रूज)।

श् : आदि श् : (१) सं० श् से—सं० शिक्षा>हि० शिक्षा। (२) सं०
ष् से—सं० षडानन>हि० षडानन (शडानन्), सं० षड्यंत्र>
हि० षड्यत्र (शड्यत्र्)। (३) फा० श् से (शहर, शीशा, शाम,
शिकार)। (४) अं० श् से (शेयर, शो)।

मध्य श् : (१) सं० श् से—सं० आशा>हि० आशा; सं० विश्व>
हि० विश्व, (२) सं० ष् से—सं० शोषण>हि० शोषण (शोशड़)।
(३) तुर्की, फा० श् से (तोशक; शीशा, किश्ती, शीशी)। (४)
अं० श् से (ऑपरेशन, राशनकार्ड, पेंशन, मशीन)।

अंत्य श् (१) सं० श् से—सं० देश>हि० देश्, सं० नाश>हि० नाश्;
(२) सं० ष से—सं० दोष>हि० दोष् (दोश्)। (३) तुर्की, फ़ा०
श् से (लाश; किशमिश्, खरगोश, खानाबदोश्, खुश्। (५) अं० श्
से (पालिश्, वार्निश्)।

ख़् : आदि ख़् (१) तुर्की; फ़ा० ख़् से (ख़च्चर; ख़र्च, ख़राब, खजाना,
खास्, खरीदना)।

मध्य ख़् फ़ा० ख़् से (आखिर, चारख़ाना, अख़बार, गुस्ताखी)।

अंत्य ख़् फ़ा० ख़् से (गुस्ताख़, चखचख, शोख, शेख)।

ग़् : आदि ग़् : (१) तुर्की, फ़ा० ग़् से (गलीचा, गनीमत; गल्ला,
गरीब, गलत)।

मध्य ग् : तुर्की, फा० ग़् से (दारोगा, तमगा चुगद इस्पगोल)।

अंत्य ग् · (१) तुर्की, फा० ग़् से (सुराग, चिराग, दाग)।

ह् : विसर्ग भी 'ह' है। आदि ह् सं० ह् से—हट्ट>प्रा०हट्ट>हि०हाट्; सं० होलिका>प्रा० होलिआ>हि० होली, स० हस्तिन्>प्रा० हत्थि>हि० हाथी; (२) सं० भ् से—स० भू>प्रा० हो>हि० हो (धातु)। (३) आगम—सं० अस्थि>प्रा० हड्डि, हड्डी> हड्ड>हि० हाड, हड्डी, स० ओष्ठ>प्रा० होंठ>हि० होठ्, (४) स० ध् से-- स० अधस्तात >प्रा० हेट्ठा>हि० हेठा। (५) फ़ा० ह् से (हजार, हफ्ता, होश) (६) अं० ह् से (हॉकी, होटल, हॉल)।

मध्य ह् (१) स० ह् से—स० प्रहेलिका>प्रा० प्रहेलिआ>हि० पहेली, स० अग्रहायण>प्रा० अग्गहण>हि० अगहन्, (२) स० ख् से सं० आखेट>प्रा० आहेढ>हि० अहेर; स० द्विमुख-क>प्रा० दुमुहअ>हि० दुमुहाँ, (३) स० घ् से-स० अरघट्ट>प्रा० अर-हट्ट, रहट्ट>हि० रहट, सं० प्राघुण (प्राघूर्ण भी)>प्रा० पाहुण >हि० पाहुन, (४) स० थ् से-स० यूथी>प्रा० जूही, स० कथन>प्रा० कहण>हि० कहना। (५) स० ध् से—स० दधि> प्रा० दहि>हि० दही, स०वधू>प्रा० बहू>हि० बहू, स० बधिर >हि० बहरा, -स०फ् से —स० मुक्ताफल>हि० मुक्ताहल, स० कटकफल (काष्टफल भी)>हि० कँटहल, स० शफरी>हि सहरी (मध्ययुगीन हिन्दी)। (७) स०भ् से —स० आभीर>प्रा० अहिर, अहीर>हि०अहिर, स० गभीर>प्रा० गहिर>हि०गहरा; स० दुर्लभ +क>प्रा० दुल्लह--अ>हि० दुलहा। (८) स० ष से स० पाषाण >प्रा० पहाण>हि०पहाड। (९) स० श् से- स० केशरी>हि० केहरी (शेर); स० दश>प्रा० दह+ला>हि० दहला, (१०) स० स् से-स० एकसप्तति>प्रा० एकहत्तरि<हि० इकहत्तर; स० स्नान>हि० नहान, स०प्रस्तारक>हि०पहाडा। (११) आगम— स० लशन>प्रा० लसुण>हि० लहसुन, (१२) तुर्की, फा० ह् से (बहादुर, चेहरा, इम्तहान, ओहदा)। (१३) अ० ह् से (टाउनहाल)।

अंत्य ह् (१) सं० ह् से—स० दाह>प्रा० डाह>हि० डाह; सं० बाहु>प्रा० बाहु>हि० बाँह; (२) सं० ख् से स० मुख>हि मुँह। (३) स० घ से— स० मेघ>प्रा० मेह>हि० मेह, स० ढ् से – स० दुरूढ>प्रा० दुरूह>हि० दुरूह। (५) स० थ् से>स० कथ् प्रा० कह्>हि० कह् (धातु); (६) स० ध से स० गोधा>प्रा० गोहा >हि० गोह्, (७) स० ष् से—स० एष >प्रा० एसो>एहो> हि० यह्। (८) स० श् से –स० चतुर्दश,>प्रा० चउद्दह>हि० चौदह; स० षोडश>प्रा० सोलह>हि० सोलह्। (९) आगम — स० छाया<हि० छाँह्। (१०) फा० ह से (गुनाह, गुमराह्, जगह्, गवाह्)।

य आदि य (१) स० य से (योजना, युद्ध, यात्रा, यद्यपि, यदि)। (२) स० ए से—स० एष >प्रा० एसो>अप० एहो>हि० यह; स० एते>प्रा० एए>अप० एइ>हि० ये। (३) फ़ा० य् से (या, याद, यादगार) (४) अ० य् से (यूरोप, यूनियन, यूरेनियम)।

मध्य य (१) स० य से (प्रयत्न, सयोजक, नायक, नायिका)। (२) तद्भव शब्दो मे विभिन्न व्यजनो के लोप से श्रुति-रूप मे आगत य— स० कोकिल>प्रा० कोइल>हि० कोयल, स० कोकिला (= अगारा)>प्रा० कोइला>हि० कोयला: स० गुटिका>प्रा० गुडिया>हि० गुडिया, स० कातर>प्रा० कायर>हि० कायर; (३) व्याकरणिक पदो मे श्रुति रूपो मे लाया, जायेगा, लाये, (४) तुर्की, फा० य् से (ख़याल, खुफिया, साया, असलियत)। (५) पुर्त० शब्दों में (आया, साया तौलिया)। (६) अ० शब्दो में (इजिनियर, डेयरी, टायर, डायरी)।

अत्य य् (१) स० य् से-- समय, आशय, अभिनय, (२) स० इ से -- स० गाविका>प्रा० गाई>हि० गाय। (३) लोप के कारण श्रुति-रूप मे आगम—स० प्रिय>प्रा० पिअ>हि० पिय्, स० पट्पद> प्रा० छप्पय>हि० छप्पय्। (४) तुर्की, फा० य् से (सराय्, राय्, बजाय्)।

व · आदि व् : (१) सं० व् से (सजग सुशिक्षित लोगों के उच्चारण में)—वधू, वन, वशी, वर्ष, वर्तमान। (२) विवादास्पद व्युत्पत्ति के कुछ तद्भव शब्दों में (वह, वहाँ)। (३) फा० व् से (वकील, वक्त, वर्ना, वजन)। (४) अँ० व् से (विकेट, वायलिन, वारट, वार्निश।

मध्य व् (१) स० व् से—स० श्रावण>प्रा० सावण>हि० सावन, (२)स० प् मे—स० अष्टापचाशत>प्रा० अट्ठावण्ण>हि० अट्ठावन्, स० उत्तापल+क>प्रा०उत्तावल+अ>हि० उतावला, स०विटपक>प्रा० विरवअ>हि० विरवा, (३) स० म् से—स० श्यामलक>प्रा० साँवलअ>हि० साँवला, स० आमलक>प्रा० आमलअ>हि० आँवला, (४) फ़ा० शब्दों में (हवा, आवाज़, आवारा)। (५) अ० शब्दो मे (नवम्वर, रेलवे, ओवरसियर, ओवरकोट)।

अत्य व् (१) स० व् से—अभिनव्, गौरव्, शव्, नाव् (स०वहु०नाव· से)। (२) स० म् से (पूर्ववर्ती स्वर प्राय· अनुनासिक हो जाता है)—सं० आम>आँव् (कब्ज़), स० ग्राम>गाँव्, नाम>नाँव्। (३) स० प से—स० ताप>प्रा०ताव>हि० ताव् (गर्मी, क्रोध)। (४) लोप के बाद श्रुति रूप मे आगम—स० पाद>पाव, पाँव, स० राजा>प्रा० राआ, राअ, हि० राव। (६) कुछ तकनीकी अंग्रेजी शब्दो मे (निगेटिव)।

अनुनासिकता . आदि मे यह नही आती।

मध्य (१) स० ङ् से—स० अगिका>हि० अँगिया, स० जघ>हि० जाघ। (२) स० ञ् से—स० पच>हि० पाँच, स० अचल>हि० आँचल। (३) स० ण् से—स० कण्टक>हि० काँटा, स० भांड>हि० भाँडा; स० मड>हि० माँड। (४) स० न् से—स० चन्द्र>हि० चाँद, सँ० स्कध>हि० काँधा। (५) स० म् से—स० कम्पन>हि० काँपना, स० भ्रमर>हि० भौरा, स० आमलक>हि० आँवला। (६) स्वत अनुनासिकता—स० सर्प>हि० साँप, स० अक्षि>हि० आँख, स० कक्ष>हि० काँख, स० वेत्र>हि० बेत।

अत्य : (१) सं० स् स—स० किम्+एव>हि० क्यों, सं० स्वामी> हि० साई; स० गोस्वामी>हि० गोसाईं। (२) स्वतः—स० यूक> हि० जूँ; स० भ्रू>हि० भौ।

## फ़ारसी शब्दों में ध्वनि परिवर्तन

फारसी मे अरबी शब्द भी समाहित है, क्योकि अरबी शब्द भी फारसी के माध्यम से हिदी में आए है। फारसी और हिदी मे ध्वनियां दो प्रकार की है

(क) समान ध्वनियाँ (ख) असमान ध्वनियाँ .

### समान ध्वनियाँ

फारसी की उन ध्वनियो मे कोई उल्लेख्य परिवर्तन नही हुआ जो हिन्दी के प्राय समान है

(१) आ (आदमी, आराम, आजाद, आबादी, तोता). (२) इ (इज्जत, इनाम, निशान, आखिर, कि, बल्कि), (३) ई (ईमान, ईजाद, अमीर, कारीगर, आसानी); (४) उ (उस्तरा, उस्ताद, दुनिया फुर्सत) (५) ऊ (उदा (आसमानी रग), सूद, आबनूस, तराजू), (६) ए (एहमान सफेद रेशम); (६) ओं (जोर, कोफ्ता, कमजोर कोशिश, कानूनगो) (८) क् (किताब, कम, नौकर, सरकार, चाबुक, नमक); (९) ग् (गर्दा, गवाह, खरगोश, अंगूर, तग, जग, बुजुर्ग), (१०) त (तबला, तोता कबूतर, किताब, मौत्, दोस्त)। (११) द (दग, दगल, सूद, दर्द्) (१२) प् (पनीर, पोशाक, वापम, आबपाशी; गप्), (१३) ब् (बदरगाह् बस्ता, अबीर, आबाद, कबाब्, किताब्), (१४) ड् (अगूर, तग, रगीन), (१५) स् (मजा, मैदा, अमीर, आदमी, आराम् कम्), (१६) व् (वकालत, वजह, वक्त, हवा, हलवा, पुलाव)

### असमान ध्वनियाँ

ये ध्वनियाँ तीन प्रकार की है।

(क) **जिन्हें हिंदी और हिंदी की उर्दू शैली ने ग्रहण कर लिया है** · (१) क़ (कायदा, कानून, अक्ल, शौक), (२) ख (खराब, खून;

अखबार; गुस्ताख); (३) ग़ (गुस्सा, गरीब; बगल; दिमाग, मुर्ग);
(४) फ़ (फैसला, फौरन, सफेद, लिफाफा, साफ़, खिलाफ़)।

(ख) **जिन्हें ग्रहण किया है किंतु परवर्तित रूप में** (१) ज (यह फारसी में तीन प्रकार की थी ज़े (दत्य-सघर्षी), झे (तालव्य-सघर्षी) ज़ाल ('द' से मिलती-जुलती दत्य-सघर्षी)। अरबी के जोय (कंठस्थान युक्त दंत-सघर्षी) और ज्वाद (कठस्थानयुक्त दंतवर्त्स्य स्पर्श ध्वनि, द से मिलती-जुलती) ध्वनियां इन्हीं में समाहित हो गई। हिन्दी ने फारसी की इन तीनो ध्वनियो को ज (वर्त्स्यसघर्षी) रूप मे ग्रहण किया · ज़हर, जिदगी, इन्तज़ाम, कब्ज़ा; रोज, जहाज।

(ग) **जो हिंदी की मिलती-जुलती ध्वनियों में परिवर्तित हो गई** · (१) स (फा मे दत्य सघर्षी, अरबी मे तीन स्वतत्र ध्वनियाँ थी से, स्वाद, सीन; फा में एक रह गई थी; हिंदी मे यह वर्त्स्य सघर्षी हो गई · साहब, सबूत; आसान, आसमान, खास, इजलास); (२) न (दंत्य से वर्त्स्य; नौकर, नरम; अनार, आमदनी; खून, दीवान); (३) च (तालव्यवर्त्स्य से तालव्य; चरबी, चुस्त, अचकन, पेच, खर्च); (४) ज (तालव्य वर्त्स्य से तालव्य; जेब, जान; नतीजा, अजीर, लहजा; खारिज), (५) य (तालव्यवर्त्स्य से तालव्य; यार, याद; किफायत, राय), (६) श (तालव्यवर्त्स्य से तालव्य; शायद, शहर, शीशा, किशमिश, कोशिश); (६) र (तालव्य वर्त्स्य का वर्त्स्य; रगीन, रोज, आराम, नरम, अनार, अन्दर); (८) ल (तालव्यवर्त्स्य का वर्त्स्य; लगाम, लापता; अदालत, कलई; इस्तेमाल, ख्याल); (९) ह (अरबी मे दो हे थी उपालिह्वीय, स्वरयत्रमुखी; फा० एक : अघोष स्वरगत्रमुखी; हिंदी में वह घोष हो गई; हवा, हजार, नहर, जहर, अफवाह, राह); (१०) अल्पोच्चारित ह '?' (हिंदी मे आ हो गया : इशारह्-इशारा, किनारह्-किनारा, इरादह्-इरादा), (११) स्वर यत्रमुखी स्पर्श (हिंदी मे आदि मे तो यह लुप्त हो गया (अरब, अक्ल, ईद, ईसवी) और मध्य तथा अत मे आ हो गया बाद, इनाम, मशाल, जमा, मना); (१२) अ (विवृत अ का अर्धविवृत अ—अजीर, अन्दाज, खबर), (१३) अइ (सयुक्त स्वर अइ का ऐ; ऐनक, मैदान, शैतान, कैद); (१४)

अउ (सयुक्त स्वर अउ का औ; औरत, शौकीन, दौलत)।

**विशेष परिवर्तन :**

उपर्युक्त सामान्य परिवर्तनों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के विशेप परिवर्तन भी मिलते हैं। लोक भाषाओ से क्षेत्रीय परिवर्तन भी अनेक प्रकार के है, जो केवल सीमित क्षेत्रो मे मिलते हैं। **लोप** (जियादती>ज्यात्ती, जात्ती, ज्याद्त्ती, मु? आमलह्>मामला, वोय>बू, खुशबोय>खुशबू, मजदूर>मजूर, ख्वाहिश>खाहिश, मुवाफिक, -म्वफिक), **ह्रस्वीकरण** (नव्वाब>नवाव, दल्लाल>दलाल, जिद्द>जिद्, हक्क>हक, खत्तहा>खाता, आचार>आचार); **अनुनासिकता** (दुनिया>दुनियाँ); **सधि से महाप्राणीकरण** (बिहिश्ती>भिश्ती); **मूर्धन्यीकरण** (शरक>सड़क, दायर>डायर (मुकदमा डायर करना), दायम-उल-हब्स>डामल); **विपर्यय** (फतीलह>फलीता, कुफ्ल>कुल्फी, लमहा>लहमा); **अत्य न् का अनुनासिकता में परिवर्तन** (कानून>कानूँ, खान>खाँ, मियान्>मियाँ); **घोषीकरण** (नकद>नगद; तकादह्>तकाजा, तगादा), **आगम** (गर्म>गरम, शर्म>शरम, हुक्म>हुकुम; तथा हमजा का ई (इस्त?फा>इस्तीफा आदि।

**अग्रेजी ध्वनियों में परिवर्तन**

तुलनात्मक दृष्टि से हिंदी और अँग्रेजी की ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं. समान, असमान।

**समान ध्वनियां :**

अग्रेजी से हिन्दी मे जो शब्द आए है उन में उन ध्वनियो से परिवर्तन या किसी खास परिवर्तन की सभावना नही है जो दोनो भापाओ मे समान है। जैसे (१) **आ** (पास, क्लास, ड्रामा; अपवाद क्ला क—क्लर्क); (२) **ई** (क्रीम, टीम; अपवादत· ई का ऐ. कुनीन -कुनैन); (३) **ऊ** (जून, प्रूफ, सूप; अपवादत . ऊ का ओ : ऐरऽरूट—अरारोट); (४) **ग** (गिलास, गोल, वैग, कॉग्रेस); (५) **ब** (वैक, वटन, डवल, अक्तूबर, निब); (६) **ड** (टैक, बैक), (७) **न** (नववर, नोटिस, नोट, जून), (८) **म** (मोटर, मलेरिया, कैमरा, बम), (९) **य** (यार्ड), (१०) **स** (सर्कस, सिनेमा, बस, प्रेस); (११) **फ़**

(यह मूलतः हिन्दी का नहीं है किंतु अंग्रेज़ी जब आई, उसके पहले फारसी से हम इसे ग्रहण कर चुके थे, : फोन, फाइल, आफिस, कफ); (१३) ज़ (यह भी मूलतः हिंदी का नहीं है, किंतु अंग्रेजी से शब्दो के आने के पहले फ़ारसी से यह ध्वनि परिवर्तित होकर हिंदी मे आ चुकी थी : जीन ज़ीरो, सेफ़्टीरेज़र, दराज़, ब्लाउज) :

असमान ध्वनियाँ

(१) . अं० मे मुख्यत. दो अ (ʌ, ə) हैं। डज़न् (dozon-dʌzn) में पहला है तो, सैलड् (salad-saæ ləd) में दूसरा। पहला अर्ध-विवृत्त मध्य स्वर है, तथा दूसरा उदासीन स्वर (neutral vowel या श्वा schwa), जिसका स्थान प्रायः इससे कुछ ऊपर होता है। हिन्दी मे भी कभी-कभी एक उदासीन स्वर का प्रयोग होता है, किन्तु अं० के इन दोनो अ को प्राय हि० मे सामान्य अ (अर्ध-विवृत मध्य स्वर) कर देते है रबर, टन, कम्पनी, अपील, एकड़)।

(२) इ : अ० इ अर्ध-सवृत है। हि० मे यह सवृत इ मे परिवर्तित हो जाती है . इंच, डिग्री, निब। अत्य इ हि० मे प्राय. ई हो जाती है : अर्दली, अकादमी, कमेटी।

(३) उ : अं० उ अर्ध-सवृत है। हि० मे आकर वह सवृत हो गया है : फुटबॉल, फुट, हुक, जुलाई।

(४) एँ अ० ए (e) के, अ० मे दो उच्चारण है। कुछ लोग इसे अर्ध सवृत एवं अर्ध-विवृत के प्रायः ठीक बीच से बोलते है, और कुछ लोग अर्ध-विवृत मुख्य स्वर से थोडा ही ऊपर अर्थात अर्ध विवृत। हि० मे इसे प्राय अर्ध संवृत कर दिया जाता है . रेकार्ड, वेच, पेन।

(५) ऐ : अ० मे यह सामान्यत. अर्ध-विवृत है। यो विभिन्न लोगो के उच्चारण मे यह विवृत एव अर्ध-विवृत के बीच में या उसके आस-पास भी उच्चरित होती है। हि० मे सामान्यत इस मूल स्वर के स्थान पर पूर्वी क्षेत्र में सयुक्त स्वर ऐ बोलते है . गैस, वैक, कैमरा, वैड, टैंक।

(६) अं : अं० में यह (ɔ) पश्च विवृत ह्रस्व स्वर है। हि० में इसे अं० से गृहीत किया गया है, किन्तु हि० का ऑ, अंग्रेजी की इस ध्वनि से कुछ भिन्न है। एक तो अ० ध्वनि विवृत है, किन्तु हि० ध्वनि अर्ध-विवृत है। इसके अतिरिक्त अं० ध्वनि ह्रस्व है जब कि हि० मे इसे प्राय लोग दीर्घ बोलते हैं कॉलिज, प्लॉट, डॉक्टर।

(७) अऽ यह (ɜ:) अर्ध-सवृत दीर्घ मध्य स्वर है। उसके बाद प्रायः र ध्वनि होती है जो अनुच्चरित रहती है। हि० मे इसके स्थान पर सामान्य अर्ध-विवृत ह्रस्व अ बोलते हे और र् का उच्चारण करते है नर्स, फर, चर्च, पर्स।

(८) एइ अ० मे 'एइ' सयुक्त स्वर है। हि० मे इसे अर्ध सवृत दीर्घ अग्र मूल स्वर ए कर देते है रेल, मेल, जेल, रेडियो, एकड, एक्सरे।

(९) ओउ अ० मे 'ओउ' सयुक्त स्वर है। हिन्दी मे इसे अर्ध सवृत दीर्घ पश्च मूल स्वर ओ कर देते है होटल, कोट, पोस्टकार्ड, नोट

(१०) अइ . इसके स्थान पर हि० मे प्राय 'आइ' हो जाता हे पाइप टाइप, लाइसेंस, टाइम, आइसक्रीम।

(११) अउ . हि० मे इसका प्राय आउ या ऑउ हो जाता है : ऑउट, टाउन, पाउण्ड।

(१२, १३) क, प · अ० मे ये ध्वनियों (ट् भी) ईषत् महाप्राण होती हैं। इनकी महाप्राणता के स्थान के अनुसार कम या अधिक होती है। उदाहरणार्थ शब्दारम्भ मे तथा बलाघातयुक्त (stressed) स्वर के पूर्व (come, payment, taken) महाप्राणता अधिक होती है, तथा अन्य स्थितियो मे जैसे बलाघातयुक्त के बाद (baker letter, upper) कम या स के बाद (spider, skin, stand) प्राय नही। इसी प्रकार दीर्घ स्वर के पूर्व होने पर ह्रस्व स्वर की तुलना मे महाप्राणता अधिक होती है। हि० मे आने पर क्, प् ट्, तीनो ही मे महाप्राणता नही रहती। कमेटी, कफ़, ककरीट, एकड, ट्रक, टैंक, टाइम, टिकट, कमेटी, एजेण्ट, चुरुट, पम्प, पैण्ट, पॉकिट, अपील, टाइप, पाइप।

(१४, १५) च, ज अ० मे ये तालव्य-वर्त्स्य स्पर्श-सघर्षी है, किन्तु हिन्दी में

प्राय: तालव्य है। इसके अतिरिक्त अ० उच्चारण मे इनमें सघर्ष तथा उच्चारण मे दृढता ये दोनों अधिक होते है। हि० मे स्पर्शत्व की मात्रा अधिक है· चाकलेट, चुरुट, चेक, पचर, मैच, टार्च, जेल, जज, इंजिन, कॉलिज।

(१६, १७) ट्, ड् : अं० की ट् (T), ड् (D) ध्वनियाँ वर्त्स्य है। हिंदी मे ये ध्वनियाँ या तो दंत्य त्, द् (पतलून, केतली, अगस्त, अक्तूबर, सितम्बर, तिजोरी, अस्पताल, दलेल, दर्जन, दिसम्बर, दराज, गारद) हो जाती है या पूर्वतालव्य ट्, ड् (टकी, ट्रक, ट्रक, टिकट, एटलस, एजेण्ट तथा चुरुट आदि)। ट् मे प्राणत्व की दृष्टि से भी अन्तर आ जाता है। दे० ऊपर।

(१८, १९) थ् द् : अंग्रेजी मे थ (th) द (th) दत्य सघर्षी है। हिंदी में ये द्त्य स्पर्श हो जाते हैं। थीसिस, थर्मस, थर्मामीटर, थियेटर, फादर (पादरी), फैदम (पानी की गहराई नापने की नाप)।

(२०) ल · अ० ल की दो सध्वनिया है (१) स्पष्ट ल (clear l)— यह हिंदी ल जैसा है। स्वर तथा य के पूर्व आने वाला ल यहीं है . लैम्प, लाइन, कालर, लाइसेस। (२) अस्पष्ट ल (dark l)— यह व्यजन के पूर्व तथा शब्दान्त मे आता है। इसके उच्चारण मे जीभ का मध्य भाग कुछ नतोदर हो जाता है, तथा पश्च भाग कोमलतालु की ओर कुछ ऊपर उठ जाता है। हिंदी मे इसके स्थान पर भी स्पष्ट ल का प्रयोग होता है जेल, पार्सल, गोल, पिट्रोल, फ़िल्डिग।

(२१) व अग्रेजी मे w (अर्धस्वर) तथा v (दन्तोष्ठ्य सघर्षी) दो ध्वनियाँ है। दोनो ही के उच्चारण मे हि० मे दृढता कम होती है। दन्तोष्ठ्य सघर्षी मे सघर्षण भी अपेक्षाकृत हल्का होता है। अनेक हिंदीभाषी दोनो के स्थान पर किसी एक—प्राय अर्धस्वर—का प्रयोग करते है। इस प्रकार v मे ही विशेष परिवर्तन होता है. वाट, वैगन, वेल्डर, वायलिन, वैसलिन ड्राइवर, ओवरकोट।

(२२) श : हि० तथा अ० श् मे थोडा ही अन्तर है। हि० का श तालव्य

है, किन्तु अं० का श वर्त्स-तालव्य : शेयर, बुशशर्ट, मशीन, पालिश, वार्निश, डैश।

(२३) झ़ : अ० में यह ध्वनि श् का घोष रूप है। यह ध्वनि प्रायः केवल फ्रांसीसी शब्दो में मिलती है। हि० मे इसके स्थान पर ज (Rouge-रूज=मुह पर गाने का लाल पाउडर, Garege गैरिज, गैराज) या ज़् (रूज़) का प्रयोग होता है।

(२४) र् : अं० र् मोटे रूप से संघर्षी है। हि० में आकर प्रकम्पी हो जाता है। इसके अतिरिक्त अं० में र् का उच्चारण केवल स्वर के पूर्व होता है। व्यंजन के पूर्व तथा शब्दान्त में नही। किन्तु सामान्यतः हिंदी मे सभी स्थितियो में इसका उच्चारण होता है। राशन, रिक्शा, रंगरूट, आपरेशन आदि में तो अं० एवं हि० दोनो में र उच्चरित होता है किन्तु बुशर्ट, अर्दली (orderly), ओवरकोट, ओवरसियर, टाइपराइटर, अक्तूबर, पार्क, रिपोर्ट, कार, डाक्टर, कालर जैसे शब्दो मे अं० में र् उच्चरित नही होता, किंतु हि० में होता है।

**विशेष परिवर्तन :**

उपर्युक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त **घोषीकरण** (cork—काग, recruit—रंगरूट); **आगम** (इस्टेशन—station), इस्कूल (school), बुरुश (brush), टेबल, टेबुल, टेबिल (table), जेहल (Jail), गिलास (glass), दर्जन, टमाटर; **लोप** सितम्वर (september), पंचर (puncture), पतलून (pantaloon), तिजोरी (Treasury) (Deputy) डिप्टी; **विपर्यय** (जर्नल—general), सिगल (singal) (coaltar—तारकोल), तथा **समीकरण** (कलट्टर—collector), सिकत्तर, (secretary—इन्सपट्टर) आदि की भी प्रवृत्ति है।

**बलाघात :**

बोलते समय वाक्य के किसी अंश या शब्द पर अथवा शब्द के किसी अक्षर या स्वर पर बल देते है। यह बल ही बलाघात कहलाता है। यों तो बलाघात कई प्रकार का हो सकता है : (१) **ध्वनि-बलाघात**—यह एकाधिक ध्वनि के किसी अक्षर (syllable) में शीर्ष ध्वनि या प्रायः स्वर

पर होता है। जैसे 'राम' मे 'आ' पर। (२) **अक्षर-बलाघात**—यह एकाधिक अक्षर के किसी शब्द के एक अक्षर पर होता है। जैसे घोड़ा मे 'घो' पर। (३) **शब्द-बलाघात**—एकाधिक शब्द के एक शब्द पर। जैसे, 'मुझे एक खिड़की वाला मकान चाहिए' मे 'एक' या 'खिड़की' पर। यहाँ दोनो स्थितियो मे अर्थ एक नही रहेगा। 'एक' पर बल होने का अर्थ होगा 'एक ही खिडकी वाला', किन्तु 'खिडकी' पर बल होने का अर्थ होगा 'खिड़की वाला'। (४) **वाक्यांश बलाघात**—तुम रहे **गधे के गधे**। भाषाविज्ञान मे प्राय· अक्षर बलाघात ही महत्वपूर्ण माना जाता है, इसलिए **बलाघात का अर्थ प्रायः अक्षर-बलाघात ही लिया जाता** है।

मूल भारोपीय भाषा में इस प्रकार का बलवाला बलाघात न होकर मुख्यत उतार-चढाव वाला या सगीतात्मक स्वराघात था। सगीतात्मक स्वराघात **उदात्त** तथा **स्वरित** दो प्रकार का था। वैदिक काल के पूर्व भारत-ईरानी काल मे **अनुदात्त** भी विकसित हो चुका था। वैदिक काल के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित लौकिक सस्कृत के जन्म के पूर्व ही समाप्त हो गए तथा बलाघात अस्तित्व मे आ गया, यद्यपि वह काफी हलका था। पालि मे थोडा बहुत सगीतात्मक स्वराघात था, जो वैदिक का अवशेष था; साथ ही बलाघात भी था जो सस्कृत की तुलना मे अधिक विकसित हो चुका था। प्राकृत काल मे महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा मागधी मे कदाचित् सगीतात्मक स्वराघात कुछ-न-कुछ शेष था, किंतु अन्यो मे केवल बलात्मक स्वराघात या बलाघात था। अपभ्रंश तक आते-आते सगीतात्मक स्वराघात केवल मागधी मे शेष रहा, शेष मे बलाघात। आधुनिक भाषाओ मे उसी परम्परा मे मुख्यत· बलाघात है। केवल मागधी से विकसित भोजपुरी, बँगला आदि मे सगीतात्मकता है। यो प्रश्न, आश्चर्य, निराशा आदि भावो को व्यक्त करने की दृष्टि से बोलने मे उतार-चढाव की सगीतात्मकता प्रायः सभी भाषाओ मे होती है और यहाँ भी है। पालि-प्राकृत अपभ्र श विषयक बातें मै अपनी ओर से कह रहा हू। विद्वानो में इसे लेकर मतभेद है। ग्रियर्सन केवल बलात्मक मानते हैं, टर्नर दोनो मानते है, तथा जूल ब्लाक को किसी के भी होने मे सदेह है।

मानक हिन्दी में संगीतात्मक स्वराघात न होकर बलात्मक स्वराघात या बलात्मक है। हिन्दी का बलाघात अक्षर-विभाजन और अक्षर की ह्रस्वता-दीर्घता से सबद्ध है। हिन्दी अक्षर ह्रस्वता-दीर्घता की दृष्टि से चार प्रकार के होते हैं·

(क) ह्रस्व :

यह केवल ह्रस्व स्वर का होता है उसके पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते है, नहीं भी। उदाहरण के लिए 'इसी' में 'इ' (केवल ह्रस्व स्वर), 'किसी' मे 'कि' (व्यजन + ह्रस्व स्वर), 'कृपा' में 'क्रि' (व्यजन + व्यंजन + ह्रस्व स्वर) ह्रस्व अक्षर है।

(ख) मध्यम

इसमे दो प्रकार के अक्षर आते है.

(१) जिसमे ह्रस्व स्वर हो तथा उसके बाद एक व्यजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यजन आ भी सकते है नही भी। उदाहरण के लिए 'उसका' मे 'उस' (ह्रस्व स्वर + व्यजन), 'किसका' में 'किस' (व्यजन + ह्रस्व स्वर + व्यजन), 'सर्वप्रियता' मे 'प्रिय' (व्यजन + व्यजन + ह्रस्व स्वर + व्यजन)।

(२) केवल दीर्घ स्वर हो। उसके पूर्व एक या अधिक व्यजन आ भी सकते है, नही भी। जैसे ऐतिहासिक मे 'ऐ' (केवल दीर्घ स्वर), 'कहा' मे 'हा' (व्यजन + दीर्घ स्वर) तथा 'व्यापारी' में 'व्या' (व्यजन + व्यजन + दीर्घ स्वर) आदि।

(ग) दीर्घ

इसमे भी दो प्रकार के अक्षर आते है

(१) जिनमे ह्रस्व स्वर हो तथा उसके बाद सयुक्त या दीर्घ (द्वित्व) व्यजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यजन आ भी सकते है, नही भी। उदाहरण के लिए 'अर्थयुक्त' मे 'अर्थ' (ह्रस्व स्वर + व्यजन + व्यजन) तथा 'युक्त' (व्यजन + ह्रस्व स्वर + व्यजन + व्यंजन) या 'अव्यक्त' मे 'व्यक्त' (व्यजन + व्यजन + ह्रस्व स्वर + व्यजन + व्यजन) आदि।

(२) जिनमें दीर्घ स्वर हो तथा उसके बाद मूल व्यंजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते है, नही भी। जैसे 'आबपाशी' मे 'आब' (दीर्घस्वर+व्यजन) या 'राजधानी' मे 'राज (व्यजन+दीर्घ स्वर+व्यजन) या 'त्यागपूर्ण' मे 'त्याग' (व्यजन+व्यंजन+दीर्घ स्वर +व्यंजन) आदि।

(घ) अतिदीर्घ.

इसमे दीर्घ स्वर तथा उसके बाद सयुक्त या दीर्घ (द्वित्व) व्यजन आते है। स्वर के पूर्व व्यजन आ भी सकता है, नही भी। उदाहरण के लिए 'आप्त' (दीर्घस्वर+व्यजन+व्यजन), 'अपरिहार्य' में 'हार्य (व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यजन+व्यजन), व्याप्त (व्यजन+व्यजन+दीर्घस्वर+व्यजन+व्यजन) या 'सुस्वास्थ्य' मे 'स्वास्थ्य' (व्यजन+व्यजन+दीर्घ स्वर+व्यजन+व्यजन+व्यजन) आदि। -

एकाक्षरी शब्द तो बलाघात उसी अक्षर पर होता है, अतः समस्या केवल एकाधिकाक्षरी शब्दो की है। उनके लिए निम्नाकित नियम दिये जा सकते है :

(१) यदि किसी शब्द के सभी अक्षर ह्रस्व, मध्यम, दीर्घ या अतिदीर्घ हो तो बलाघात (काले टाइप मे) उपात्य अर्थात् अन्तिम से पहले वाले अक्षर पर होता है हैं क-टु, स-मि ति, आ-शा-री, सा-ला-ना कम्-बल, अर्थ-युक्त रोज-गार।

(२) यदि एक ही अक्षर मध्यम हो, और शेप ह्रस्व हो तो बलाघात मध्यम पर (कि-सी अ-मिट प-रि-चित); यदि एक ही अक्षर दीर्घ हो और शेप लघु या मध्यम हो तो बलाघात दीर्घ पर (क-पूत, अ-पार, अ-भिन्न स्व-तत्र, आ-नन्द, सा-कार), और यदि एक ही अक्षर अति दीर्घ हो तथा शेप ह्रस्व, माध्यम या दीर्घ हो तो बलाघात अतिदीर्घ (अ-प-रि-हार्य, अव्-व्याप्त, पच-पात्र) होता है।

(३) यदि शब्द के एकाधिक अक्षर अति दीर्घ हो और उनमे कोई एक उपात्य हो तो बलाघात उसी पर होगा। यदि उनमे उपात्य कोई न हो तो बलाघात उसके पूर्व निकटतम अतिदीर्घ पर होता है। यदि अतिदीर्घ कोई न हो और एकाधिक दीर्घ हो तो उपात्य दीर्घ पर या यदि उपात्य

दीर्घ न हो तो पूर्व निकटतम दीर्घ पर बलाघात होता है। इसी प्रकार यदि अति दीर्घ तथा दीर्घ न हो तथा एकाधिक मध्यम हों तो उपांत्य मध्यम पर या यदि उपांत्य मध्यम न हो तो उसके निकटतम पूर्व मध्यम पर बलाघात होता है। उदाहरणार्थ : संस्-कार, रोज-गार, रे-डि-यो, का-री-ग-री, स-फ़ा-या, पा-वस, सौन्-दर्य, सन्-श-या लु, आ-सक्-ति, अ-ना-वृष-टि, कम-ला, ऊल्-लू, आ-कस्-मिक, वा-टि-का।

# उपसर्ग तथा प्रत्यय

## उपसर्ग

'उपसर्ग' उस वर्ण या वर्ण-समूह को कहते है, जिसका स्वतन्त्र प्रयोग न होता हो, और जो किसी शब्द के पूर्व, कुछ आर्थिक विशेषता लाने के लिए जोड़ा जाय। हिन्दी भाषा-शास्त्रियों (कामताप्रसाद गुरु, धीरेन्द्र वर्मा, उदयनारायण तिवारी आदि) ने 'कम' 'खुश' 'हर' 'ग़ैर' 'भर' आदि अनेक ऐसे शब्दों को भी उपसर्ग मान लिया है, जो स्वतन्त्र शब्द हैं (वह खुश है; कटोरा भर; उसके पास ज्यादा है मेरे पास कम; वह तो ग़ैर है; इत्यादि)। वस्तुतः इनके योग से बनने वाले शब्द सामासिक पद (खुशबू, कमजोर, गैरहाजिर) है। यदि इनको उपसर्ग मान लिया जाय तो सामासिक पद एवं उपसर्ग से बने शब्दों के बीच सीमा-रेखा खीचना असम्भव होगा। ऐसी स्थिति मे केवल उन शब्दों को ही उपसर्ग मानना होगा जो स्वतन्त्रतः प्रयोग में न आते हो, जैसे अ, आ, सु, कु आदि।

भारोपीय परिवार में उपसर्गो का इतिहास काफी प्राचीन काल तक जाता है। पहले ये स्वतन्त्र शब्द थे तथा इनका अपना अर्थ था। बाद में इन की यह स्वतन्त्रता पूर्णतः समाप्त हो गई, और ये केवल मूल शब्द से सम्बद्ध होकर ही आने लगे। संस्कृत में प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर् आदि २२ उपसर्ग माने जाते है।

पालि-प्राकृत-अपभ्रंश में प (स० प्र), ओ (सं० अप), अव (सं० अप), सं (सं० सम्), अणु (स० अनु), ओ (सं० अव), नि (सं० निर्), नी (सं० निर्), दु (सं० दूर्) आदि लगभग तीस से ऊपर उपसर्ग है। हिन्दी में उनकी सं और भी बड़ी है। वे कई स्रोतों से तथा कई प्रकार

के शब्दो से विकसित हुए है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी उपसर्ग तीन प्रकार के है :—तत्सम, तद्भव, विदेशी।

(क) तत्सम उपसर्ग

(१) अ (=नही, अभाव, हीनता, शून्यता). अभाव, अप्रतिष्ठा, अछूत, अकूक, अटल आदि।

(२) अनु (= पीछे, समान) . अनुरूप, अनुशासन, अनुवाद।

(३) अन् (=अभाव, हीनता, शून्यता) · अनायास, अनन्त, अनंत, अनदेखा, अनछुआ, अनपढ। सस्कृत मे यह केवल स्वर से प्रारम्भ होनेवाले शब्दों मे लगता था, किंतु हिन्दी मे ऐसी बात नही है।

(४) अप (=बुरा) . अपमान, अपहरण, अपशब्द।

(५) अभि (=ओर, अतिरिक्त) अभिमान, अभियोग, अभिमत अभिनव।

(६) अव (=बुरा, हीन, नीचे, दूर) · अवगुण, अवनत।

(७) आ (=तक, समेत, ओर, कम) : आगमन, आजन्म, आकर्षक आजानु।

(८) उत् (=ऊपर, ऊँचा) · उत्फुल्ल, उत्पीडन।

(९) उप (=सहायक, गौण, छोटा, निकट) : उपबोली, उपभाषा, उपराष्ट्रपति, उपमत्री, उपकुलपति।

(१०) कु (=बुरा . कुरूप, कुयोग, कुख्यात, कुपथ, कुदृष्टि, कुदिन।

(११) दुर् (=बुरा, कठिन, दुराचार, दुर्बल, दुर्गुण, दुर्जन, दुर्दिन, दुर्घटना।

(१२) नि (=नीचे, समूह, आदेश, समीप, कुशलता, आदि : निकुज,) निगूढ, निदर्शन, निबध, नियुक्त, नियुक्ति।

(१३) निर् (=नही, रहित, दूर, बाहर) निर्बल, निरपराध, निर्मल निर्भय, निर्दोष।

(१४) वि (=अभाव. दूसरा, अधिक, विशेष) . विज्ञान, ' स्मरण; विवाद, विदेश।

(१५) स (=सहित) : सफल, सजीव, सरस, सनाथ, सकुशल, सानंद।

(१६) सु (=अच्छा, सरल, ज्यादा) : सुशिक्षित, सुडौल, सुगंध, सुयोग्य, सुगम, सुप्रसिद्ध।

(ख) तद्‌भव उपसर्ग

ये मूलतः सं० (उपसर्ग, गति, अव्यय) से विकसित हुए हैं :

(१) उ—सं० उद्>प्रा० उ>हि० उ मूल अर्थ ऊपर, ऊंचा आदि . उनींदा, उथला, उभरना, उतरना।

(२) उन—सं० एकोन>पालि एकून>प्रा० ऊन (सं० में भी ऊन है)>हि० उन। अर्थ है 'एक नहीं' या 'एक कम'। यह केवल सख्यावाचक शब्दो मे ही आता है : उन्नीस, उन्तीस, उन्तालीस, उनचास, उनसठ, उनहत्तर, उन्यासी।

(३) औ—सं० अव, प्रा० अव। ओ>हि० औ। अर्थ है 'हीन', 'नीचे' 'दूर' आदि . औगुन, औघट, औढर, औघड़।

(४) क—सं० कु>प्रा० कु>हि०>क। यह केवल 'कपूत' में आता है।

(५) नि—सं० निर्>प्रा० नी>नि>हि० नि। अर्थ है रहित : निहत्था, निडर, निकम्मा।

(६) पर—सं० प्र>हि० पर, पड। अर्थ है 'दूसरी पीढी का' परपोता, परदादा, परनाना।

(७) स—सं० सु>हि० स (अच्छा)। सपूत।

(ग) विदेशी उपसर्ग : फ़ारसी

(१) अल (अर०)=निश्चय। अलमस्त।

(२) दर—मूलत. यह फा० का 'दरवाजा' का समानार्थी शब्द 'दर' (सं० द्वार) है। अर्थ है 'मे'। दरअसल, दरहकीकत।

(३) ब—(फा०)='के साथ' 'से' बखूबी बदौलत, बदस्तूर, बतौर, बक़ौल, बनाम।

(४) बा—(फ़ा०)='साथ' या 'से' : बाकायदा, बाजाब्ता, बावजूद।

(५) बे—(फा०)='बिना' (तुलनीय सं० वि), 'रहित' : बेरहम, बेईमान, बेचारा. बेइज्जती, बेतुका, बेडौल, बेधडक।

(६) ला – (अर०) = 'अभाव', 'नही'। लापरवाह, लाइलाज, लाजवाब, लावारिस, लाचार, लासानी।

(७) हम—(फा०) = 'आपस मे' 'साथ' 'बराबर' : हमदर्द, हमउम्र, हमदम, हमबिस्तर, हमसफर।

**अंग्रेजी उपसर्ग**

(१) वाइस = 'उप'। वाइसचासलर, वाइसचेयरमैन, वाइसप्रेसिडेंट, वाइसऐडमिरल, वाइसप्रिंसिपल।

(२) सब = 'उप', 'नायब' 'छोटा'। सबडिप्टी इन्स्पेक्टर, सबकमिटी, सबइन्स्पेक्टर, सबरजिस्ट्रार, सबस्टेशन।

**प्रत्यय**

**प्रत्यय ध्वनि अथवा ध्वनि-समूह की वह भाषिक इकाई है जिसे किसी शब्द अथवा धातु के अंत में जोड़कर शब्द अथवा रूप की रचना की जाती है।** मूल भारोपीय भाषा तक हिंदी प्रत्ययों की परंपरा जाती है। यों समय-समय पर कुछ पुराने प्रत्यय लुप्त होते रहे है तथा नए प्रत्यय विकसित होते रहे हैं। सस्कृत में दो प्रकार के प्रत्यय थे : **कृत्**—जो धातु के साथ जोडे जाते थे। **तद्धित**—जो सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रियाविशेषण मे जोडे जाते थे। प्रत्यय प्रयोग की परपरा सस्कृत, पालि प्राकृत, अपभ्रंश होते हिंदी मे आई है। हिंदी मे कृत् और तद्धित भेद करना अनावश्यक है क्योकि कई प्रत्यय (जैसे आऊ—खाऊ, कमाऊ, पडिताऊ) दोनो रूपों मे आते हैं।

हिंदी प्रत्ययो को **अर्थ** (**भावार्थक**—ता : सुदरता; **अपत्यार्थक** आयन-वात्स्यायन, **कर्तृवाचक**—वाला · जानेवाला, आदि) (ख) **प्रयोग जैसे सज्ञा** (आई, आरी, आस, एरा, पा, पन), **संबधी** (एरा—ममेरा, चचेरा), **लिग** (आ इन, नी, इया), बहुवचन (ए, एँ, आँ, ओं), **विशेषण** (आऊ, आलू, ईय, ई), **क्रियाविशेषण** (श, त.); तथा (ग) **इतिहास** (तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज) इन तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इतिहास के ग्रथ मे ऐतिहासिक दृष्टि से उन्हें लेना उचित होगा।

(क) तत्सम प्रत्यय :

ये संस्कृत के समान है। यों गहराई से ध्वनियों का विचार करें तो इनमे भी तद्भवता मिलेगी (दे० मेरी पुस्तक 'हिंदी भाषा' मे 'प्रत्यय'), किंतु परंपरागत रूप से इन्हे तत्सम माना जा रहा है, अतः यहाँ भी इन्हे यही कहा जा रहा है। कुछ मुख्य तत्सम प्रत्यय है—

(१) आ—स्त्री प्रत्यय। आदरणीया, सुता, प्रिया,
(२) आनी—स्त्री प्रत्यय। भवानी, मेहतरानी, देवरानी।
(३) आलु—विशेषण प्रत्यय। दयालु, कृपालु, श्रद्धालु, निद्रालु।
(४) इत—विशेषण प्रत्यय। पल्लवित, पुष्पित, हर्षित।
(५) इमा—संज्ञा प्रत्यय। महिमा, गरिमा, नीलिमा।
(६) इक—विशेषण तथा संज्ञा प्रत्यय। वैज्ञानिक दैनिक, वैदिक, लौकिक।
(७) क—स्वार्थे, समूह। शतक, घटक, सप्तक, बैठक, ठढक।
(८) कार—पत्रकार, जानकार।
(९) ज—जन्मा हुआ। जलज, पंकज, स्वदेज, अडज।
(१०) जीवी—जीनेवाला। परजीवी, बुद्धिजीवी, लघुजीवी
(११) ज्ञ—जाननेवाला। विज्ञ, सर्वज्ञ, अज्ञ, मर्मज्ञ।
(१२) त:—क्रियाविशेषण प्रत्यय। सामान्यत., वस्तुत', स्वत: अशत:।
(१३) तया—क्रिया विशेषण प्रत्यय। सामान्यतया, मुख्यतया, विशेषतया।
(१४) तर—तुलनाबोधक प्रत्यय। सुन्दरतर, निम्नतर, उच्चतर।
(१५) तम—सर्वाधिकताबोधक प्रत्यय। उच्चतम, निकृष्टतम।
(१६) ता—संज्ञा प्रत्यय। सुदरता, नवीनता, मधुरता।
(१७) त्व—संज्ञा प्रत्यय। ममत्व, महत्त्व, कृतित्व, सतीत्व।
(१८) वान्—वाला। गुणवान्, धनवान्, रूपवान्।

(ख) तद्भव प्रत्यय :

तद्भव प्रत्यय हिंदी में काफ़ी है। यहाँ कुछ मुख्य दिए जा रहे है—

(१) अंगड़ (स० अंग+प्रा० अट)—बतंगड़।
(२) अंतू (सं० अंत+ऊ)—रटंतू, घुमंतू। यह संयुक्त प्रत्यय है।
(३) अत (स त्व>प्रा० त्त) लिखत्-पढ़त, बचत, खपत, रंगत।
(४) आंध (सं० आगंध>आइंध)—सड़ाँध, बिसाँध।

(५) आ (सं अक)— पु प्रत्यय। घोड़ा, लड़का, अच्छा, तड़ा।

(६) आई (सं० आपिका) कठिनाई, सफाई, बुराई।

(७) आऊ (स० तृ+स्वार्थे क)—टिकाऊ, खाऊ, बिकाऊ, पडिताऊ।

(८) आप, आपा (स० त्व+स्वार्थे क)—रँडापा, पुजापा, बुढापा, अपनापा, मिलाप।

(९) आर, आरी, आरा (सं० कार, कारक, कारी) कुम्हार, लुहार, पुजारी, भिखारी, चमार, घसियारा।

(१०) आलू (सं० आलु)—दयालू, झगडालू।

(११) आवट (स० आप+वृत्ति)—बनावट, रुकावट, बिनावट, कसावट, लिखावट।

(१२) आस (सं० आशा)—छपास, लिखास, प्यास।

(१३) आहत, आहट (स० तव्य+क+त्व, प्रा० अव्वट्टं) भलमनसाहत, गड़गडाहट, चिल्लाहट, घबराहट।

(१४) इन (स० आनी>णी>इण>इन)—स्त्री प्रत्यय। ठकुराइन, जुलाहिन, तेलिन, पुजारिन।

(१५) इया (स० ईय+स्वार्थे क)—पर्वतिया, भोजपुरिया, कनौजिया; (स० इका)—चुहिया, डिबिया, चुटिया (स्त्रीलिग तथा अल्पार्थक)।

(१६) ई (स० इका तथा ईय)—स्त्री प्रत्यय, सज्ञाप्रत्यय तथा विशेषण प्रत्यय। 'ई' प्रत्यय सं०, फा०, अर० मे भी है। हिदी में चारो का मिश्रण हो गया है। कौडी, तेली, कटारी, बीसी, टोकरी।

(१७) ईला (सं० इल)—भड़कीला, चमकीला, शर्मीला, हठीला, पथरीला। 'ईल+आ' सयुक्त प्रत्यय है।

(१८) एरा (स० कृत+क>केरक)—लुटेरा, फुफेरा, ममेरा, चचेरा, कँसेरा; (स० तर+क)—बहुतेरा।

(१९) औड़ा (स० पूर+क)—मुँगौड़ा, पकौडा, रेवडी, सेवड़ा।

(२०) जा (स० जात, जातक)—भतीजा, भाजा,

(२१) ड़, र (सं० वर्त>वट्ट>ड, र)—लोथड़ा, चमडा, चमड़ी, लँगड़ा,

बछड़ा, दमडी।

(२२) त् (स० क्त)—सोता, खाता, आता, जाता।

(२३) पन (सं० त्वन>प्पण)— बचपन, छुटपन, बड़प्पन, पागलपन।

(२४) ल (सं० इल)—पिछला, अगला, निचला, धुँधला।

(२५) वाला (सं० पालक)— तांगेवाला, अपनेवाला, लालवाला, ऊपर वाला, जानेवाला, खानेवाला।

(ग) देशज प्रत्यय

देशज प्रत्यय अज्ञात व्युत्पत्तिक होते है। मुख्य देशज प्रत्यय ये है :—

(१) अक्कड़— पियक्कड़, मुलक्कड़, घुमक्कड।

(२) अड़—अंघड, भुक्खड।

(३) आक— धडाक, चटाक, फटाक; धमाका, पडाका, धडाका,

(४) आटा— फर्राटा, खर्राटा।

(५) इयल— अडियल, सडियल, दढियल।

(घ) विदेशी प्रत्यय फ़ारसी (अरबी)

(१) अन— मसलन, गालिबन।

(२) आना—जुर्माना, दस्ताना, मर्दाना, मस्ताना।

(३) आनी— जिस्मानी, रूहानी, बर्फानी।

(४) इयत—इसानियत, आदमियत, अंग्रेजियत, खैरियत, असलियत।

(५) कार—सलाहकार, दस्तकार, काश्तकार।

(६) खोर—गमखोर, रिश्वतखोर, घूसखोर।

(७) गर—बाज़ीगर, कारीगर, कीमियागर। इसीसे गरी या गिरी भी बनता है : बाबूगिरी, कुलीगिरी।

(८) गार—मददगार, परहेजगार, रोजगार, यादगार।

(९) गाह—बन्दरगाह, ईदगाह, चरागाह।

(१०) गी— जिन्दगी, गन्दगी।

(११) चा, ची—बगीचा, देगचा, सदूकची, इलायची, डोलची, बदूकची, अफीमची, मशालची, तबलची। छोटे अर्थ मे ये फा० प्रत्यय है तथा वाला अर्थ मे 'ची' तुर्की प्रत्यय है।

(१२) ज़ाद, ज़ादा, ज़ादी—शाहज़ादा, शाहज़ादी, आदमज़ाद, हराम-
ज़ादा।

(१३) दाँ—कानूनदाँ, कद्रदाँ।

(१४) दान, दानी—कलमदान, चायदानी, इत्रदान, गोंददानी।

(१५) दार—ईमानदार, दूकानदार, कर्ज़दार, मालदार।

(१६) बाज़—मुकदमेबाज़, धोखेबाज़, चालबाज़। इसी से 'बाज़ी' भी
बनता है।

(१७) बान—बागबान, दरबान।

अँग्रेजी प्रत्यय :

(१) इज़्म—कम्यूनिज़्म, बुद्धिज़्म, सोशलिज़्म, शैविज़्म।

(२) इस्ट—सोशलिस्ट, मार्क्सिस्ट, बुद्धिस्ट।

# संज्ञा

संस्कृत मे अत्य ध्वनि की दृष्टि से संज्ञाएँ दो प्रकार की है : **स्वरांत** —जैसे, वालक (अकारांत), विश्वपा (अकारात), कवि (इकारांत), सुधी (ईकारांत), भानु (उकारांत) आदि; **व्यजनांत**—जैसे जगत्, वीरुध्, अप् आदि। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा मे व्यजनांत सज्ञाएँ प्राय: समाप्त होती गई और मुख्यत: केवल स्वरांत शेष रह गई। जैसे फल, लता, भिक्षुक, हत्थी (स्त्री), मुनि आदि।

हिन्दी संज्ञाओ के विषय मे निम्नांकित वातें ध्यान देने की है :—
(१) हिन्दी मे स्वरांत और व्यंजनांत दोनो प्रकार की संज्ञाएँ है। जैसे घोड़ा, कवि, साथी अथवा आम, रोग, ईख आदि। (२) स्वरांत संज्ञाओं मे केवल **आ** (घोड़ा, लता), इ (कपि, शक्ति), ई (हाथी, गाड़ी), उ (पशु, धातु), ऊ (डाकू, बहू) से अंत होने वाली सज्ञाएँ ही प्रमुख है। (३) अकारात सज्ञाएँ हिन्दी मे नहीं है। जो लेखन मे अकारात है उनका उच्चारण व्यजनात ही होता है। अर्थात् आम, रोग, मेज, वाल, ईख, पुस्तक आदि शब्द केवल लेखन मे अकारात है। उच्चारण की दृष्टि से ये व्यंजनात है—आम्, रोग्, मेज्, वाल्, ईख्, पुस्तक् आदि। (४) एकारात (चौबे, दुबे), ओकारात (रेडियो, फोटो), औकारांत (जौ, गौ) सज्ञा शब्द वहुत हीं कम है। और उनमे से दो चार को छोड़कर अधिकांश बिना किसी परिवर्तन के प्रयुक्त होते है।

**लिंग**—सस्कृत, पालि, प्राकृत, और अपभ्रंश (एक सीमा तक) में तीन लिंग थे, पुलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग। हिन्दी मे केवल दो लिंग है : पुलिंग, स्त्रीलिंग। पुंलिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए मुख्यत: निम्नाकित स्त्री प्रत्ययों का हिन्दी संज्ञा शब्दो मे प्रयोग होता है : (१)

आ (सं०) सुता, कान्ता; (२) ई (स० तथा सं० इका से विकसित)— कुमारी, कटोरी, नर्तकी; घोड़ी, लडकी; (३) इनी (स०)— सन्यासिनी, सर्पिणी, हथिनी, (४) इन (स० इनी)— दुलहिन, बाघिन, कहारिन, (५) नी (स०इनी) ऊँटनी, जाटनी, मोरनी; (६) ती (सं० ति) युवती, (७) आनी (स०) भवानी, मेहतरानी, नौकरानी, सेठानी। (८) आइन (स० आनी)—ठकुराइन, जुलाहिन, (९) इया (स० इका) खटिया, लठिया। इसके अतिरिक्त 'नर' 'मादा' को जोड़कर भी भेड़िया, चील, कौवा, चीता आदि काफी शब्दो के लिंगीय रूप बनाते है।

वचन—सस्कृत मे तीन (एक०, द्वि०, बहु०) वचन थे। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश दो वचन (एक०, बहु०) रह गए। हिन्दी मे ये ही दो है। हिन्दी मे कुछ सज्ञा शब्द (प्राण, दर्शन, लोग आदि) तो बहुवचन मे ही प्रयुक्त होते है। शेप के बहुवचन बनाने के लिए निम्नांकित प्रत्ययों का प्रयोग होता है · (१) शून्य (हाथी, साधु), (२) ए (घोडे, लडके), (३), आँ (लडकियाँ, गुड़ियाँ), (४) एँ (किताबें, बहुएँ), (५) ओं (लड़कों, साथियो), (६) ओ (भाइयो !, बहनो !), इन प्रत्ययोंके अतिरिक्त गण (मत्रिगण) जन (कविजन), लोग (राजा लोग) आदि अतिरिक्त शब्दों का भी बहुवचन बनाने के लिए प्रयोग होता है। कुछ लोग अरबी-फ़ारसी मे प्रयुक्त आन (साहेबान), आत (कागजात), आम (हुक्काम) आदि का प्रयोग करते है। हिन्दी के बहुवचन के ए, ओं आदि अपने प्रत्यय कहाँ प्रयुक्त होते हैं, इस पर आगे कारकीय रूप के प्रसग में विचार किया जा रहा है।

कारकीय रूप—संस्कृत से चलकर हिन्दी तक आते-आते कारकीय रूपों की सख्या घटती गई है। उदाहरण के लिए सस्कृत मे सैद्धांतिक दृष्टि से एक सज्ञा शब्द के २४ रूप (८ कारक × ३ वचन) है। यो प्रयोगत यह सख्या कुछ कम ठहरती है, क्यो कि उनमें कई रूप समान हैं, जैसे अकारात पुल्लिग सज्ञा शब्द के कुल १७ ही रूप बनते है। वैदिक सस्कृत में रूपो की सख्या सस्कृत से भी अधिक है। पालि में द्विवचन प्राय लुप्त हो गया अत सिद्धातत एक संज्ञा के कुल रूप १६ (२

वचन × ८ कारक) हो गए। प्रयोगतः यह संख्या और भी कम है, जैसे अकारांत पुंल्लिंग के केवल १५ रूप है। यो इनमे कई रूपो के पुराने और नव-विकसित दोनो रूप मिलते है। जैसे करण बहु० मे बुद्धेभि, बुद्धेहि। यदि ऐसे रूपो को निकाल दें तो यह संख्या १२ हो जाती है। प्राकृत-अपभ्रंश मे यह सख्या और भी कम (१०-११) होती गई। हिन्दी मे यह सख्या और भी कम हो जाती है। प्राचीन भाषाओ (संस्कृत, पालि प्राकृत, अपभ्रंश) तथा हिन्दीमे कारकीय रूपरचना की दृष्टि से एक उल्लेख्य अन्तर है। इन भाषाओ मे 'प्रातिपदिक' अथवा 'मूल शब्द' में विभक्ति जोड़कर प्रायः कारकीय रूप बनते थे (राम + विसर्ग = राम.), किन्तु हिन्दी मे तीन भाषिक इकाइयो को जोडकर कारकीय रूप बनते है· (क) 'मूल शब्द' या 'प्रातिपदिक' + (ख) कारकीय रूप बनाने के प्रत्यय + (ग) परसर्ग (ने, को, से आदि)। उदाहरणार्थ 'लड़के ने पत्र लिखा' वाक्य में 'लड़के ने' कर्ता कारण का रूप है। इसमे 'लड़का (मूल) + ए + ने' ये तीन भाषिक इकाइयाँ है। सस्कृत तथा पालि मे यह स्थिति प्रायः बिल्कुल नही है। प्राकृत-अपभ्रंश मे है भी तो कम।

हिन्दी मे कारकीय रूप तीन प्रकार के है· (क) **अविकारी रूप**—जिनके साथ कारक-चिह्न (परसर्ग) न लगें। जैसे 'राम गया' मे 'राम', 'मैने फूल देखा' मे 'फूल' आदि। (ख) **विकारी रूप**—जिनके साथ कारक-चिह्न (परसर्ग) अवश्य लगे। जैसे 'लडके ने फूल तोड़ा' मे 'लड़के' या अपने 'मित्र को बुलाओ' मे 'मित्र'। (ग) **सम्बोधन रूप**—जिसका प्रयोग सबोधन मे हो। जैसे 'ओ मोहन' मे 'मोहन' या 'ऐ लड़के' मे 'लड़के' या 'हे भाई' मे 'भाई' आदि। अविकारी रूप को **मूल रूप** तथा विकारी को **विकृत** या **तिर्यक्** रूप भी कहा जाता है।

कारकीय रूप-रचना की दृष्टि से हिन्दी मे कुल चार प्रकार के सज्ञा शब्द है। इनके रूप तथा इसमे लगने वाले प्रत्यय नीचे दिए जा रहे है:

(१) **आकारांत पुंल्लिग** (जैसे घोड़ा)

| | रूप | | प्रत्यय | |
|---|---|---|---|---|
| | एक० | बहु० | एक० | बहु० |
| अविकारी | घोडा | घोडे | शून्य | ए |
| विकारी | घोडे | घोडो | ए | ओ |
| सबोधन | घोड़े | घोडो | ए | ओ |

'दारोगा' जैसे कुछ विदेशी; "पिता' 'राजा' जैसे कुछ सस्कृत तत्सम तथा 'मामा', 'नाना', 'चाचा', 'काका', 'बाबा', 'लाला' जैसे पुनरुक्ति वाले शब्द अपवाद है। इनके रूप घोडा, लडका आदि हिन्दी के सामान्य आकारात पुल्लिग शब्दो की तरह नही बनते।

(२) **अन्य पुल्लिग** (जैसे व्यजनात मित्र, इकारांत कवि, ईकारात साथी, उकारांत साधु तथा ऊकारात डाकू आदि)

| | रूप | | प्रत्यय | |
|---|---|---|---|---|
| | एक० | बहु० | एक० | बहु० |
| अविकारी | मित्र, कवि, साथी गुरु, डाकू | मित्र, कवि, साथी, गुरु, डाकू | शून्य | शून्य |
| विकारी | मित्र, कवि, साथी गुरु, डाकू | मित्रो, कवियो, साथियो गुरुओ डाकुओ | शून्य | शून्य |
| संबोधन | मित्र, कवि साथी गुरु, डाकू | मित्रो, कवियो, साथियो गुरुओ, डाकुओ | शून्य | ओ |

(३) **इकारांत** (जैसे जाति), **ईकारांत** (जैसे लडकी), **इयात** (जैसे गुडिया) **स्त्रीलिंग**।

| | रूप | | प्रत्यय | |
|---|---|---|---|---|
| | एक० | बहु० | एक० | बहु० |
| अविकारी | जाति, लडकी गुडिया | जातियाँ, लडकियाँ, गुड़ियाँ | शून्य | आँ |
| विकारी | जाति, लडकी, गुडिया | जातियो, लडकियो, गुडियो | शून्य | ओ |
| सम्बोधन | जाति, लडकी, गुडिया | जातियो, लडकियो, गुडियो | शून्य | ओ |

(४) **अन्य स्त्रीलिंग** (जैसे व्यजनात पुस्तक, आकारात माता, उकारात ऋतु, ऊकारात वहू तथा औकारात गौ आदि)

| | रूप | | प्रत्यय | |
|---|---|---|---|---|
| | एक० | बहु० | एक० | बहु० |
| अविकारी | पुस्तक, माता, ऋतु, वहू, गौ | पुस्तके, माताएँ, ऋतुएँ, बहूएँ, गौएँ | शून्य | ए |
| विकारी | पुस्तक, माता, ऋतु, वहू, गौ | पुस्तको, माताओ ऋतुओ, बहुओ, गौओ | शून्य | ओ |
| सम्बोधन | पुस्तक, माता, ऋतु, वहू, गौ | पुस्तको, माताओ, ऋतुओ, बहुओ, गौओ | शून्य | ओ |

मूल शब्दो मे प्रत्यय जोड़कर रूप-रचना करने मे निम्नाकित ध्वन्यात्मक परिवर्तन करने पडते है (१) आकारात पुल्लिग सज्ञा मे शून्य के अतिरिक्त कोई भी प्रत्यय जोडा जाय तो अतिम 'आ' का लोप हो जाता है। घोड़ा 'घोडा + ए' = घोड + ए' = घोडे। इसी प्रकार घोडों, घोडो आदि मे भी। (२) ईकारात, ऊकारात सज्ञा शब्द मे शून्य प्रत्यय को छोडकर कोई भी प्रत्यय जोडा जाय तो अत्य 'ई' 'ऊ' क्रमश 'इ, उ' मे परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे 'साथी + ओ' = 'साथि + ओ' (साथियो), 'डाकू + ओ' = 'डाकु + ओ' = डाकुओ। इसी प्रकार लडकियाँ, लड़कियो, वहुएँ, वहुओ, वहुओ आदि मे भी। (३) ह्रस्व इ के बाद आँ, ओ, ओ, प्रत्यय जोडे तो 'य' का आगम हो जाता है। जैसे 'कवि + ओ = 'कवियो,' 'साथी + ओ' = 'साथियो,' 'जाति + आँ' = 'जातियाँ' तथा 'लडकी + ओ' = 'लडकियो' आदि। (४) इयात स्त्रीलिग शब्द मे आँ, ओ, ओ प्रत्यय जोडने पर 'या' का लोप हो जाता है और शब्द इकारात रह जाता है। जैसे 'गुडिया + आँ' = 'गुडियाँ,' 'गुडिया + ओ' = 'गुडियो,' 'गुडिया + ओ' = 'गुडियो'। यहाँ 'य' का आगम तीसरे नियम से हो जाएगा। इन ध्वन्यात्मक परिवर्तनो अथवा सधि-नियमो मे २ और ३ तो प्राय सामान्य रूप से हिंदी के अपने नियम है जो कारकीय रूप-रचना के अतिरिक्त अन्य प्रकार की शब्द-रचना तथा रूप-रचना मे भी मिलते है,

किन्तु १ और ४ की यहाँ विशेष रूप से कल्पना कर ली गई है। इस कल्पना का उद्देश्य है प्रकृति-प्रत्यय का सुव्यवस्थित विश्लेपण तथा प्रात्ययिक एकरूपता का निदर्शन।

ऊपर के सारे प्रत्यय ये है —

| रूप | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| अविकारी | शून्य | शून्य, ए, ओ, एँ |
| विकारी | ए, शून्य | ओं |
| सबोधन | ए, शून्य | ओ |

अर्थात् ये ६ है . शून्य (दोनो वचन), ए (दोनो वचन), आँ, एँ, ओं, ओ। आगे इनकी व्युत्पत्ति तथा इनके विकास पर विचार किया जा रहा है।

**शून्य**--दोनो वचनो के शून्य का विकास सस्कृत की विभक्तियों के लोप से हुआ। ध्वनि-परिवर्तन के कारण धीरे-धीरे विभक्तियाँ लुप्त हो गई और शून्य शेष बच गया : राम > रामो > रामु > राम।

**ए**—एकवचन के ए के विकास के बारे में मुख्य मत तीन है : (१) केलाग के मतानुसार सस्कृत के स्य (सम्बन्ध एकवचन) या कुछ सर्वनामो मे प्रयुक्त स्मिन् (सप्तमी एकवचन) से यह विकसित है। उनका कहना है कि प्राकृत काल मे प्रभाव के कारण स्मिन् से विकसित 'हि' सज्ञा मे जोडा जाने लगा था। अर्थात् या तो घोटकस्य > घोडइ > घोडे; अथवा घोटक > घोडओ + हि (< स० स्मिन्) > घोडइँ > घोडे। डा० उदयनारायण तिवारी का भी यही मत है। (२) डा० धीरेन्द्र वर्मा स० एकवचन के सभी कारकीय रूपो का इस 'ए' को अवशेष मानते है, किन्तु कर्ता (घोटक), कर्म (घोटकम्) तथा अपादान (घोटकात्) के रूपो से ए (घोडे) के विकास की सभावना नही है। (३) मेरे विचार मे इसका विकास करण (घोटकेन), सप्रदान (घोटकाय), सम्बन्ध (घोटकस्य) तथा अधिकरण (घोटके) के रूपो से हुआ है। उनसे 'घोडे' के ध्वन्य

त्मक विकास की संभावना तथा इन सभी कारकों में 'घोड़े' रूप का प्रयोग ये दोनों बातें मेरे मत के पक्ष मे जाती हैं।

ए—बहुवचन के 'ए' के विकास के सम्बन्ध में कई मत है। (१) बीम्स ने सकेत किया है कि सभव है यह 'सर्व' के बहुवचन 'सर्वे' के 'ए' का प्रभाव हो। (२) हार्नले तथा केलाग इसे मूलत' एकवचन का ही 'ए' मानते हैं, जिस पर ऊपर विचार किया जा चुका है। (३) डा० सुनीतिकुमार चटर्जी वैदिक सस्कृत मे प्रयुक्त 'एभि' विभक्ति (करण बहुवचन) से इस 'ए' का विकास मानते है। वस्तुत इसकी व्युत्पत्ति अस्पष्ट है।

आँ, एँ—इनकी व्युत्पत्ति के बारे मे कोई भी विवाद नही है। सभी लोग इन्हें नपुं० प्रथमा बहुवचन विभक्ति आनि से विकसित मानते है (क) आनि > आइँ > आँ; (ख) आनि > आइँ > ऐ > एँ।

ओं—इसकी व्युत्पत्ति के विषय में भी विवाद नही है। षष्ठी बहुवचन की विभक्ति 'अनाम्' से इसका विकास हुआ है आनाम् > आन > अणं > वन > ओ। उदाहरणार्थ. घोटकानाम् > घोडगान > घोडअण > घोडवन > घोडो।

ओ—सबोधन बहुवचन 'ओ' की व्युत्पत्ति पर केवल मैने हिंदी भाषा मे विचार किया है। मुझे ऐसा लगता है कि मूलत सस्कृत प्रथमा एकवचन विसर्ग से इसका विकास हुआ है। स० 'राम' का पालि, प्राकृत मे 'रामो' हो गया। यही ओ प्रभाव स्वरूप प्राकृत मे संबोधन एकवचन में भी प्रयुक्त होने लगा, तथा आगे और चलकर यह ओ अपभ्रंश मे प्रयोग-विस्तार से एकवचन-बहुवचन दोनो का प्रत्यय बन गया। हिन्दी का बहुवचन ओ अपभ्रंश के बहुवचन ओ से ही आया है।

## परसर्ग

कारकचिन्ह ने, को, से, का, मे, पर आदि को परसर्ग कहते है। 'परसर्ग' अँग्रेजी शब्द Postposition का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजो ने अपने शब्द Preposition के आधार पर हिंदी आदि भारतीय भाषाओ के ने को, से आदि को postposition कहा था, क्योकि ये, शब्द के बाद

(राम ने, मोहन को, घर से) आते है, जबकि अँग्रेजी के टू, फाम अ
शब्द के पहले (To Ram, from Delhi) आते है। हिंदी के पर
है . ने, को, के लिए, से, का, मे, पर। आगे इनकी व्युत्पत्ति पर विच
किया जा रहा है।

**ने**—'ने' की व्युत्पत्ति के बारे मे विद्वानो मे काफी विवाद है : (१
पं० कामता प्रसाद गुरु तथा किशोरीदास वाजपेयी 'ने' का विका
सस्कृत तृतीया एकवचन विभक्ति 'एन' से मानते है। इनके अनुसा
इसका विकास होगा सस्कृत एन>प्राकृत एण>एन> (विपर्यय से)
ने। विचार करने पर इस मत के विपक्ष में कई बाते सामने आती है
(क) जैसा कि बीम्स ने कहा है · यदि 'एन' के स्थान पर 'नेन' होता त
उससे 'ने' का विकास सभव था। 'एन' का विकास 'एँ' हो सकता है
'ने' नही। (ख) यदि 'एन' से 'ने' का विकास होता तो 'एन' पालि
प्राकृत, अपभ्र श में विकसित होता हुआ मिलता, किंतु ऐसी बात है
नही। हिंदी के पूर्व ही यह 'एँ' हो गया था। (ग) आधुनिक भारतीय आर्य
भाषाओ के परसर्गो का विकास विभक्तियो से नही हुआ है। इससे प्रायः
सभी विद्वान सहमत है। वस्तुत विभक्तियों के घिस जाने के बाद अर्थ
की अस्पष्टता आने पर ही कारकीय भाव को स्पष्ट करने के लिए स्वतंत्र
शब्द जोडे गए थे। परसर्ग उन्ही शब्दो के ध्वनि-परिवर्तन से विकसित
रूप है। अत· परसर्गो का विकास स्वतत्र शब्दो से मानना उचित होगा,
विभक्तियो से नही। (२) बीम्स तथा केलाग आदि 'ने' का सबध लग् धातु
के रूप से मानते है। केलाग के अनुसार सस्कृत लग्य >प्राकृत लग्गिओ
>हिंदी लगि>लै>ले>ने रूप मे 'ने' विकसित हुआ है। (२) डा०
सुकुमार सेन तथा कुछ अन्य लोग सस्कृत 'कर्णे' से ने का विकास मानते
हैं : कर्णे>कने>ने। कई वोलियों मे कने' का प्रयोग 'पास' के अर्थ में
होता है। वस्तुतः इनमे कोई भी मत बहुत पुष्ट नही दीखता, अत. 'ने' की
व्युत्पत्ति सदिग्ध माननी पडेगी, जैसा कि धीरेन्द्र वर्मा आदि कुछ लोगो
ने कहा भी है।

**को**—'को' की व्युत्पत्ति भी काफ़ी विवादास्पद है : (१) द्रप

'को' को संस्कृत 'कृत' से विकसित माना है : कृत > कितो > किओ > को। केलाग भी पहले इसी मत के थे, किंतु बाद में उन्होने इसे अस्वीकार कर दिया। (२) बीम्स, हार्नले, चटर्जी आदि के अनुसार 'को' का संबंध संस्कृत 'कक्ष' (=निकट, बगल) से है। बीम्स इसका विकास देते हैं : कक्षं > कक्ख > काख > काहं > कह > कहुं (अपभ्रंश की उकार बहुला प्रवृत्ति से) > कौं > को। (३) काल्डवेल इसे द्रविड़ 'कु' (कर्मकारक का चिन्ह) से जोडते हैं। इनमे अर्थ-सबध तथा ध्वनिविकास दोनों दृष्टियो से बीम्स तथा चटर्जी आदि का मत ठीक लगता है।

के लिए—'के' और 'लिए' दोनो का विकास अलग-अलग हुआ है। 'के' की व्युत्पत्ति के बारे मे दो मत हैं : (१) कुछ लोग 'के' को सस्कृत 'कृते' से जोड़ते है : कृते > किते > किदे > किए > कए > के। स० में 'रामस्य कृते' (राम के लिए) जैसे प्रयोग इस व्युत्पत्ति का समर्थन करते है। (२) दूसरे मतानुसार इसका विकास प्राकृत 'केरक' से है. केरक > केर > के। 'केरक' का अर्थ प्राकृत मे 'का' है, अतः पहला मत ही ठीक लगता है। यह प्रयोगत अर्थ की दृष्टि से भी निकट है तथा इससे 'के' के ध्वन्यात्मक विकास की भी सभावना है। 'लिए' के संबंध में भी तीन मत है। (१) हार्नले इसका संबंध संस्कृत 'लब्धे' से मानते है। (२) एक अन्य मतानुसार संस्कृत 'लग्ने' से इसका विकास हुआ है : लग्ने > लग्गे > लए > लिए। (३) धीरेन्द्र वर्मा प्राकृत धातु 'ले' से इसे जोडते हैं : कुछ हिंदी बोलियो में लिए के अर्थ में लगे, लागि आदि का प्रयोग आज भी मिलता है, अतः 'लग्ने' से 'लिए' के विकास की सभावना हो सकती है। हाँ, 'लिए' में 'ल' की 'इ' कहाँ से आ गई, यह स्पष्ट नही है।

से—'से' की व्युत्पत्ति भी काफ़ी विवादस्पद है : (२) हार्नले 'से' का संबंध प्राकृत 'सुतो' या 'छेतो' से मानते है। (२) बीम्स 'से' का अर्थ मूलतः from न मानकर with मानते हैं और इसी आधार पर इसे संस्कृत 'सम' से विकसित कहते है :—समं > सों > से। पृथ्वीराज रासो मे इस अर्थ में 'समं' का प्रयोग मिलता भी है, जिससे बीम्स के मत को

बल मिलता है :—'कह दूत प्रिथिराज सम'। किंतु कठिनाई यह है कि सम मे 'से' के ए के विकास के लिए संभावना नही है। (३) केलाग 'से' को संस्कृत 'सगे' से जोड़ते है :— सगे>सैं>सें>से। (४) चटर्जी ने 'से' का विकास 'सम हिं' से माना है—सं० सम हि>सअइ>से। इन सब मे अर्थ तथा ध्वन्यात्मक विकास दोनो दृष्टियो में केलाग का मत ही अधिक तर्कसंगत ज्ञात होता है।

का—'का' के तीन रूप मिलते है: का, की, के। 'का' पुल्लिग एकवचन है, 'की' स्त्रीलिंग तथा 'के' बहुवचन या विकारी। इसकी व्युत्पत्ति के विषय में मुख्य मत दो है : (१) पिशेल, भंडारकर तथा कुछ अन्य लोग इसे संस्कृत शब्द 'कार्यम्' से जोड़ते हैं। (२) हार्नले और बीम्स के अनुसार 'का' का विकास संस्कृत शब्द 'कृत' से हुआ है। कहते भी है—तुलसी कृत रामायण=तुलसी का रामायण। विकास इस प्रकार हुआ है सं० कृत> प्रा० करितो, करिओ, केरको>केरओ>केरो>कर>का। इनमे दूसरा मत प्रायोगिक अर्थ तथा ध्वन्यात्मक विकास दोनों दृष्टियो से संभावित लगता है। किंतु मेरे विचार मे इसे कृत के स्थान पर कृतक (>केरको>केर (अवधी), कर (अवधी) एर (बंगला), हि० का) से मानना अधिक उचित है। कृत. से 'केरको' का विकास संभव नही है।

में—'मे' की व्युत्पत्ति के बारे में प्रायः कोई विवाद नही है। दो-एक को छोड़कर प्राय सभी विद्वान् इसका संबन्ध संस्कृत 'मध्ये' से मानते है—मध्ये>मज्झे> मज्झि>मांहि>महि>महँ>मैं>मे।

पर—'पर' की व्युत्पत्ति के बारे मे दो मत है: (१) केलाग तथा धीरेन्द्र वर्मा इसे संस्कृत उपरि से विकसित मानते है। हार्नले तथा उ० ना० तिवारी इसे संस्कृत परे (=दूर) से जोड़ते है। अर्थ तथा ध्वन्यात्मक विकास दोनो दृष्टियो से पहला ही ठीक ज्ञात होता है।

हे—यह संबोधन मे प्रयुक्त होता है। इसे परसर्ग न कहकर पूर्वसर्ग कहना अधिक उपयुक्त है। यह संस्कृत मे भी 'हे' (संबोधन में प्रयुक्त) है।

ऐ—यह भी पूर्वसर्ग है। इस पर विचार नही किया गया है। मेरे

विचार में सं० 'है' (संबोधन में प्रयुक्त) से यह विकसित हैं:— है >ऐ।

परसर्गवत् प्रयुक्त अन्य शब्द अंदर (फा०), आगे (सं० अग्रे> प्रा० अग्गे>आगे), ऊपर (सं० उपरि), ओर (सं०अवार), ख़ातिर (अ०), नीचे (सं० नीचैं.), पास (सं० पार्श्वें), पीछे (सं० पश्चे बाहर (सं० बहिर्), मारे (सं० मारितेन), भीतर (अभ्यतर), वास्ते (अर: वासित·) आदि है।

# सर्वनाम

सर्वनाम संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते है। संज्ञा की भाँति ही इनके विकारी और अविकारी रूप होते है। पिछले अध्याय में हम देख चुके है कि अविकारी रूप मे परसर्ग नही लगते तथा विकारी मे अवश्य लगते है। सर्वनाम एक बात मे संज्ञा शब्दों से भिन्न है कि उनका संबोधन मे प्राय प्रयोग नही होता। आगे हिन्दी सर्वनामो के रूप तथा उनका विकास दिया जा रहा है।

**पुरुषवाचक . (क) उत्तम पुरुष**

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| अविकारी रूप | मै | हम |
| विकारी रूप | मै, मुझ | हम |
| सबन्ध रूप | मेरा | हमारा |

**मै**—(१) कामताप्रसाद गुरु ने 'मै' का सबध संस्कृत 'अहम्' से माना है, किंतु अहम् का ध्वन्यात्मक विकास 'मै' नही हो सकता। प्रा० में इसका रूप 'ह' हो जाता है, जिससे ब्रजभाषा का 'हौ' विकसित हो सकता है, और हुआ भी है, किन्तु 'मै' नही। (२) इसीलिए बीम्स, चटर्जी आदि अन्य प्राय सभी विद्वान् 'मै' का संबध सं० मया (तृतीया एकवचन) से मानते है स० मया > पा० मया > प्रा० मइ > अप० मइँ मै। एक प्रश्न उठता है कि मइँ मे अनुनासिकता कहाँ से आ गई। इस संबध मे दो मत है: (१) डा० सुनीतिकुमार चटर्जी इसे संस्कृत एक० तृतीया एन (जैसे बालकेन) का प्रभाव मानते है। (२) मेरे विचार मे निकटस्थ ध्वनि म के प्रभाव से अनुनासिकता आई है। 'मे' (सं० मध्ये)

आदि कई अन्य शब्दों की अनुनासिकता भी इसी प्रकार की है। सच पूछा जाय तो महँ अपभ्रंश काल का रूप है और इस काल मे आकर सामान्य जनता की भाषा पर सस्कृत के रूप के प्रभाव की सभावना नही है। इसलिए दूसरा मत ही ठीक लगता है।

**मुझ**—अधिकाश विद्वान 'मुझ' को 'मह्यम्' (सप्रदान एकवचन) से संवद्ध मानते है : सं० मह्यम् > पा० मय्ह > प्रा० मज्झ > अप० मज्झ मज्झु > हि० मुझ। मुझ में 'उ' कहाँ से आ गया, यह प्रश्न विचारणीय है (१) बीम्स ने इसे तुझ (स० तुभ्यम्) के सादृश्य पर माना है। (२) मेरे विचार में अप० मे प्राप्त रूप मज्झु (जो अपभ्रंश की उकारबहुला प्रवृत्ति के कारण अस्तित्व मे आया होगा) से विपर्यय के कारण 'मुझ बना होगा। यो संभावना बीम्स के मत की भी हो सकती है।

**मेरा**—मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा मै अंत्य 'आ' लिग-वचन का द्योतक है, और इसके स्थान पर ए (मेरे, तेरे आदि) या ई (मेरी आदि) आ सकते हैं। शेष मे 'मे', 'हमा', 'ते' 'तुम्हा' क्रमश· उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष के है। शेष बचता है 'र'। यह 'र' ही सबध कारक का द्योतन करता है। 'मेरा' के विकास के सबध मे मुख्य मत दो है (१) केलाग तथा धीरेन्द्र वर्मा आदि इसे मह+केर या केरो से जोडते हैं। धीरेन्द्र वर्मा ने विकास दिया है : मह केर या मह केरो > म्हारो मारो, मेरा। किंतु 'मा' से 'मे' के विकास की सभावना नही है। (२ आठवी सदी के एक सस्कृत चीनी कोश मे 'मेरा' के अर्थ मे एक शब्द मिला है 'ममेर' जो 'मम+केर' से निकला ज्ञात होता है। प्राकृत काल मे 'केर' सबधकारक का चिह्न था। 'मम' की अस्पष्टता के कारण उसके साथ 'केर' के जुड जाने की पूरी सभावना हो सकती है। उदय नारायण तिवारी 'ममेर' से ही 'मेरा' को जोड़ते है। प्राकृत 'केर' मूलत: सस्कृत 'कृत' से विकसित है· अर्थात् मम+केर (स० कृत) > ममेर > मेर+ लिंग-वचन का प्रत्यय। इनमे दूसरा मत अधिक तर्कसगत ज्ञात होता है क्योकि ध्वन्यात्मक विकास, अर्थ तथा प्रयोग तीनो ही दृष्टियो से इसी विकास की सम्भावना हो सकती है।

हम—(१) कामताप्रसाद गुरु इसे सं० अहं से विकसित मानते है। किन्तु अहं से उसके ध्वन्यात्मक विकास की सभावना है नही। (२) तेसितोरी, चटर्जी, वर्मा आदि इसे वैदिक सस्कृत अस्मे (सप्रदान-अधिकरण बहु०) से जोडते है : अस्मे>पालि, प्राकृत, अप० अम्हे> अम्ह>हम। अपभ्रंश से हिंदी विकास में धीरेन्द्र वर्मा 'म' और 'ह' मे विपर्यय मानते है। मेरे विचार मे ऐसा नही है। गुजराती मे 'हम' के लिए अम' का प्रयोग इस बात का सकेत देता है कि 'अम्ह' का 'अम' बना और फिर ह के आदि-आगम (ओष्ठ से होठ या अस्थि से हड्डी की भाँति) से 'अम' 'हम' बन गया।

हमारा—'हमारा' की व्युत्पत्ति धीरेन्द्र वर्मा 'अम्ह करको' से मानते है : प्राकृत अम्ह करको>अम्ह अरओ>अम्हारो>हमारो हमारा। इस विकास को सस्कृत तक ले जाते हुए मै इस रूप मे रखना चाहूगा : अस्मे+कृतक.>अम्ह करको>अम्ह अरओ> अम्हारउ>हमारा। (२) उदयनारायण तिवारी ने 'हमारा' को 'अस्म कर' से जोडा है, किन्तु इसकी सभावना अपेक्षाकृत कम लगती है।

मध्यम पुरुष

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| अविकारी रूप | तू | तुम |
| विकारी रूप | तू, तुझ | तुम |
| सबध रूप | तेरा | तुम्हारा |

तू (१)— धीरेन्द्र वर्मा इसका विकास सस्कृत त्वया से मानते है, किंतु इसका सीधा विकास त्वम् से हुआ है जैसा कि (२) हार्नले, सुनीति कुमार चटर्जी तथा बाबूराम सक्सेना आदि मानते है : स० त्वम्>पा० त्व, तुव>प्रा० तुव>हि तू।

तुझ (१)—पिशेल तथा तेसितोरी 'तुझ' का विकास तुभ्य से सभव नही मानते। इसीलिए वे लोग मह्यम् के सादृश्य पर स० *तुह्यम् रूप की कल्पना करते है . स० तुह्यम्>अप० तुज्झ>तुझ। (२) धीरेन्द्र वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी इसे तुभ्यम् से जोडते है : स० तुभ्यम्>

तुज्झ>तुझ। (३) मेरे विचार मे प्राकृत अपभ्रंश के रूपो से स्पष्ट है कि अंत्य म् वाले रूपो से इसका विकास नही है, नही तो म का किसी न किसी रूप मे इनमे अवशेष होता। वैदिक सस्कृत तुह्य (सप्रदान एक०) से मुझे इसके विकास की संभावना लगती है. वै० स० तुह्य>प्रा० तुज्झ>अप० तुज्झ>हि० तुझ।

तेरा—मम+को से 'मेरा' के विकास के सादृश्य पर तव+केर से 'तेरा' का विकास माना जा सकता है: तव+केर (स० कृत)>*तवेर (कल्पित रूप)>तेर (+लिंग-वचन का प्रत्यय)।

'तुम'—तुम की व्युत्पत्ति बहुत विवादास्पद है: (१) कामताप्रसाद गुरु इसे त्वम् से जोडते है · स० त्वम्>प्रा० तुम्ह>हि० तुम, किंतु इस रूप मे इसके विकास की सभावना नही है। (२) प्राकृतो के सबध मे विचार करते हुए पिशेले ने *तुष्मे रूप (वैदिक युष्मे के आधार पर) की कल्पना की थी। धीरेन्द्र वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी इस स० तुष्मे से ही तुम्हे होते तुम का विकास मानते है। (३) मैने तुष्मे को लेकर 'हिंदी भाषा' मे एक आपत्ति उठाई है। आपत्ति यह है संस्कृत मे मध्यम पुरुष बहुवचन के सभी रूप य् से प्रारभ होते थे, किंतु पालि मे सभी रूप त से प्रारभ होने लगे। अत: केवल एक कल्पित रूप तुष्मे मान लेने से काम नही चल सकता। यदि कल्पना करनी है तो सस्कृत मे सभी कारको मे त् से प्रारभ होने वाले रूपो की कल्पना करनी पडेगी। किंतु एक साथ सभी कारको मे रूपो की कल्पना समीचीन नही लगती, अत 'तुष्मे' की कल्पना नही की जा सकती। मुझे लगता है कि मेरी यह आपत्ति ठीक है और ऐसी स्थिति मे तुम की व्युत्पत्ति अस्पष्ट है, बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि तुम, तुम्हारा आदि मे त व्यजन कहाँ से आ गया स्पष्ट नही है। शेष उम (त्+उम) आदि तो वैदिक 'युष्मे' से स्पष्ट ही सबद्ध है। मुझे एक समावना लगती है। सभव है पालिकाल के प्रारंभ मे एकवचन के सभी रूपो मे प्राप्त त् के प्रभाव से बहुवचन मे य के स्थानपर 'त' हो गया हो। किंतु यह केवल एक संभावना है।

तुम्हारा—इसका विकास जैसा कि धीरेन्द्र वर्मा ने माना है प्राकृत

तुम्ह+करको>तुम्ह अरओ>तुम्हारा रूप मे ज्ञात होता है। इसमे कर को' तो सस्कृत 'कृतक:' से विकसित ज्ञात होता है, और तुम्ह वैदिक युष्मे पालि तुम्हे से आया है, किंतु जैसा कि 'तुम' के प्रसंग में कहा जा चुका है, त् कहाँ से आ गया स्पष्ट नही है।

आप – तुम के स्थान पर आदर के लिए 'आप' का प्रयोग होता है। इसकी व्युत्पत्ति के बारे मे मुख्यत. दो मत है : (१) बीम्स, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा आदि सस्कृत आत्म>प्रा० अप्प>आप रूप में इसका विकास मानते है। मै इससे सहमत नही हूं। वस्तुत: स० 'आत्म' से हिन्दी निज-वाचक 'आप' का विकास हुआ है, आदरसूचक 'आप' का नहीं, क्योंकि सस्कृत 'आत्म' मे मूलत: निज का भाव है आदर का भाव नही है। मेरे विचार मे हिन्दी आप या तो सस्कृत 'आप्त' से विकसित है (आप्त>अप्प>आप) या द्रविड भाषाओ मे 'प्राप्त' आदरसूचक शब्द अप्प (अप्प>(२)प्रा० अप्प>हि० आप)।

अन्य पुरुष

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| अविकारी रूप | वह | वे |
| विकारी रूप | उस | उन |

वह – वह की व्युत्पत्ति के बारे में कई मत है : (१) कामताप्रसाद गुरु इसे स० सः से विकसित मानते है स० सः>प्रा० सो>हिंदी वह। किंतु इस रूप मे विकास की सभावना नही है। (२) भडारकर तथा उदयनारायण तिवारी स० अमौ>पा० असु>प्रा० असो>अहो>ओह>वह रूप मे इसका विकास मानते है। (३) पिशेल ने कुछ ईरानी रूपो के आधार पर स० मे एक *अव मूल की कल्पना की थी। इसके पक्ष मे कुछ अतिरिक्त सामग्री चटर्जी को तथा कुछ और सामग्री मुझे मिली। इसके आधार पर इसका विकास होगा · *अव:>*अवो>*वो>ओउ>ओहु>वहु>वह। यो सभी दृष्टियो से विचार करने पर इसकी

व्युत्पत्ति संदिग्ध ज्ञात होती है।

उस : (१) धीरेन्द्र वर्मा का कहना है कि यदि अव की कल्पना ठीक है तो अव के षष्ठी एकवचन *अवस्य से यह विकसित हो सकता है : सं० अवस्य > प्रा० अउस्स > उस । (२) उदयनारायण तिवारी इसका विकास 'अमुष्य' से मानते हैं : सं० अमुष्य > पा० अमुस्स > प्रा० अउस्स > उस । दूसरा मत अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है।

वे — इसकी व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य मत तीन हैं : (१) चटर्जी कल्पित रूप *अवेभि (*अव का करण बहु०) > *अवहि > वे रूप में इसका विकास मानते हैं। (२) धीरेन्द्र वर्मा इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते हैं। (३) उदयनारायण तिवारी के मतानुसार 'वह + एभि' से वे विकसित है। वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित ज्ञात होती है।

उन — इसकी व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य मत चार हैं (१) डा० धीरेन्द्र वर्मा इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते हैं। (२) किशोरीदास वाजपेयी 'वह + बहुत्वसूचक न' से 'उन' को निकला मानते है, किन्तु इस प्रकार के विकास की संभावना नहीं है। (३) उदयनारायण तिवारी के मतानुसार संस्कृत अमुष्याम् > अमूनाम् > अउण > उण्ह > उन रूप में यह विकसित है। (४) मुझे लगता है कि संस्कृत के कर्म बहु० अमून् (प्रा० अमूण, अप० उण्ह हि० उन्ह > उन) से इसका विकास अधिक संभावित है, क्योंकि उदयनारायण तिवारी के विकास में 'न' कहां से आ गया स्पष्ट नहीं है।

## निश्चयवाचक सर्वनाम

यह दो प्रकार का होता है : दूरवर्ती, निकटवर्ती। दूरवर्ती तो 'वह' है, जिसपर अन्य पुरुष के अंतर्गत विचार किया जा चुका है। निकटवर्ती 'यह' है जिसके रूप निम्नांकित है —

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| अविकारी रूप | यह | ये |
| विकारी रूप | इस | इन |

यह—यह के विकारा के सम्बन्ध में प्रायः कोई विवाद नही है। सभी विद्वान् इसका सम्बन्ध एषः से मानते है : सस्कृत एष.>पालि एसो> प्रा० एसो>अप० एसो>एहो, एहु>एह>यह।

इस—'इस' के सबध में मुख्य मत चार है : (१) बीम्स संस्कृत अस्य>प्राकृत अस्य>इस रूप में इसे विकसित मानते है, किंतु 'अ' से 'इ' के विकास की सम्भावना सामान्यतः नही है। (२) धीरेन्द्र वर्मा सस्कृत अस्य>प्राकृत एअस्स>इस रूप में इसका इतिहास देते है। वस्तुतः अस्य से प्राकृत एअस्स का विकास संभव नही है। (३) सुनीति-कुमार चटर्जी संस्कृत एतस्य (>पालि एतस्य>प्राकृत एअस्स>इस) से इसे जोड़ते है। चटर्जी का मत ठीक लगता है, क्योंकि इसके विरोध में वे बाते नही कही जा सकती जो बीम्स और वर्मा के विरोध मे ऊपर कही गई है।

ये—(१) ये का विकास चटर्जी सस्कृत एतैः (करण बहु०)> एतेहि>कल्पित रूप *एएहि>से मानते है। (२) हार्नले तथा धीरेन्द्र वर्मा सस्कृत एते (प्रथम बहु०)>पालि एते>प्राकृत एए>अप०एइ> ए>ये रूप मे मानते है। इनमे दोनो ही की समान संभावना है।

इन—इसका सम्बन्ध कई शब्दों से जोड़ा जाता रहा है : (१) किशोरीदास वाजपेयी यह+बहुत्वबोधक न से 'इन' को जोडते हैं, किंतु इस रूप मे इसके विकास की सम्भावना नही है। (२) धीरेन्द्र वर्मा ने 'इस' पर सज्ञा रूपो के षष्ठी बहु० के प्रत्यय 'आनाम्' के प्रभाव से इनका विकास माना है, किंतु उपर्युक्त की तरह ही, इसकी भी सभावना प्रायः नही है। (३) उदयनारायण तिवारी सस्कृत कल्पित रूप *एताषाम् से इसे जोड़ते है। कहना न होगा कि इसमे 'न' का विकास स्पष्ट नही है यद्यपि इस प्रकार कुछ उदाहरण पालि-प्राकृत मे मिलते है। वस्तुतः इन की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| अविकारी रूप | कौन, क्या | × |
| विकारी रूप | किस | किन |

अविकारी वहुवचन मे कौन-कौन, क्या-क्या या कौन लोग आदि का प्रयोग होता है।

**कौन**-- इसका विकास स 'क. पुन.' से हुआ है· स० कः पुन·> पा० को पन>अप० कवण>हिंदी कौन।

**क्या**--(१) कामताप्रसाद गुरु 'क्या' को सं० किम् से जोड़ते है। इस विकास मे अर्थ के स्तर पर तो समानता है किंतु 'किम्' से 'क्या' के ध्वन्यात्मक विकास की सम्भावना नही है। (२) प्लाट्स स० कीदृश> के द्दहो>केहो>किहा>किआ>क्या रूप मे विकास मानते है। (३) प्राकृतो मे मुझे क्या के अर्थ में किस्सा, कीआ रूप मिले है, जिससे क्या का विकास सरलता से हो सकता है, और 'किस्सा' का सबध स०*'कस्य' से समावित है। अर्थात् विकास हुआ *किस्य (स० कस्य के स्थान पर बोलचाल का रूप रहा होगा)+क (स्वार्थे)>प्रा० किस्सा>*कीसा> किआ>क्या। इसका आशय यह हुआ कि प्राकृत से तो विकास स्पष्ट है, उसके पूर्व कल्पित रूप की भी समावना हो सकती है। दे० किस।

**किस** - 'किस' की व्युत्पत्ति के वारे मे मुख्य मत दो है: (१)बीम्स केलाग, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा, उदयनारायण तिवारी इसे सस्कृत 'कस्य' से जोडते है: सस्कृत कस्य>प्राकृत किस्स>हिंदी किस। (२) मेरी आपत्ति यह रही है कि 'क' का 'कि' कैसे हो गया। वस्तुत· मेरे विचार मे बोलचाल में सस्कृत मे एक किस्य रूप भी रहा होगा। इसके पक्ष मे दो तर्क है (क) एक तो यह कि पालि मे किस्स रूप प्राप्त है जो स० किस्य से ही निकल सकता है। (ख) दूसरे, मूल भारोपीय भाषा मे 'क' के अतिरिक्त 'कि' मूल की भी समावना है जो स० 'किम्', फा० 'चिंय, लैटिन' quis जर्मन Hu। आदि से स्पप्ट है। ऐसी स्थिति मे क से कस्य के समान्तर कि से किस्य का होना सर्वथा सभव है। अर्थात् मेरे अनुसार किस का विकास है · स०* किस्य, पालि किस्स, अप०किस, हि० किस।

**किन** (१) बीम्स तथा धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत 'केषा' के स्थान पर सज्ञा शब्दो (जैसे बलकाना) के सादृश्य पर बने सस्कृत कल्पित रूप

*काना (>प्राकृत केणां>किन) से किन का विकास मानते है, किंतु (२) डा० उदयनारायण तिवारी संस्कृत केषाम्>प्राकृत काण>काण (पालि किस्स के प्रभाव से) किण>किन रूप मे इसे विकसित कहते है। (३) मेरे विचार मे संज्ञा के बालकानाम् जैसे रूपो मे प्रभावित बोलचाल की संस्कृत के कल्पित रूप केषानाम् (केषा पर आनाम् के प्रभाव से बना) मे इसे (>पा० केसान>प्रा० केण>अप० किण>हि० किन) मे यह निकला है। पालि मे प्राप्त रूप 'केसान' जिससे 'किन' के विकास की पूरी सम्भावना है सं. 'केषानाम्' से ही निकल सकता है और 'केषानाम्' का अस्तित्व उपयुक्त रूप मे असम्भव नही है। प्रथम दो मतो मे आ>ए तथा ष>ण विकास बहुत संभव नही है।

## सम्बन्धवाचक सर्वनाम

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| अविकारी रूप | जो | × |
| विकारी रूप | जिस | जिन |

अविकारी रूप बहु० मे 'जो-जो' या 'जो लोग' का प्रयोग होता है।

**जो**—इसकी व्युत्पत्ति के विषय मे कोई विवाद नही है। सभी लोग इस बात से सहमत है कि संस्कृत य से इसका विकास हुआ है: संस्कृत य>पालि यो>प्राकृत जो>अपभ्रंश जो>हिंदी जो।

**जिस**—इसका संबंध स्पष्ट ही 'यस्य' से है, किंतु इसके विकास के सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद है: (१) बीम्स तथा उदयनारायण तिवारी संस्कृत यस्य>प्राकृत जस्स>हिंदी जिस रूप मे मानते है, तो (२) धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत यस्य>जस्स, जिस्स>जिस रूप मे। वस्तुत. समस्या 'इ' के आने की है। (३) मुझे प्राकृत मे 'जिस्स' रूप मिला है। लगता है पालि मे प्राप्त रूप 'किस्स' के प्रभाव सं० यस्य, प्रा० यस्स प्राकृत मे जाकर जिस्स, जिस्सा हो गया। अर्थात् विकास हुआ सं० यस्य>पा० यस्स>प्रा० जिस्स (किस्स के प्रभाव से; ऊपर दे० किस)>हि० जिस।

**जिन**—इसकी व्युत्पत्ति (१) बीम्स तथा वर्मा—संस्कृत संबंध कारक. बहुवचन के येषा>के स्थान पर संज्ञा शब्दो के सादृश्य पर बने कल्पित रूप *याना (>प्राकृत जाण>जिन>) से मानते है।

(२) उदयनारायण तिवारी स० येषाम्>प्राकृत जाण>जिन रूप मे विकास मानते है। 'जाण से 'जिन' का विकास (आ>इ) सामान्यतः सभव नही है। (३) मेरे विचार मे सज्ञा शब्दो के बालकानान् जैसे रूपो से प्रभावित येषा के स्थान पर बोलचाल की सस्कृत में प्रचलित रूप *येषानाम् (>पा० येसान>जिण, जिण्ह>जिन, जिन्ह) से इसका विकास हुआ है। मेरे अनुमान के पक्ष मे ये बातें कही जा सकती है : (क) अकारान्त सज्ञाओ के बहुप्रयोग के कारण ऐसे प्रभाव सभावित है। इसे बीम्स, चटर्जी आदि ने अनेक व्युत्पत्तियो में माना है। (ख) येषां पर आनाम् के प्रभाव से येषानाम् रूप बन सकता है। (ग) पालि मे प्राप्त रूप येसान इससे सरलता से निकल सकता है। (घ) येसान से जिन, जिन्ह का विकास स्पष्ट है।

## अनिश्चयवाचक सर्वनाम

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| अविकारी रूप | कोई, कुछ | × |
| विकारी रूप | किसी | किन्ही |

अविकारी बहु० मे कोई-कोई या कुछ लोग का प्रयोग होता है।

कोई—इसकी व्युत्पत्ति के सबध मे सभी लोग सहमत है : सस्कृत कोऽपि (क अपि)>पालि को पि>प्राकृत को वि>अपभ्र श कोई> हि० कोई।

कुछ—कुछ की व्युत्पत्ति विवादास्पद है (१) बीम्स सस्कृत किंचित के स्थान पर सभावित प्रयुक्त कल्पित रूप *कञ्चित (कत्+चित) से कुछ का सबध जोडते है। 'च' का 'छ' कैसे हो गया, उन्होने स्पष्ट नहीं किया है। (२) धीरेन्द्र वर्मा सस्कृत कश्चिद्>प्राकृत कल्पित रूप* कच्छु>कुछ रूप मे इसका विकास देते है। इस मत मे 'श' के प्रभाव से 'च' से 'छ' के विकास की सभावना तो है, किंतु कश्चिद्' और 'कुछ' के अर्थ मे अतर है। (३) मुझे इसका विकास इस रूप मे कुछ सभावित लगता है : सस्कृत किंचित्>शिलालेखी प्राकृत किंचि>किंछि (कश्चिद् >कल्पित रूप* कच्छि का प्रभाव)>कल्पित रूप किच्छ>किच्छु

(अपभ्रंश की उकार-बहुला प्रवृत्ति)>किछु(भोजपुरी मे प्राप्त रूप), कछु (पुरानी हिंदी में प्राप्त)>कुछ। वस्तुत. इसकी व्युत्पत्ति सदिग्ध है। अतिम मत की भी सम्भावना ही हो सकती है।

किसी—प्रमुख मत निम्नाकित है—(१) धीरेन्द्र वर्मा सस्कृत कस्यापि से 'किसी' को निकला मानते है। (२) उदयनारायण तिवारी सस्कृत कस्यापि (प्राकृत कस्स-वि>कस्सइ>किसी) से इसका सबध जोडते है। (३) पालि मे किस्सापि रूप प्राप्त है अतः सस्कृत मे इसका पूर्व रूप* किस्यापि होगा। इसीलिए मेरे विचार मे सं०* किस्यापि> पा० किस्यापि>प्रा०*किस्सवि>अप०*किस्सइ>हि० किसी—रूप मे इसका विकास हुआ है। ('किस्यापि' के 'किस्य' के लिए ऊपर देखिए 'किस')

किन्हीं—(१) वर्मा ने इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानी है। (२) उदयनारायण तिवारी इसे केपामपि (>*कानापि, प्रा० काणपि, काणवि>काणइ>किन्ही, करण विभक्ति भि >हि के सयोग से तथा पालि किस्य के प्रभाव से) से जोड़ते है। (३) मेरे विचार में केपा के स्थान पर प्रयुक्त केपानाम् (आनाम् के प्रभाव से) से बने रूप *केषा-नामपि से इसका विकास अधिक सभव है। तिवारी जी के मत की 'न' की समस्या भी इस रूप से सुलझ जाती है, तथा जिन (दे०), किन (दे०) मे व्यक्त सभावनाओ से भी इसका मेल खाता है। यो इसकी भी मात्र सभावना ही हो सकती है। सनिश्चय कुछ कहना कठिन है। यो एक संभा-वना और भी हो सकती है किसी आदि रूप तो प्राचीन काल से मिलते है किन्तु किन्ही का कोई बहुत पुराना प्रयोग मुझे नही मिला। असभव नही कि आधुनिक काल मे किन+ही के साथ प्रयोग से अभी, जभी या इसी-उसी की तरह 'किन्ही' रूप बन गया हो। किन्ही की अनुनासिकता 'न्ह' के कारण है।

निजवाचक

आप इसका विकास स० आत्म से हुआ है, स० आत्म>प्रा०> अप्प>हि० आप।

रण मे श हो गया था) से ही छ निकला है। छः के रूपांतर छ तथा सो (षोडश>सोलह) है।

**सात :** सं० सप्त>पा०, पा०, अप० सत्त>हि० सात। सत (१७, २७ आदि) सात का रूपांतर है। सड़ या सर(६७) मे ड़, र सत के 'त' (>ट>ड्>ड़>र) के विकास है।

**आठ :** स० अष्ट>पा०, प्रा० अप० अट्ठ>हि० आठ। अठ (१८ २८ आदि) आठ का रूपांतर है। अड या अर (३८,४८,६८) में ड र आठ के ठ (>ट>ड>ड़>र) के विकास है।

**नौ :** सं०, पा० नव>प्रा०, अप० णव>हि० नव(८९), नौ। निन्या (९९) 'नौ' से संबद्ध है किन्तु इसका विकास अस्पष्ट है। नौ से केवल ८९, ९९ बने है। १९,२९,३९,४९,५९,६९,७९ मे 'उन' का अर्थ 'एक कम' (सं० एकोन>उन) है।

**दस :** सं० दश>पा० दस>प्रा० दस, दह (स>ह), रह (द>ड>ड़>र), लह (द>ड>ळ>ल), अप० दस तथा अन्य प्राकृत रूप>हिंदी दस, दह (१४), रह (११,१२,१३,१७,१८), लह (१६)। १५ मे द+र (दह+रह) है।

**बीस :** सं० विशति (मेरे विचार से सं० मे मूलत: द्विशति रहा होगा), पा० वीसति>प्रा० बीसइ>अप० बीस>हि० बीस। ब्बीस (२६), ईस (१९, २२) आदि इसी के रूपातर है। १९=उन(एक कम) +ईस।

**तीस :** स० त्रिशत्>पा० तिंसति>प्रा०, अप० तीस>हि०तीस। २९=उन+तीस।

**चालीस :** स० चत्वारिशत्>पा० चत्ताळीसति>प्रा० चत्तालीस अप चालीस>हि० चालीस। प्रा० चत्तालीस से च के लोप से 'तालीस' (३९,४१,४३,४५,४७,४८) तथा त के लोप से 'चालीस' और दोनों के लोप से 'आलीस' (४२, ४२)। ४४, ४२ के 'य' तथा 'व' श्रुति है।

**पचास :** सं० पचाशत् पा०पञ्ञासा, *पचासा>प्रा०, अप०पंचास>हिं० पचास। 'चास' (४९) 'प' के लोप से। पचाशत्>पञ्ञासा>

>पणासा>पण>पन (५३, ५५, ५६)>वन (५१,५२,५४,५७, ५८) रूप मे पन, वन विकसित है ।

**साठ** · सं० षष्ठि>पा०, प्रा० अप० सट्ठि>अप० सट्ठ>हि० साठ, स० (५९, ६१) आदि। सड (६७) का ड़ ठ>ट>ड>ड रूप मे विकसित है ।

**अस्सी** : सं० अशीति>प्रा० असीति>प्रा० असीइ>अप० अस्सी >हिंदी अस्सी, आसी (७९, ८१, ८२ आदि) ।

**सत्तर** : स० सप्तति>पा० सत्तति सत्तरि>प्रा० सत्तरि>अप० हि० सत्तर। हत्तर (६९, ७१, ७२ आदि मे) में 'ह' स का परिवर्तित रूप है । त का र त>ट>ड>ड़>र रूप मे हुआ ज्ञात होता है ।

**नब्बे** . स०, पा० नवति>प्रा०, अप० ण वइ>हि नव्वे, नब्बे, नबे (९१, ९२ आदि मे)

**सौ** · स० शत>पा० सत>प्रा० सत, सअ, सय (य श्रुति) >अप० सउ (सअ>सव 'व' श्रुति>सउ)>हि० सौ (सउ से), सै (सय; से सैकड़ा में) ।

**हज़ार** : फ़ा० से आया है ।

**लाख** · स० लक्ष>प्रा० लक्ख>हि० लाख, लख (लखपती) ।

**करोड़** : स०, पा० कोटि>प्रा०, अप० कोडि>हि० करोड । 'र' कहाँ से आ गया ? (१) वर्मा जी इसे अस्पष्ट मानते है । कहते है समव है 'कोटि' के आधार पर गढ लिया गया हो । (२) चटर्जी सस्कृत रूप देने की प्रवृत्ति से कोटि से करोड मानते है । (३) मेरे विचार से दर्जन, श्राप आदि की तरह करोड मे 'र' का आगम है ।

(ख) **अपूर्णांकबोधक**

**पाव** स० पाद>प्रा० पाओ>अप० पाउ>हि० पाव ।

**चौथाई** : स० चतुर्थिक>प्रा० चउत्थिअ>हि० चौथाई (तिहाई के सादृश्य पर) ।

**तिहाई** : सं० त्रिभागिक>प्रा० तिहाइअ>हि० तिहाई ।

**आधा** : स० अर्ध>अद्ध>आध, आधा ।

को प्रेरित करके काम करवाता है जैसे 'राम नौकर से काम कराता है' या 'मै माली से बाग सिचवाता हूं' । इन वाक्यों मे 'करा' तथा 'सिचवा' प्रेरणार्थक है जो क्रमश. 'कर' में 'आ' तथा 'सीच' मे 'वा' प्रत्यय जोड़कर वनी है । हिदी के इन 'आ' और 'वा' प्रत्ययों का संबध सस्कृत से है। सस्कृत मे अय् (णिच्) प्रत्यय जोडकर प्रेरणार्थक की रचना होती है। जैसे बुध् से बोधयति। आकारात धातुओ मे 'अय्' के पूर्व 'प' का आगम हो जाता है । जैसे 'स्ना' से स्नापयति । इस 'अय' से ही हिन्दी के 'आ' प्रत्यय का, तथा 'पय' से 'वा' प्रत्यय का विकास हुआ है ।

(४) **नामधातु** .

जो धातुएँ **सज्ञा** (हथियाना, फिल्माना, शरमाना), **सर्वनाम** (अपनाना), **विशेषण** (सठियाना) आदि से बना ली जाती है, उन्हें नामधातु कहते है। हिंदी मे ऐसी धातुएँ बनाने के लिए आ, इया तथा शून्य प्रत्ययो का प्रयोग होता है .

**आ** – फिल्मा, शर्मा, अलगा ।

**इया**—हथिया, धकिया, बतिया, सठिया ।

**शून्य**—स्वीकार, अपना, बदल ।

सस्कृत मे नामधातु के लिए आय (कृष्णायते), ईय (पुत्रीयति), तथा य (नदियति) प्रत्ययो का प्रयोग होता है। संस्कृत के 'आय' प्रत्यय से ही हिंदी 'आ' तथा 'ईय' प्रत्यय से हिन्दी 'इया' का विकास हुआ है । शून्य का विकास प्रत्ययो के लोप के कारण हुआ है।

**कृदंत**

'कृदत' शब्द कृत्+अत से बना है । सस्कृत में कृत् ऐसे प्रत्ययो को कहते हैं जो धातु मे विशेषण तथा संज्ञा की रचना के लिए जोडे जाते है। **इस तरह कृदत वे शब्द है जिनके अत में कृत् (कृत+अत) प्रत्यय आते** हैं। हिन्दी मे कृदतो का प्रयोग क्रिया, विशेषण, सज्ञा तथा क्रियाविशेषण के रूप मे होता है। हिन्दी क्रिया मे कृदतो का महत्वपूर्ण स्थान है, इसीलिए उनका विवेचन क्रिया के प्रसग में किया जा रहा है। हिदी कृदत दो प्रकार के है

(१) **विकारी :**

जिनमे लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तन होता है।

(२) **अविकारी :**

जिनमे लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तन नही होता।

नीचे दोनों को अलग-अलग लिया जा रहा है।

## विकारी कृदन्त

### (१) वर्तमानकालिक कृदत या अपूर्ण कृदत

इस कृदन्त की रचना 'धातु+त्+लिंग-वचन का प्रत्यय' से होती है। जैसे—चल+त्+आ=चलता। इसी प्रकार पढती, जाते, सोता, लिखती आदि भी वर्तमानकालिक कृदन्त है। हिन्दी मे वर्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग चार रूपो मे होता है (क) **संज्ञा—मरता** क्या न करता ? (ख) **विशेषण—सोते** साँप को मत छेडो। (ग) **क्रिया-विशेषण**—राम **दौड़ता** आ रहा है। (घ) **क्रिया**—राम **पढता** है। इस तरह हिन्दी मे वर्तमानकालिक कृदन्त के लिए त् प्रत्यय का प्रयोग होता है। सस्कृत मे वर्तमानकालिक कृदन्त की रचना शतृ और शानच् दो प्रत्ययो के योग से होती है। हिन्दी त् प्रत्यय का सम्बन्ध सस्कृत के शतृ प्रत्यय से है। जैसे स० चल्+शतृ=चलन्त (कर्ता, बहु०) > प्रा० चलतो > चलत् (+लिंग-वचन का प्रत्यय)।

### (२) भूतकालिक कृदंत या पूर्ण कृदंत

इस कृदन्त की रचना 'धातु+शून्य+लिंग-वचन प्रत्यय' से होती है। जैसे—चल्+शून्य+आ=चला। इसी तरह पढा, मरे, गई लिखी आदि भी। हिन्दी मे भूतकालिक कृदन्त का प्रयोग चार रूपो मे होता है (क) **सज्ञा—सोये** को मत जगाओ। **विशेषण—सोये** व्यक्ति को मत जगाओ। **क्रियाविशेषण**—राम दौडा आएगा। **क्रिया**—राम अभी नही **सोया**। सस्कृत मे भूतकालिक कृदन्त की रचना क्त तथा क्तवतु प्रत्ययो के योग से होती है। हिन्दी के भूतकालिक कृदन्त के रूपो का विकास सस्कृत के क्त प्रत्यय वाले रूपो से हुआ है। उदाहरणार्थ स० चल्+क्त प्रत्यय=चलित. > चलियो > चल्यो > चल्+लिंग-वचन के प्रत्यय (आ, ई, ए, ई) चला, चली, चले, चली।

**(३) विध्यर्थक कृदत या क्रियार्थक संज्ञा**

इस कृदन्त की रचना 'धातु+न्+लिग-वचन के प्रत्यय' से होती है। आज्ञा के रूप मे इसमे अत मे केवल 'आ' ही आता है (तुम लिखना), किन्तु अन्य रूपो मे आ, ई, ए भी आते है। पत्र लिखना है, चिट्ठी लिखनी है, पत्र लिखने है। वीम्स ने इन न्–वाले रूपो को सस्कृत के अनीय वाले रूपो से जोड़ा है। जैसे—करणीय>करना। किन्तु अर्थ की दृष्टि से ऐसा सम्भव नही लगता। करणीय का अर्थ होगा 'करने योग्य' जबकि करना का अर्थ यह नही है। वस्तुत: इनका विकास सस्कृत के अन-मात रूपो से हुआ है। चलनम्>चलना, पठनम्>पढना। इसका इयोग **क्रिया** (तुम **चलना**) तथा **संज्ञा** ( **टहलना** अच्छा है) रूप मे होता है।

**(४) कर्तृवाचक कृदन्त**

इसकी रचना 'धातु+ने+वाल्+लिग-वचन प्रत्यय' से होती है। इसका प्रयोग सज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूप मे होता है · (क) **संज्ञा —भागनेवालों** को पकडो। (ख) **विशेषण—भागनेवाले** लड़को को पकडो। (ग) **क्रिया**—राम **भागनेवाला** है। इस मे 'ने' तो क्रियार्थक सज्ञा का 'ना' का विकारी (घोड़ा से एक० मे घोड़े की तरह) रूप है, तथा 'वाल्' स० पाल से विकसित है।

## अविकारी कृदंत

**पूर्वकालिक कृदत**

इसकी रचना धातु+'कर' या 'के' या 'शून्य' से होती है। (क) **राम खाकर** आया है। (ख) मोहन काम **करके** आया है। (ग) तुम अच्छी तरह **पढ़कर** के आना। (घ) मै खा आया हूँ। पूर्वकालिक कृदत बनाने के लिए सस्कृत मे 'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। कृ धातु मे क्त्वा प्रत्यय जुडने से रूप बनता है 'कृत्वा' इस कृत्वा से ही हिंदी के कर तथा के प्रत्ययो का विकास हुआ है

(क) स० कृत्वा>प्रा० करित्ता>करिअ>हि० करि>कर।

(ख) स० कृत्वा>प्रा० करित्ता>करिअ>हि० कइ>कै>के।

'करके' इन्ही दोनो का योग है। शून्य का विकास प्रत्यय लोप से हुआ है। पूर्वकालिक कृदत कभी तो एक क्रिया से पूर्वकाल मे हुई

क्रिया को (मैं खाकर आया हूँ) को व्यक्त करता है और कभी क्रिया करने की रीति (वह भागकर आया) को।

(२) अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत

इसकी संरचना धातु में 'ते' जोडकर होती है। इससे अपूर्ण क्रिया का द्योतन होता है : तुम्हें यह पुस्तक **लिखते** बहुत दिन हो गए। राम को यह काम करते अभी कुछ ही दिन तो हुए है। अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत वर्तमानकालिक कृदत का ही विकारी रूप है। इस तरह विकास या व्युत्पत्ति की दृष्टि से उसी से सबद्ध है। अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत की आवृत्ति से मध्यकालिक कृदत बन जाता है। जैसे मैं आज **चलते-चलते** तुम्हारे बारे में सोच रहा था।

(३) पूर्णक्रियाद्योतक कृदत

इसकी रचना धातु मे ए जोडकर होती है। इससे किसी क्रिया के पूर्ण होने का द्योतन होता है उन्हे **मरे** बहुत दिन हो गए। मुझे खाना खाए देर हो गई। यह कृदत, भूतकालिक कृदत का ही विकारी रूप है। अर्थात् भूतकृदत के अतिम आ को ए कर देने से इसकी रचना हो जाती है। विकास की दृष्टि से यह भूतकालिक कृदत से ही सबद्ध है।

(४) तात्कालिक कृदंत

इसकी रचना धातु में 'ते ही' जोडकर होती है। इससे तात्कालिकता का बोध होता है मा के **आते ही** बच्चा प्रसन्न हो गया। पानी **बरसते ही** खेत लहलहा उठे। इसमे 'ते' वर्तमानकालिक कृदत का विकारी रूप (चलना-चलते) है तथा 'ही' स० 'हि' है।

## सहायक क्रिया

मोहन गया।

मोहन गया है।

मोहन गया था।

इन वाक्यो मे पहले मे केवल एक 'गया' क्रिया रूप है, किंतु दूसरे तथा तीसरे मे 'गया' तथा 'है' और 'गया' तथा 'था' दो-दो क्रिया रूप है। जब क्रिया मे एक से अधिक क्रिया रूप हो तो प्राय पहले को 'मुख्य

क्रिया' कहते है तथा दूसरे को 'सहायक क्रिया' कहते है। इन वाक्यो मे 'गया' मुख्य क्रिया है तथा 'है' और 'था' सहायक क्रियाएँ है। हिन्दी मे क्रिया-रचना मे 'हो' सहायक क्रिया के रूपो का प्राय प्रयोग मिलता है। 'हो' हिदी की मुख्य सहायक क्रिया है। इसके तीनो कालो के रूप निम्नांकित है

**वर्तमान**

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| उत्तम पुरुष | हूँ | है |
| मध्यम पुरुष | है | हो |
| अन्य पुरुष | है | है |

'हो' धातु होने के इन रूपो की व्युत्पत्ति के सबध मे मुख्य मत दो है (१) बीम्स, केलाग, धीरेन्द्र वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी स० अस् धातु के वर्तमान काल के रूपो से इनका विकास मानते है। उदाहरण के लिए वर्मा जी 'हूँ' का विकास देते है : स० अस्मि>प्रा० अम्हि>हि० हूँ। यो बीम्स तथा केलाग ने यह भी कहा है कि अस् के सामान्य रूपो मे इसका विकास न होकर भू के रूपो के सादृश्य पर बने रूपो से हुआ है। उदाहरण के लिए केलाग 'है' का विकास देते है : स० अस्ति>प्रा० कल्पित रूप *अहसि (भवति के सादृश्य पर)>अहइ> अहै>है। (२) मेरे विचार मे सस्कृत की भू धातु, के वर्तमानकालिक रूपो से ही इन रूपो का विकास हुआ है स०, पा० भवामि>प्रा० होमि>अप० *होवि>हौं>हूँ। अपनी मान्यता के समर्थन मे मै तीन वाते कहना चाहूँगा (क) ये रूप 'हो' धातु के है और 'हो' का विकास 'भू' से होगा न कि अस् से। (ख) बीम्स और केलाग भी मानते है कि अस् के सामान्य रूपो से ये हूँ आदि रूप विकसित नही हो सकते। (ग) भू के रूपो से इनका ध्वन्यात्मक विकास हो सकता है। ऐसी स्थिति मे मेरे विचार मे 'भू' के वर्तमान काल के सस्कृत रूपो से ही इनका विकास हुआ है। इन रूपो की एक यह विशेपता है कि ये वचन और पुरुष के अनुसार बदलते है, न कि लिग के अनुसार।

**भूतकाल**

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| तीनो पुरुष | था | थे |

स्त्रीलिग मे रूप बनेगे : थी (एक०), थी (बहु०)। अर्थात् ये रूप लिग

और वचन के अनुसार बदलते है। पुरुष के अनुसार नही। 'था' की व्युत्पत्ति बहुत ही विवादास्पद है। इस सबंध मे विभिन्न विद्वानों ने नौ मत व्यक्त किए है। इतने मतातर से ही यह बात स्पष्ट है कि इसकी व्युत्पत्ति बहुत स्पष्ट नही है। इसके सम्बन्ध मे मुख्य मत तीन है। (१) वीम्स प्रा० सन्तो>हन्तो>हतो>था रूप में विकास मानते है। (२) तेसितोरी *भवन्तक >होन्तओ>हता>था रूप मे। (३) केलाग, टर्नर, धीरेन्द्र वर्मा आदि 'स्थित' से इसे जोडते है : स्थित>प्रा० थाइ >था। वस्तुत 'था' की व्युत्पत्ति सदिग्ध है।

भविष्य

| | एक० | बहु० |
|---|---|---|
| उत्तम पुरुष | होऊँगा | होगे |
| मध्यम पुरुष | होगा | होगे |
| अन्य पुरुष | होगा | होगे |

ये रूप भविष्य के रूप मे भी प्रयुक्त होते है, किंतु वस्तुत ये सभावनार्थ के रूप मे जो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनो रूप मे आ सकते है : (क) कल राम गया होगा। (भूत), (ख) इस समय राम सो रहा होगा (वर्तमान), (ग) थोडी ही देर बाद राम जाने की तैयारी कर रहा होगा। (भविष्य) इन रूपो मे तीन अग है (१) होऊ, हू, हो, हो—होना अर्थ के द्योतक (२) ग् —इनके बाद जोडा गया है। (३) आ, ए—लिग-वचन के द्योतक है। इनके स्त्रीलिग मे होगी, होगी आदि रूप बनते है। पहले अग अर्थात् होऊँ, हूं, हो, हो का विकास भू धातु के वर्तमान काल के रूपो से मानते है भवामि>होऊँ। कहना न होगा कि ये रूप हिंदी म सभावनार्थ के रूप मे प्रयुक्त होते है। दूसरे और तीसरे अग अर्थात् 'गा' का सबध गम् धातु के भूतकालिक कृदत स० गत (>प्रा० गदो>गओ>गा) से माना जाता है।

उपर्युक्त तीनो कालो की सहायक क्रियाओ के अतिरिक्त दो अन्य प्रकार की सहायक क्रियाएँ भी प्रयुक्त होती है। इनमे सभाव्य वर्तमान (होऊँ, हो हो) का सबध तो भू धातु के वर्तमान काल के रूपो से है (जैसे भवामि>होऊँ, भवाम>हो) तथा सभाव्य भूत (होता, होते)

वर्तमानकाल के कृदंत का रूप है।

## काल-रचना

हिंदी मे काल अथवा क्रिया की रचना दो प्रकार की है

(१) **मूल काल**—जिसमे एक क्रिया रूप हो। जैसे तुम जाओ वह गया। 'जाओ' का विकास स० के तिङन्ती रूप से हुआ है तथा 'गया' कृदंती रूप (भूतकालिक कृदंत) है। इस प्रकार मूल काल दो प्रकार का होता है तिङन्ती, कृदंती। इन मे कृदंती पर ऊपर विचार हो चुका है। तिङन्त को यहाँ लेना है।

(२) **यौगिक काल** -जिसमे एक से अधिक क्रिया रूप हो। जैसे लडका **गया है** या गाय घास **चर रही है**। ऐसे क्रिया-रूपो की रचना **कृदंत + सहायक क्रिया** (गया है, चलता था, जाना होगा), धातु + कृदंत **+ सहायक क्रिया** (जा रहा है, पढ रहा था) या इन्ही के मिले-जुले रूपो से होती है। यह हिंदी का अपना ढग है, सस्कृत मे प्राय यौगिक काल नही मिलते। इसीलिए इन्हे सीधे सस्कृत से नही जोडा जा सकता। हाँ, इनके कृदत तथा सहायक क्रिया रूप सस्कृत से विकसित है जैसा कि पीछे हम देख चुके है।

मूल काल के तिङन्ती रूप हिंदी मे दो प्रकार के है

**सभावनार्थ (वर्तमान या भविष्य)**

| | एक | बहु० |
|---|---|---|
| उ० पु० | चलूँ | चले |
| म० पु० | चले | चलो |
| अ० पु० | चले | चले |

ग्रियर्सन इन रूपो का विकास संस्कृत के वर्तमान के रूपो से मानते है। जैसे चलन्ति>चलइँ>चले (वे); या चलति>चलइ>चले (वह)। वर्मा आदि ने इसमे कुछ आपत्तियाँ उठाई है। उनका कहना है कि उत्तम पुरुष एक० (स० चलामि>चलूँ) तथा बहु० (चलाम > चले) का विकास इससे सभव नही है। बीम्स ने कहा है एक० से बहु० (चलामि>चले) तथा बहु० से एक० (चलाम >चलूँ) का विकास हुआ है। मेरे विचार मे 'चलामि' से 'चलूँ' का विकास तो सभव है,

हाँ 'चलाम' में 'चले' का विकास संभावित नहीं है। शेष के संबंध में ग्रियर्सन का मत ठीक है। बीम्स द्वारा दिया गये सुझाव की संभावना नहीं है।

(आ) आज्ञा

(अ) (तू) चल, कर

(आ) (तुम) चलो, करो

(इ) (आप) चलिए, कीजिए

(१) ग्रियर्सन ने अ, आ का विकास सं० वर्तमान के रूपों से माना है (क) चलसि चल, (ग) चलथ—चलो। (२) बीम्स इनका विकास सं० के आज्ञा के रूपों से मानते हैं. (क) चल—चल, (ग) चलत- चलो। बीम्स का मत ठीक ज्ञात होता है।

इ के -इए, -जिए का संबंध सं० के आशीर्लिंग में प्रयुक्त-या-(स्यात्) से है। यह 'या' प्राकृत में इय्य, इए, एज्ज रूप में मिलता है। इय्य, इए से हिंदी 'इए' (चलिए, पढ़िए, लिखिए) का संबंध है तथा एज्ज से 'जिए' (कीजिए, दीजिए) का।

आज्ञा के 'चलना' और 'चलिएगा' रूप क्रमश विध्यर्थक कृदंत (दे० ऊपर) और चलिए+गा (सं० गत) हैं।

# अव्यय

'अव्यय' का अर्थ है 'जो व्यय न हो'—अर्थात् जो लिग-वचन आदि के अनुसार 'परिवर्तित' न हो। सस्कृत मे कहा गया है : सदृश त्रिषु लिगेषु सर्वासु च विभक्तिषु, वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्। (अर्थात् जो लिग, विभक्ति, वचन के अनुसार परिवर्तित न हो)। हिंदी मे अधिकाश अव्यय तो परिवर्तित नही होते, किंतु कुछ क्रिया-विशेषण अव्यय ऐसे भी है जो लिग, वचन के अनुसार परिवर्तित होते है : राम दौडता आया, सीता दौडती आई, लडके दौडते आए। ये ऐसे शब्द मूलत क्रिया-विशेषण अव्यय न होकर प्रयोगत. क्रिया-विशेषण अव्यय होते है। अव्यय चार प्रकार के माने गए है क्रिया-विशेषण, समुच्चय-बोधक, सबधबोधक, विस्मयादिबोधक।

### क्रिया-विशेषण

हिंदी मे क्रिया-विशेषण दो प्रकार के है सार्वनामिक, अन्य।

**सार्वनामिक क्रियाविशेषण**—जो सर्वनामो के योग से बने हो। ये निम्नाकित है

| सर्वनाम | | सार्वनामिक तत्त्व | काल -ब | स्थान -हाँ | दिशा -धर | रीति -यो |
|---|---|---|---|---|---|---|
| निश्चयवाचक | | | | | | |
| १-निकटवर्ती | यह | य्, इ, अ | अब | यहाँ | इधर | यो |
| १-दूरवर्ती | वह | व, उ | × | वहाँ | उधर | × |
| प्रश्नवाचक | कौन, क्या | क् | कब | कहाँ | किधर | क्यो |
| सबंधवाचक | जो | ज् | जब | जहाँ | जिधर | ज्यो |
| नित्यसँबंधी | तिस, तिन | त् | तब | तहाँ | तिधर | त्यो |

इनमें 'तिधर' का प्रयोग अब नहीं होता। 'क्यो' रीतिबोधक न रह कर 'किसलिए' या 'काहे' के अर्थ का व्यजक हो गया है।

स्पष्ट ही उपर्युक्त क्रिया-विशेषणों की रचना सार्वनामिक तत्वो में 'ब' 'हाँ' 'धर' 'यो' जोडकर हुई है: अर्थात् अ+ब=अब, य+हाँ=यहाँ, इ+धर=इधर इत्यादि। सार्वनामिक तत्वो की व्युत्पत्ति सर्वनाम के प्रसग मे दी जा चुकी है। यहाँ केवल शेषाश ब, हाँ, धर, यो पर विचार किया जा रहा है।

## कालवाचक

कालवाचक सार्वनामिक क्रिया-विशेषण के कालिक अश 'ब' की व्युत्पत्ति के बारे मे मुख्य मत दो है (१) बीम्स, केलाग इसे स० वेला (=समय) से विकसित मानते है। (२) चटर्जी वैदिक अव्यय 'एव' (=इस प्रकार) से विकसित मानते है। उनका कहना है कि बाद मे यह अव्यय ही—अर्थक प्रा० बलात्मक अव्यय एव्व (कल्पित रूप) हो गया, और फिर इसमे समय का भाव विकसित हो गया। इसी के सप्तमी रूप से वे विकसित हुआ एव्वहि (कल्पित) >वे। अपभ्रंश काल मे इसी मे सर्वनाम जुडने से वे रूप (जव्वे, तव्वे) बने जिनसे जब, तब आदि का विकास हुआ। इन मतो मे पहला ठीक लगता है। उसके पक्ष मे चार बातें कही जा सकती है: (क) व>ब के कारण 'वेला' से 'वे' और ब का विकास हो सकता है। (ख) अर्थ की दृष्टि से दोनो (वेला ब) मे साम्य है। (ग) प्रयोग की दृष्टि से भी इसकी सभावना है। आजकल के प्रयोग 'इस समय' 'उस समय' 'जिस समय' 'किस समय' या भोजपुरी 'ये बेला' (=इस समय), 'जे बेला' (=जिस समय), 'के बेला' (=किस समय) आदि भी इसी प्रकार के है। (घ) आज के रूपो के पूर्वरूप अपभ्रंश मे जव्वे, तव्वे है, उनका 'वे' अश भी वेला से विकसित हो सकता है। इस प्रकार अर्थ, प्रयोग तथा ध्वन्यात्मक विकास तीनो दृष्टियो से यह ठीक है।

## स्थानवाचक

इसके स्थानवाचक अश 'हाँ' की व्युत्पत्ति के विषय मे मुख्य मत

तीन है : (१) बीम्स तथा केलाग स० स्थाने<हाँ (तत्स्थाने<तहाँ, यत्स्थाने <जहाँ) मानते है। (२) चटर्जी त्र<हाँ (कुत्र, यत्र, तत्र) मानते है। (३) प्रा० तथा अप० मे मुझे इनके पुराने रूप कहि, जहि तहि मिले है जिनके विकास पुरानी हिंदी मे कहँ, जहँ, तहँ मिलते है। प्रा० अप० रूप मे 'इ' है जो न तो स्थाने से निकल सकती है और न त्र से। मुझे लगता है कि इनका विकास स० सर्वनामो के सप्तमी एकवचन के रूप कस्मिन्, यस्मिन् तस्मिन् आदि से हुआ है। कहाँ जहाँ तहाँ आदि का 'आ' खडी बोली के आकारांत रूपों का प्रभाव है। मेरे द्वारा प्रस्तुत व्युत्पत्ति के पक्ष मे कई बाते कही जा सकती है (क) इन रूपो से ध्वन्यात्मक विकास बहुत स्पष्ट है . स० कस्मिन्>प्रा० अप० कहि> प्राचीन हिंदी कहँ>आधुनिक हिंदी कहाँ। इसी प्रकार यस्मिन् जहि जहँ जहाँ, तस्मिन्- तहि तहँ तहाँ आदि (ख) इस विकास-परम्परा मे 'स्थाने तथा त्र' को स्थान देना कठिन है। (ग) प्रा० अप० के रूपो मे प्राप्त 'इ' बहुत निर्णायक तत्त्व है जिसकी सम्भावना केवल -स्मिन् वाले रूपो से ही है। (घ) अर्थ की दृष्टि से स्थाने तथा त्र निश्चय ही स्मिन् की तुलना मे निकट के है किन्तु ये शब्द (तस्मिन् आदि) भी बहुत दूर नहीं है। इस प्रकार ध्वन्यात्मक विकास प्रा० अप० रूपो को समाहित करने, प्राचीन तथा आधुनिक प्रयोग तथा अर्थ सभी दृष्टियो से -स्मिन्>हि>हँ>हाँ रूप मे इसके विकास की सम्भावना अधिक है।

**दिशावाचक**

धर की कई व्युत्पत्तियाँ दी गई है (१) बीम्स इसे स० मुख+र (लघुत्वबोधक प्रत्यय) अर्थात् "मुखर>म्हर (भोज० एम्हर, ओम्हर) >न्हर>न्धर>धर रूप मे विकसित मानते है। वस्तुत म>न का विकास प्राय. होता नहीं, अत इसे नही माना जा सकता। (२) हार्नले स० इदृश>प्रा० एद्दिह>इदह+र (प्राचीन सप्तमी प्रत्यय)>इधर अर्थात् दृश>दह+र>धर रूप मे विकास देते है। (३) मुझे 'धर' के विकास की सम्भावना त्र>(कुत्र, यत्र, सर्वत्र आदि मे स्थान-बोधक प्रत्यय) तर>दर>धर रूप मे लगती है। यो इसका अर्थ कुछ

परिवर्तित हो गया है अर्थात स्थान से दिशा। वस्तुतः सभी दृष्टियो से इनमे मनिश्चित किसी भी मत को स्वीकार नही किया जा सकता।

रीतिवाचक

(१) यों का संबंध बीम्स सं० के 'वतुप' प्रत्यय (इदम्+वतुप= इयत्) प्रत्यय से मानते है, किन्तु यह प्रत्यय तो परिमाण का अर्थ देता है न कि रीति का। (२) चटर्जी बोधक प्रत्यय 'एव' (=इस प्रकार) के सादृश्य पर वन कल्पित संस्कृत रूप येव, तेव आदि से यो, त्यो का विकास मानते है। वस्तुत इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है जैसा कि वर्माजी ने माना है।

अन्य क्रिया-विशेषण

(१) सं० अद्य>अज्ज>आज, (२) सं० कल्य>कल्ल>कल, सं० परश्व.>परसो सं० बहिर>बाहर, सं० अभ्यतर>भीतर> भीतर, सं० उपरि<उप्परि>ऊपर, सं० नीचे.>नीचे, सं० आम< हाँ सं० नास्ति>णत्थि>नही, आदि

## समुच्चयबोधक

सं० अपर>अवर>और, कि (फा०), तथा (सं०), अथवा (सं०) व (फा०) आदि।

## सम्बन्धबोधक

परसर्गों पर संज्ञा अध्याय मे विचार हो चुका है।

## विस्मयादिबोधक

हा (सं० हा), हाय (सं० हा), वाह (फा०), ओहो (सं० अहो), ऐं (सं० अइ) हे (सं० अइ), आदि।

# हिंदी का शब्द-भंडार

किसी भाषा मे जिन शब्दो का प्रयोग होता है, उनके समूह को उस भाषा का **शब्द-भंडार** या **शब्द-समूह** कहते है । हिंदी भाषा के शब्द-भडार मे चार प्रकार के शब्द है :—

(१) **तत्सम :**

'तत्सम' मे 'तत्' का अर्थ है 'वह' अर्थात् 'सस्कृत' और 'सम' का अर्थ है 'समान' । अर्थात् 'तत्सम' उन शब्दो को कहते है जो सस्कृत के समान हो अथवा सस्कृत-जैसे हो । उदाहरण के लिए हिन्दी मे कृष्ण, गृह, कर्म, हस्त, धर्म आदि शब्द तत्सम है । वस्तुत ये वे शब्द है जो सस्कृत भाषा से बिना किसी ध्वनि-परिवर्तन के आ गए है । हिन्दी मे स्रोत की दृष्टि से 'तत्सम' शब्द चार प्रकार के हैं (क) प्राकृतो (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) से होते आने वाले शब्द । जैसे अचल, अघ, अचला, काल, कुसुम, जन्तु, दण्ड, दम आदि । (ख) सस्कृत से सीधे हिन्दी मे आदि, भक्ति, रीति तथा आधुनिक कालो मे लिए गए शब्द जैसे कर्म, विद्या, ज्ञान, क्षेत्र, कृष्ण, पुस्तक, मार्ग, मत्स्य, मद्य, मेघ, पुष्प, मृग, कुशल आदि । ऐसे शब्दो की सख्या प्रथम वर्ग से भी बडी है । (ग) सस्कृत के व्याकरणिक नियमो के आधार पर हिन्दी-काल मे निर्मित तत्सम शब्द । इस प्रकार के अधिकाश शब्द आधुनिक काल मे शब्दो की कमी की पूर्ति, के लिए बनाए गए है, और बनाए जा रहे है । जैसे जलवायु ('आबहवा'), वायुयान ('हवाई जहाज़' या 'ऐरोप्लेन'), सम्पादकीय (editorial), प्रवक्ता (lecturer), रेखाचित्र (sketch), प्रभाग (section), नगरपालिका (Municipality), समाचार-पत्र (Newspaper), पत्राचार (correspondence), आदि । ऐसे शब्द इधर पारिभाषिक शब्दो

के लिए बहुत बड़ी सख्या में बनाए गए है। (घ) अन्य भाषाओ से आए तत्सम शब्द । इस वर्ग के शब्दो की सख्या अत्यल्प है। कुछ थोडे बगाली तथा मराठी के माध्यम से आए हैं। इनमे कुछ शब्द तो ऐसे है जो इन भाषाओ मे सस्कृत के आधार पर बने है। कुछ उदाहरण है **बगाली :** वक्तृता, उपन्यास, गल्प, कविराज, सन्देश, अभिभावक, निर्भर, तत्वावधान, अभ्यर्थना, आपत्ति, सभ्रान्त, स्वप्निल, उर्मिल, धन्यवाद, **मराठी** वाड्मय, प्रगति।

**(२) तद्भव शब्द**

'तद्भव' मे भी 'तत्' का अर्थ है 'वह' अर्थात् सस्कृत और 'भव' का अर्थ है 'उत्पन्न' । अर्थात् तद्भव वे शब्द है जो सस्कृत शब्दो मे उत्पन्न हुए हैं । दूसरे शब्दो मे ये शब्द सस्कृत या तत्सम शब्दो के ध्वनि की दृष्टि से विकसित परिवर्तित अथवा विकृत रूप है। उदाहरण के लिए कान्ह (कृष्ण), घर (गृह), काम (कर्म), हाथ (हस्त), घडा (घट), घोडा (घोटक) आदि। ऐसे ही हाथी, आठ, साँप, बहरा, ईख, सेम, ऊँट, मान, हाथ, आज, जीभ, बहू, दूध, आदि।

**(३) विदेशी, आगत अथवा गृहीत शब्द**

'विदेशी शब्द' का मूल अर्थ है 'अन्य देश की भाषा से आए हुए शब्द'। यो किसी भी अन्य भाषा से आये हुए शब्द उस भाषा के लिए प्राय विदेशी ही होते है। किन्तु 'विदेशी' नाम मे 'दूसरे देश' का अर्थ है, इसलिए 'विदेशी शब्द' को 'आगत शब्द' या 'गृहीत शब्द' (loan word, अर्थात वे शब्द जो किसी अन्य भाषा मे ग्रहण किये गए हो) कहना कदाचित् अधिक उपयुक्त है। ये शब्द दो प्रकार के है : (क) दूसरे देश की भाषाओ मे आये शब्द, जैसे फारसी अग्रेजी आदि से। (ख) अपने देश की भाषाओ मे आए शब्द, जैसे बगाली, पजाबी, द्रविड आदि से। हिंदी मे किताब (अरबी), कैंची (तुर्की), नमाज (फारसी), कोट (अग्रेजी), अनन्नास (पुर्तगाली), रसगुल्ला (बगाली) दोसा (द्रविड) आदि ऐसे ही शब्द है। हिंदी मे समय-समय पर पश्तो, तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगाली, अग्रेजी, फ्रासीसी, डच तथा कई आधु-

निक भारतीय भाषाओ से शब्द आते रहे है। यहाँ इनकी संक्षिप्त चर्चा क्रमश दी जा रही है :

(क) पश्तो

ये शब्द पश्तो भाषी अफगानो के संपर्क से आये है। हिंदी मे आये इन पश्तो शब्दो की ओर प्राय लोगो का ध्यान कम गया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'पठान' और 'रोहिला' दो शब्द दिए है। मैने इस दिशा मे थोडा काम किया है और मेरा अनुमान है कि हिंदी मे पश्तो शब्दो की संख्या १०० से ऊपर है। कुछ उदाहरण है : पठान, रहैना, अटेरन मटरगश्ती गुण्डा, तडाक, खर्राटा, तहस-नहस, टसमस, खचडा, अखरोट, चखचख पटाखा, डगर (डॉगर भी), डेरा, गटागट, गुलगपाडा, कलूटा, गडबड, गँडेरी, लुच्चा, हडबडी, अटकल बाट, तथा भडास आदि।

(ख) तुर्की

तुर्को से संपर्क तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना से तुर्को के यहाँ बस जाने से तुर्की शब्द हिंदी मे आए। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने तुर्की शब्दो की अपनी सूची मे लगभग ३० शब्द दिए है। डा० चटर्जी के अनुसार 'हिदुस्तानी' मे १०० से कम तुर्की शब्द है। फैलन के कोश मे इनकी संख्या लगभग ७० तथा प्लाट्स मे लगभग ८० है। मेरे विचार से हिंदी भाषा मे तुर्की शब्दो की संख्या १२५ से कम नही है। कुछ प्रमुख शब्द उर्दू, बहादुर, उजबक, तुर्क, कलगी, चाकू, कैंची, काबू, कुली, गलीचा, चकमक, चिक, तमगा, तमचा, तोप, तोपची, दारोगा, बावर्ची, बेगम, चम्मच, मुचलका, लाश, सौगात, बीबी, चेचक, सुराग, बारूद नागा, कुर्ता, कूच, कुमक, कुर्क, नानखताई, खच्चर, सराय, गनीमत, चोगा आदि है।

(ग) अरबी-फारसी

अरबी शब्द हिन्दी मे सीधे अरबी से न आकर प्राय फारसी भाषा के माध्यम से आए है। इसीलिए इन दोनो को साथ-साथ लेना उचित है। फारसी मुगल जमाने मे दरबारी भाषा थी इसी कारण उसके प्रत्यक्ष और दीर्घकालीन संपर्क ने हिन्दी को काफी शब्द दिए। मेरी अपनी गणना के अनुसार हिन्दी मे अरबी-फारसी शब्द लगभग छ

हजार है। कुछ उदाहरण है **धर्म-सम्बन्धी** - रोजा, मजहब, दीन, खुदा, हज, पैगम्बर आदि। **शासन-सम्बधी** सरकार, तहसीलदार, चपरासी, वकील, माल, दीवान, मुशी, खजाची, हाकिम, इजलास, सिपाही आदि। **सेना-सम्बधी** - फौज, हवलदार, हमला, सगीन आदि। **पोशाक-सम्बधी** पाजामा, जुराब, दस्ताना, साफा, सलवार, सदरी आदि। **स्थान-सम्बधी** महल्ला, देहात, शहर, तहसील, जिला, कस्बा आदि। **पत्र-व्यवहार सम्बधी** लिफाफा, पता आदि। **अन्न-फल-मेवा-सब्जी-सम्बधी** बादाम, सेब मेवा, खुबानी, अनार, अगूर, नाशपाती, मुनक्का, किशमिश, शहतूत, पिस्ता, शरीफा, सब्जी, पुदीना, शलजम, चुकन्दर आदि। **मिठाई-नमकीन** बरफी, हलवा, जलेबी शकरपारा, नमकपारा, कुल्फी, बालूशाही, समोसा आदि। **शृगार-सम्बधी** इत्र, सुर्मा, साबुन, हजामत, आइना, शीशा आदि। **व्यवसायियो के नाम**— बजाज, दर्जी, सर्राफ, सईस, बेलदार, दलाल, हलवाई, अत्तार, जिल्दसाज आदि। **मकान सम्बधी**—मकान, बुनियाद, दीवार, दरवाजा, बरामदा, मेहराब आदि। **बीमारी सम्बधी**—हकीम, नब्ज, बदहज्मी, हैजा, लकवा, जुकाम, नजला, जुलाब, दवा, मरीज आदि।

**(ख) पुर्तगाली**

हिन्दी मे पुर्तगाली शब्दो की सख्या १०० से कम है। कुछ उदाहरण है अनन्नास, अलमारी, आलपिन, आया, इस्त्री, इस्पात, कप्तान, कमरा, कर्नल, काज, काफी, काजू, गमला, गोभी, गोदाम, चाबी, चाय, तौलिया, पपीता, नीलाम, पादरी, फीता, बाल्टी, बोतल, मिस्त्री, सतरा आदि।

**(ड) अग्रेजी**

अग्रेजी के बहुप्रचलित शब्द हिन्दी मे लगभग तीन हजार है। यदि तकनीकी शब्दो को इसमे मिला ले तो यह सख्या दूनी से भी बडी हो जाएगी। कुछ उदाहरण है **धातुओ के नाम**—अल्म्युनियम, रोल्डगोल्ड, टिन, निकल, प्लैटिनम इत्यादि। **यत्रो के नाम**—इजन, मोटर, मशीन, मीटर आदि। **सवारियो के नाम**—बस, लारी, टैक्सी, स्कूटर, साइकल, ट्रेन, कार, ट्रक आदि। **चिकित्सा सम्बधी शब्द**—इजेक्शन, आप-

रेशन, अस्पताल, डाक्टर, कम्पाउण्डर, थर्मामीटर, ड्रेसिंग आदि। **शिक्षा-सम्बधी-शब्द**—नर्सरी स्कूल, कालिज यूनिवर्सिटी, इन्स्टीच्यूट, मास्टर, लेक्चर, रिसर्च स्कालर, रीडर, प्रोफेसर, प्रिंसिपल, चांसलर, फीस आदि। **पोशाक-सम्बधी**—पैंट, कोट, बुशशर्ट, सूट, टाई, ओवरकोट, टीशर्ट, लट्ठा, पापलिन, नाइलन, टेरिलीन, टेरिकॉट, टेरिसिल्क, कालर, पाकिट, ब्लाउज आदि। **शासन तथा न्याय**—कोर्ट, हाईकोर्ट, सुप्रीमकोर्ट, इसपेक्टर, डिप्टी कलक्टर, मिनिस्टर, अफसर, वारट, समन, रपट, अपील, डिग्री आदि। **प्रेस सम्बन्धी**—प्रेस, टाइप, कपोजिटर, प्रूफरीडर, डिमाई। **खेल-सबधी**—टीम, हाकी, क्रिकेट, फुटबाल, कैरमबोर्ड, ब्रिज, वॉलीबॉल, वास्केटबॉल, मैच, बैडमिटन, टैनिस, टेबलटेनिस, आदि। **महीनों के नाम** - जनवरी, फरवरी आदि। **सेना तथा युद्ध-सबधी**—प्लाटून, कम्पनी, कर्नल, मेजर, लेफ्टीनेंट, मशीनगन, टैंक, वम आदि। **पोस्ट-आफिस-सबधी**—पोस्टकार्ड, मनीआर्डर, रजिस्ट्री, बुकपोस्ट, आदि। **खानपान सबधी**—बिस्कुट, पेस्ट्री, टोस्ट, आइसक्रीम, लेमन, सोडा, चाकलेट, डबलरोटी, बियर, ब्राडी, सूप आदि। **कला-सबधी**—आर्ट, ब्रश, वाटर कलर, आयल पेंट, स्केच, सीनरी, फोटो, फिल्म आदि। **शृ गार-सबधी**—क्रीम, वैसलीन, स्नो, पाउडर, नेलपालिश, लिपस्टिक, आदि। **भवन-विषयक**—गैलरी, हाल, गैराज, क्वार्टर, फ्लैट आदि। **विशेषण** सीनियर, जूनियर, फाइन, सुपर-फाइन, प्योर, फैशनेबुल आदि। **सख्यावोधक**—फर्स्ट, सेकेंड, थर्ड, सेंचुरी (क्रिकेट), दर्जन, (दर्जन, गुरुस, क्रेट)। **क्रिया**—फिल्माना, पास करना, फेल करना, किक मारना, हिट मारना, शेव करना, कटिंग करना आदि।

अन्य भाषाओं के शब्द हिन्दी मे वहुत-कम है। कुछ उदाहरण है—**फ्रांसीसी** - कार्तूस, कूपन, अंग्रेज, लाम, फ्रास, फ्रासीसी। **डच** - तुरुप (ताश मे), वम (गाडी का)। **स्पेनी** - अल्पाका। **रूसी**—रूबल, जार, वोदका, सोवियत, स्पुतनिक। **चीनी**—चाय, लीची, चीकू। **जापानी**—रिक्शा। **द्रविड** - डोसा, इडली, पिल्ला। **मराठी**—चालू, बाडा, लागू। **गुजराती** - गरबा, हडताल। **बगाली**—उपन्यास, रसगुल्ला, गल्प, सदेश, चमचम, अभिभावक, आपत्ति, तत्वावधान, सभ्रात। **पजाबी** –

सिक्ख, छोले, खालसा, भाँगडा।

(४) **देशज**

देशज का अर्थ है (देश+ज) जो देश मे ही जन्मे हों। वस्तुत जो शब्द न तो तत्सम हो, न तद्भव और न विदेशी अथवा दूसरी भाषाओ से आए, उन्हे देशज की कोटि मे रख दिया जाता है। देशज कहलाने वाले शब्दो को दो वर्गो मे रखा जा सकता है (क) **अज्ञातव्युत्पत्तिक**—जिनकी व्युत्पत्ति का पता न हो। जैसे टट्टू, तेंदुआ, कबड्डी, गडबड, घपला, चपत, चूहा, झझट, झगडा, टीस, टेठ, थोथा, धब्बा, पेड, मुर्गा आदि। (ख) **अनुकरणात्मक**—जो तत्सम, तद्भव, विदेशी नही है, तथा हिंदी काल मे अनुकरण के आधार पर बनाए गए है। इस वर्ग के अधिकाश शब्द ध्वन्यात्मक होते है। जैसे खडखड, भडभड, खटखट, घमघम, हुड-हुड, घडघड, चटचट, फटफटिया, टर्राना आदि।

**अर्धतत्सम :**

तत्सम वर्ग को प्राय विद्वानो ने दो उपवर्गो मे बाटा है। एक तो उपवर्ग उन शब्दो का है जो तत्सम (या पूर्ण तत्सम) है, और जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। दूसरे उपसर्ग को अर्धतत्सम कहा गया है। इसके अतर्गत वे शब्द आते है जो पूरी तरह तत्सम नही है। उदाहरण के लिए 'कृष्ण' तत्सम है तो 'किशन' अर्धतत्सम। इसी प्रकार चन्दर, करम, कारज अर्धतत्सम है, और इनके तत्सम रूप चन्द्र, कर्म, कार्य है। अर्धतत्सम को तत्सम और तद्भव के सदर्भ मे समझना सरल होगा। जैसा कि कहा जा चुका है तत्सम तो सस्कृत के शब्द है। तद्भव वे है जो पालि, प्राकृत, अपभ्र श मे परिवर्तित विकसित या विकृत होते हिन्दी मे आए है। अर्धतत्सम वे तत्सम शब्द है जो पालि, प्राकृत, अपभ्र श होते नही आए है, बल्कि जो हिंदी काल मे सस्कृत से मूलत तत्सम रूप मे लिए गए है और जिनमे हिंदी मे ही कुछ परिवर्तन हो गए है। कुछ उदाहरण है

| तत्सम | तद्भव | अर्धतत्सम |
|---|---|---|
| चन्द्र | चाँद | चन्दर |

| | | |
|---|---|---|
| कर्म | काम | करम |
| कृष्ण | कान्ह | किशन, किशुन |
| कार्य | काज | कारज |
| अक्षर | आखर | अच्छर |

स्पष्ट ही अर्धतत्सम तद्भव की तुलना मे तत्सम के प्राय निकट है। वस्तुत: अर्धतत्सम नाम बहुत उपयुक्त नही माना जा सकता, क्योकि तत्समता को आधे, तिहाई, चौथाई रूप मे नापा नही जा सकता। इसीलिए मै इन्हे भी तद्भव के अतर्गत रखने के पक्ष मे हूँ। मेरे विचार मे तद्भव के दो भेद होने चाहिए। **पूर्ववर्ती तद्भव** (जिन्हे तद्भव कहा जाता है) तथा **परवर्ती तद्भव** (इसके अतर्गत तथाकथित अर्ध-तत्सम शब्द रखे जाने जाने चाहिए)।

**सकर**

हिन्दी मे ऐसे भी बहुत से शब्द है जो उपर्युक्त वर्गो मे किन्ही भी दो या अधिक के योग से बने है। इन्हे **सकर** या **द्विज** शब्द कहा जा सकता है रेलगाडी (अ+हि०), मालगाडी (अर+हि०), डाकखाना (हि०+फारसी), रेलयात्रा (अ०+स०), फूलदान, (हि०+फा०), राजमहल (हि०+अर०), दलबदी (स०+फा०), पावरोटी (पुर्त०+हि०), अग्रेजियत (फा०+अर०)।

**हिन्दी शब्द-भडार पर ऐतिहासिक दृष्टि**

आदिकालीन हिन्दी-साहित्य का शब्द-भडार बहुत कुछ अपभ्रश जैसा है। थोडा-सा अन्तर केवल यह है कि भक्ति-आदोलन के प्रभाव से तत्सम और विदेशो के सपर्क से विदेशी शब्दो का प्रतिशत कुछ बढ गया है। अत शेष के प्रतिशत में कुछ कमी हुई है। उस काल मे सबसे अधिक शब्द तद्भव थे, इसके बाद तत्सम, फिर विदेशी और सबसे कम देशज। विदेशी शब्दो मे पश्तो, तुर्की, तथा फारसी (अरबी भी) शब्द है।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे शब्द-भडार के क्षेत्र मे उल्लेख्य परिवर्तन निम्नाकित हुए। भक्ति के प्रचार—विशेषत सगुण भक्ति—के

कारण लोगो का ध्यान सस्कृत के धार्मिक साहित्य की ओर गया, अत तत्सम शब्दों के प्रयोग मे (मुख्यत साहित्य मे), वृद्धि हुई, यद्यपि इनमे से बहुत मे परवर्ती तद्भव (अर्धतत्सम) रूप मे आए। मुगल शासन, फारसी शिक्षा की व्यवस्था तथा दरबार की भाषा फारसी होने के कारण फारसी (अरबी भी) तथा तुर्की शब्दो की सख्या मे काफी वृद्धि हुई। परवर्ती काल मे यूरोपीय लोगों से सम्पर्क के कारण कुछ पुर्तगाली, कुछ अग्रेजी तथा कुछ अन्य यूरोपीय भाषाओ के शब्द आए।

शब्द-भडार की दृष्टि से हिन्दी के आधुनिक काल को कई भागो मे बाँटा जा सकता है। १९वीं सदी का शब्द-भडार परवर्ती मध्ययुग से केवल दो बातो मे भिन्न है। एक तो यह कि इस काल मे अँग्रेजी के काफी शब्द हिन्दी मे आ गए और दूसरे यह कि उत्तरार्ध मे सास्कृतिक आदोलनों के कारण तत्सम शब्दो की प्रवृत्ति कुछ बढने लगी। हरिऔध के प्रियप्रवास एव निराला के तुलसीदास आदि मे इसका ऊर्ध्व बिन्दु मिलता है। छायावाद की इस तत्सम-प्रवृत्ति के बाद प्रगतिवाद ने हमारे शब्द-भडार को तत्सम से बोलचाल की ओर मोड दिया। इधर स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी सभी क्षेत्रो मे प्रयुक्त होने के लिए सघर्ष कर रही है, अत हमे कई हजार पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता हुई है। इनके लिए हम लोग कुछ शब्द तो अतर्राष्ट्रीय शब्दावली से ले रहे है, और कुछ भारत की अन्य भाषाओ एव प्राचीन साहित्य से। शेष शब्द सस्कृत धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि के आधार पर बनाए जा रहे है। आज का साहित्य शब्द-भडार की दृष्टि से दो प्रकार का है। उपन्यास, कहानी, नाटक, एव कविता की भाषा तो प्रायः बोलचाल से काफी निकट है, जिसमे तद्भव एव विदेशी शब्द भी काफी है, किन्तु आलोचना, शोध-प्रबध एव निबध आदि की भाषा अपेक्षाकृत तत्सम प्रयोगो की ओर अधिक झुकी हुई है। किन्तु ऐसा लगता है कि भविष्य मे तत्सम शब्दो का प्रयोग कुछ घटता जाएगा तथा तद्भव और विदेशी शब्दो का बढता जाएगा।

# देवनागरी लिपि और अंक

भारत मे लिपि का प्रचार कब हुआ और उसका मूल स्रोत कहाँ था, इसे लेकर विद्वानो मे मतभेद है। अधिकाश यूरोपीय विद्वान यह मानते रहे है कि लिपि का प्रयोग और विकास भारत की अपनी चीज नही है, साथ ही यहाँ लिपि का प्रयोग काफी बाद मे हुआ है। किंतु वास्तविकता इसके विपरीत है। हमारे यहाँ पाणिणि की अष्टाध्यायी मे लिपि, लिपि-कर, आदि शब्द है, जिससे यह स्पष्ट पता चल जाता है कि उनके समय (५वी सदी ई० पू०) तक लिखने का प्रचार अवश्य हो चुका था। इसके अतिरिक्त भाषा के व्याकरणिक विश्लेषण की जो हमारी समृद्ध परपरा मिलती है, वह भी लेखन के बिना सभव नही। यो तो वैदिक साहित्य (मुख्यत अथर्ववेद मे) भी लेखन के होने के आभास यत्र-तत्र मिलते हैं। ऐसी स्थिति मे यह मानना पडेगा कि भारत मे लेखन का ज्ञान और प्रयोग बहुत बाद का नही है, जैसा कि विदेशी विद्वान मानते रहे है।

भारत मे प्राचीन लिपियाँ दो मिलती है ब्राह्मी, खरोष्ठी। इनमे खरोष्ठी तो विदेशी लिपि थी जिसका प्रचार पश्चिमोत्तर प्रदेश मे था और जो उर्दू लिपि की तरह दाये से बाये को लिखी जाती थी। इसका विकास सामी आरमेइक लिपि से हुआ था। यह लिपि बहुत वैज्ञानिक और पूर्ण लिपि न होकर मात्र कामचलाऊ लिपि थी। ब्राह्मी लिपि अपनी राष्ट्रीय लिपियो तथा कुछ विदेशी लिपियो की जननी है।

## ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति और उसका विकास

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति विवादास्पद है। (१) बूलर तथा वेबर आदि इसे विदेशी लिपि से निकली मानते है। उदाहरण के लिए बूलर ने यह दिखाने का यत्न किया है कि ब्राह्मी के २२ अक्षर उत्तरी सेमेटिक

लिपियो से लिए गए तथा शेष उन्ही के आधार पर बना लिए गए। (२) एडवर्ड थामस ने द्रविडो को इस लिपि का बनानेवाला कहा है। (३) शाम शास्त्री पूजा मे प्रयुक्त साकेतिक चिह्नो से इसका विकास मानते थे। (४) कनिघम आदि के अनुसार आर्यो ने किसी प्राचीन चित्रलिपि के आधार पर इस लिपि को बनाया था। (५) मेरा अनुमान है, हडप्पा-मोहनजोदडो मे प्राप्त लिपि मे इसका विकास हुआ है। १९५५ मे मैने दोनो की आशिक तुलना की थी और अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान' (दे० 'लिपि' शीर्षक अध्याय मे) मे सचित्र प्रकाशित भी किया था। ब्राह्मी की उत्पत्ति के बारे मे यहाँ पाँच मत दिए गए है। इस सबंध मे तीन-चार मत और भी है, किंतु वास्तविकता यह है कि समवेततः किसी के भी पक्ष मे इतने प्रमाण नही है कि सर्वसम्मति से उसे स्वीकारा जा सके। ऐसी स्थिति मे ब्राह्मी की उत्पत्ति का प्रश्न अभी विवादास्पद ही माना जाएगा। भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी का प्रयोग ५वी सदी ई० पू० से लेकर लगभग ३५० ई० तक होता रहा। इसके बाद इसकी दो शैलियो का विकास हुआ: (१) **उत्तरी शैली**, (२) **दक्षिणी शैली**। उत्तरी शैली से चौथी सदी मे गुप्त लिपि का विकास हुआ, जो ५वी सदी तक प्रयुक्त होती रही। गुप्त लिपि से छठी सदी मे कुटिल लिपि विकसित हुई जो ८वी सदी तक प्रयुक्त होती रही। इस कुटिल लिपि से ही ९वी सदी के लगभग नागरी के प्राचीन रूप का विकास हुआ, जिसे प्राचीन नागरी कहते है। प्राचीन नागरी का क्षेत्र भारत है, किंतु दक्षिण भारत के कुछ भागो मे भी यह मिली है। दक्षिणी भारत मे इनका नाम 'नागरी' न होकर 'नदिनागरी' है। प्राचीन नागरी से ही आधुनिक नागरी, गुजराती, महाजनी, राजस्थानी, कैथी, मैथिली, असमिया, बँगला आदि लिपियाँ विकसित हुई है। कुछ लोग कुटिल से ही प्राचीन नागरी तथा शारदा के अतिरिक्त एक और प्राचीन लिपि विकसित मानते है, जिससे आगे चल-कर असमिया, बँगला, मनीपुरी आदि पूर्वी अचल की लिपियाँ विकसित मानी जाती है। प्राचीन नागरी से १५-१६वी सदी मे आधुनिक नागरी विकसित हुई।

## नागरी लिपि

**नाम**—यह नाम कैसे पडा, इस बात को लेकर विवाद है। कुछ मत ये है (१) गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा विशेष रूप से प्रयुक्त होने के कारण यह 'नागरी' कहलाई। (२) प्रमुख रूप से नगरो मे प्रचलित होने के कारण इसका नाम नागरी' पडा। (३) कुछ लोगो के अनुसार ललितविस्तर मे उल्लिखित 'नाग लिपि' ही 'नागरी' है, अर्थात् 'नाग' से 'नागर' शब्द का सबंध है। (४) तान्त्रिक चिह्न 'देवनागर' से साम्य के कारण इसे 'देवनागरी' और फिर 'नागरी' कहा गया। (५) 'देवनगर' अर्थात् 'काशी' मे प्रचार के कारण यह 'देवनागरी' कहलाई। (६) एक अन्य मत के अनुसार मध्ययुग मे स्थापत्य की एक शैली 'नागर' थी, जिसमे चतुर्भुजी आकृतियाँ होती थी। दो अन्य शैलियाँ 'द्रविड' (अष्ट-भुजी या सप्तभुजी) तथा 'बेसर' (वृत्ताकार) थी। नागरी लिपि मे चतुर्भुज अक्षरो (प, भ, भ, ग) के कारण इसे नागरी कहा गया। उपर्युक्त मतो मे कोई भी बहुत साधार नही है, अत. 'नागरी' नाम की व्युत्पत्ति का प्रश्न अभी तक अनिर्णीत है।

**नागरी का विकास :**

नवी सदी से अब तक के नागरी लिपि के विकास पर अभी तक कोई भी विस्तृत कार्य प्रकाश मे नही आया। इन पक्तियो के लेखक ने संक्षेप मे 'हिन्दी भाषा' मे विचार किया है। यहा उसी आधार पर ब्राह्मी से नागरी का विकास अत्यत संक्षेप मे दिया जा रहा है। विकास का चार्ट 'हिन्दी भाषा' से देखा जा सकता है, नागरी लिपि के इस लगभग एक हजार वर्षो के जीवन-काल मे यो तो प्राय: सभी अक्षरो के स्वरूप मे न्यूनाधिक रूप मे परिवर्तन हुए है, किन्तु इन परिवर्तनो के अतिरिक्त भी कुछ उल्लेख्य बाते नागरी लिपि से आई है, जिनकी ओर यहाँ सकेत किया जा सकता है (क) सबसे महत्त्वपूर्ण बात है फारसी लिपि का प्रभाव। नागरी के नुक्ते या बिन्दु का प्रयोग फारसी लिपि का ही प्रभाव है। फारसी लिपि मूलत. बिन्दु-प्रधान लिपि कही जा सकती है, क्योकि इसके अनेक वर्ण-चिह्न (जैसे बे-पे-ते-से, रे-जे-डे, दाल-जाल, तोय-जोय,

स्वाद-ज्वाद, ऐन-गैन, सीन-शीन) बिंदु के कारण ही उसमे अलग-अलग है। नागरी लिपि मे ऐसा कोई अतर प्राय नही रहा है। हाँ, फारसी से प्रभाव ग्रहण करके कुछ परपरागत तथा नवागत ध्वनियो के लिए नागरी मे भी नुक्ते का प्रयोग होने लगा है · ड-ड़, ढ-ढ़, क-क़, ख-ख़, ग-ग़, ज-ज़, फ-फ़। यही नही, मध्ययुग मे कुछ लोग य-प दोनो को य-जैसा तथा व-ब को व लिखने लगे थे। इस भ्रम से वचने के लिए कैथी लिपि मे तो नियमित रूप से तथा कभी-कभी नागरी मे भी बिंदु का प्रयोग होता रहा है। (ख) नागरी लिपि पर कुछ प्रभाव मराठी लिपि का भी पडा है। पुराने अ, ल आदि के स्थान अ, ळ; या आ आी अु आदि रूप मे सभी स्वरो के लिए अ का ही कुछ लोगो द्वारा प्रयोग वस्तुतः मराठी का प्रभाव है। (ग) कुछ लोग नागरी लिपि शिरोरेखा के विना लिखते है। यह गुजराती लिपि का प्रभाव है। गुजराती लिपि शिरोरेखा-विहीन लिपि है। (घ) अंग्रेजी के पूर्ण प्रचार के वाद ऑफिस, कॉलिज जैसे शब्दो मे ऑ को स्पष्टत. लिखने के लिए नागरी लिपि मे ऑ का प्रयोग होने लगा है। इसका चन्द्राकार अंश तो पुराने चन्द्रविन्दु से गृहीत है, किन्तु यह प्रयोग अंग्रेजी प्रभाव से आया है। (ङ) नागरी-लेखन मे पहले मुख्यत केवल एक पाई या दो पाइयो का या कभी-कभी वृत्त का विराम के रूप मे प्रयोग करते थे। इधर अंग्रेजी विराम-चिह्नों ने हमे प्रभावित किया है, और पूर्ण विराम को छोडकर सभी चिह्न हमने अंग्रेजी से लिए है। यो कुछ लोग तो पूर्णविराम के स्थान पर भी पाई न देकर अँग्रेजी की तरह बिन्दु का प्रयोग करते है। (च) उच्चारण के प्रति सतर्कता के कारण कभी-कभी ह्रस्व ए, ह्रस्व ओ के द्योतन के लिए अब ऍ, ऑ का प्रयोग भी होने लगा है। इस प्रकार फारसी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी तथा ध्वनियो के प्रति सतर्कता ने भी नागरी लिपि को प्रभावित, फलत न्यूनाधिक रूप मे परिवर्तित और विकसित किया है।

### वैज्ञानिक लिपि के गुण और देवनागरी

विश्व की कोई भी लिपि सभी दृष्टियो से पूर्णत वैज्ञानिक नही है, किंतु पूर्णत वैज्ञानिक लिपि की कल्पना की जा सकती है और उसके

सकता है। (२) वैज्ञानिक लिपि मे एक ध्वनि के लिए एक ही चिह्न होना चाहिए, किंतु नागरी मे एक ध्वनि के लिए एकाधिक चिह्न है . र, ˚, ‚, —, ल=ळ, ग-श; अ-अ्र; ण-ण; त्र-त्र; आदि। इसमे र, ल, श, अ, ण को लेकर शेष को छोड देने पर यह कमी दूर हो सकती है। (२) आदर्श या वैज्ञानिक लिपि मे उन सभी ध्वनियो के लिए अलग-अलग अक्षर होने चाहिए जो उस भाषा मे हो, जिसे लिखने मे लिपि प्रयुक्त होती हो। इस दृष्टि से नागरी की समस्या थोड़ी अलग है, क्योकि यह किसी एक भाषा के लिए नही, अपितु संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी, नेपाली, तथा सिधी आदि कई भाषाओ के लिए प्रयुक्त हो रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन सभी भाषाओ के ध्वनिग्रामो का निर्धारण करके नागरी मे रखे जाने चाहिए। (३) वैज्ञानिक लिपि मे अक्षर उसी क्रम से लिखे जाने चाहिए, जिस क्रम से वे बोले जाएँ। नागरी लिपि मे यों तो उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ की मात्राएं भी इस दृष्टि से अवैज्ञानिक है, क्योकि वे दाई ओर न दी जाकर ऊपर-नीचे दी जाती है, किंतु यदि उन्हे छोड भी दे तो कम-से-कम 'इ' की मात्रा अवश्य ही परिवर्तित होनी चाहिए, क्योकि यह अपने स्थान से कभी एक, कभी दो, कभी तीन स्थान पहले (कि, प्रिय, चन्द्रिका) लिखी जाती है। उसके लिए कई सुझाव जैसे ी ही इ, ई दोनो को लिखना। अंतर के लिए इ के लिए प्रयुक्त ी की खडी पाई को छोटा कर देना आदि आए है (देखिए, 'हिन्दी भाषा')। उनमे किसी को भी माना जा सकता है। 'र' (क्रम, कर्म, ट्रेन) के संबंध मे भी ऐसी गड-बडी है। इसके लिए 'र' को ले लेना तथा शेष को छोड देना उचित होगा। (४) वैज्ञानिक लिपि मे अक्षरो मे समानता के कारण भ्रम की गुंजाइश नही होनी चाहिए, हिन्दी मे खाना-रवाना, अराडा-अगाडा अर्थात् ख-र व, रा तथा ण मे प्राय. भ्रम होता है। यह भ्रम ख के नीचे के भागो को मिला देने तथा 'ण' को अपना लेने एवं ण को छोड देने से दूर हो सकता है। भ-म, ध-घ मे कभी-कभी भ्रम हो जाता है। इससे बचने के लिए भ तथा घ को घुडीदार (ध,भ) लिखना चाहिए। (५) नागरी मे संयुक्त व्यंजन स्वतंत्र अक्षर जैसे है (श्र, ज्ञ,

क्ष, त्र, द्य आदि) इन्हे छोड 'श्र' आदि रूपो मे सयुक्त व्यंजन लिखे जा सकते हैं। (६) वैज्ञानिक लिपि मे लेखन की एकरूपता भी आवश्यक है। हिन्दी मे शिरोरेखा, बिंदी (कानून-क़ानून, अख़बार-अखबार, गरीब-ग़रीब फायदा-फ़ायदा जरूर-ज़रूर), चन्द्रकार (हां-हाँ) तथा अनुस्वार (पम्प-पंप) के प्रयोग मे एकरूपता नही है। इस सबंध मे एक पद्धति स्वीकार कर लेनी चाहिए।

**नागरी अंक :**

उर्दू, रोमन आदि विदेशी लिपियो को छोडकर, नागरी तथा शेष सभी लिपियों (बँगला, गुजराती, आदि) के अंक ब्राह्मी के अको से विकसित हैं। इन अको की दो शैलियो के प्रयोग मिलते है.

**प्राचीन शैली :**

इस शैली का प्रचार अशोक के समय से लेकर चौथी सदी तक था। इस शैली के अक अपनी आकृति मे तो नवीन शैली से भिन्न थे ही, एक मुख्य और महत्त्वपूर्ण अतर यह था कि पहले लोगो को शून्य का पता नहीं था, अत. उसका व्यवहार नही होता था। इसका परिणाम यह था कि १ से ९ तक की सख्याओ की तरह ही १०, २०, ३०, ४०,५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १००, आदि के लिए अलग-अलग चिह्न थे। अर्थात् १, २, ३ आदि के साथ शून्य रखकर ये सख्याएँ नही लिखी जाती थीं।

हमारे अको की उत्पत्ति विवादास्पद है। (१) प्रिसेप का कहना है कि ये अक उन शब्दो के प्रथम अक्षर से विकसित हैं जो शब्द इन अको को व्यक्त करते थे। अर्थात् 'एक' के 'ए' से १ का विकासहु आ है। बूलर ने इस मत को असमीचीन कहा है। (२) कुछ लोग इन्हे विदेशी अको से विकसित मानते रहे है, किन्तु इस अनुमान मे भी कोई दम नही है। मेरा अपना विचार है कि एक, दो, तीन का विकास तो ए अंगुली, दो अगुली, तीन अगुली के चिह्न से हुआ है। शेष सीधी और वक्र रेखाओ से यादृच्छिक ढग से बना लिए गए है। इस मेरे अनुमान का आधार अशोककालीन अंक-चिह्न है, जो इस पुस्तक मे दिए गए

(पृष्ठ १७९) प्रारंभिक अंक-चिह्नो मे देखे जा सकते है।

## नवीन शैली

अंको की नवीन शैली का प्रयोग पाचवी सदी से होने की सभावना है, यद्यपि शिलालेख आदि मे प्राचीन शैली का प्रयोग इसके बाद तक भी चलता ही रहा। 'शून्य' भारतीय गणितज्ञो की अभूतपूर्व खोज थी जो चौथी-पाचवी सदी मे हुई होगी। हमारे लिए यह गर्व का विषय है कि पूरे विश्व को शून्य की संकल्पना देने का श्रेय भारत को है। भारतीयों द्वारा शून्य के प्रयोग ने पूरे विश्व के गणितीय ज्ञान मे क्राति ला दी। भारत से नवीन शैली का प्रयोग अरबो ने सीखा और फिर उनसे यूनान ने और फिर यूनानियो से पूरे यूरोप ने। प्राचीन शैली मे १०, २०, ३० आदि के लिए जो अलग चिह्न थे। नवीन शैली मे उन्हे छोड दिया गया और शून्य की सहायता से १, २, ३ आदि संख्याए लिखी जाने लगी।

अब भारत नागरी अंकों को छोडकर अतर्राष्ट्रीय अको को अपनाता जा रहा है।

## हिंदी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव

हिंदी भाषा, विश्व की अन्य अनेक भाषाओं की तरह अपने विकास-काल मे समय-समय पर अन्य भाषाओ से प्रभावित होती रही है। यह प्रभाव मुख्यत तीन क्षेत्रो मे पडा है : ध्वनि, व्याकरण, शब्द-भंडार। उन्हे विस्तार से निम्नाकित शीर्षको मे देखा जा सकता है·

(१) ध्वनि—ध्वनि के क्षेत्र मे हिंदी ने फारसी से मध्यकाल मे क़, ख़, ग़, ज़, फ़ —इन पाँच व्यंजनो को ग्रहण किया। ये पाँचो व्यंजन क़ानून, ख़बर, ग़रीब, रोज, फौरन जैसे उन शब्दो के माध्यम से हिंदी मे आए, जिन्हे हिंदी ने फारसी से लिया या जो प्रभावस्वरूप फारसी भाषा से हिंदी मे आए। अंग्रेजी से ऑ (डॉक्टर) स्वर आया है। ध्वनियो के आने का प्रभाव लिपि पर भी पडा है तथा क, ख, ग, ज, फ के नए लिपि-चिह्न हिंदी मे आ गए हैं।

(२) उपसर्ग—हिंदी मे प्रभावस्वरूप आए उपसर्ग मुख्यत दो

प्रकार के हैं : (क) **संस्कृत उपसर्ग**—इसमे सस्कृत से हिंदी मे आए तत्सम उपसर्ग आते है जो या तो तत्सम शब्दो (**अभियोग, प्राक्कथन**) के साथ आए है या फिर नए शब्दो के निर्माण के लिए जिन्हे सस्कृत से ले लिया (**संयत्र, उपबोली**) गया है। आज इनसे धड़ल्ले से नए शब्द बनाए जा रहे है। (ख) **फ़ारसी उपसर्ग**—बे (**बेढब, बेधड़क**)।

(३) **प्रत्यय**—ये तीन प्रकार के है (क) **संस्कृत के**—जैसे ता (गुटनिरपेक्षता) इत्र (जनित्र, चालित्र), ईय (यूरोपीय) आदि। (ख) **फ़ारसी के**—जैसे इयत (अग्रेजियत), दान (सिगारदान), बाज (बमबाज) आदि। (ग) **अंग्रेज़ी के**—जैसे इम (स्वनिम, रूपिम, लोखिम), डम (गुरुडम), इज्म (जैंविज्म, बुद्धिज्म) आदि।

(४) **रूप**—अन्य भाषाओ से कुछ व्याकरणिक रूप भी हिंदी मे आ गए है। इन्हे दो वर्गो मे रखा जा सकता है : (क) **सस्कृत के**—जैसे साधारणतया, मुख्यतया, कृपया, पदेन, पूर्णरूपेण आदि। (ख) **फारसी के**—जैसे जेवरात (ज़ेवर का बहुवचन), कागजात (कागज़ का बहुवचन), हुक्काम (हाकिम का बहुवचन), बेहतरीन (बेह-बेहतर-बेहतरीन)।

(२) **वाक्य-रचना**—इसमे मुख्यत तीन बाते ली जा सकती है . (क) **आदर के लिए बहुवचन का प्रयोग**—यो तो सस्कृत मे भी इसके इक्के-दुक्के प्रयोग मिलते है, किंतु हिंदी मे इसका व्यापक प्रयोग है तथा वह सभी स्तरों पर है : **ये** (सर्वनाम) साहब के बड़े (विशे०) **बेटे** (**संज्ञा**) है (क्रिया)। **दौड़ते** (क्रि० विशे०) आ **रहे है**। (क्रिया)। द्रविड भाषा मे भी कुछ प्रयोग है, अत. कुछ लोगो का विचार है कि द्रविड का प्रभाव है। किंतु ऐसा होता तो यह प्रभाव सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ पर पडता। वस्तुत यह प्रभाव मुख्यत फारसी का है। मुगल दरबार की राजभाषा फारसी थी, और मुगल राज्य का केंद्र हिंदी प्रदेश था; अत. प्रभाव स्वाभाविक था। फारसी मे आदर के लिए बहुवचन का प्रयोग काफी व्यापक और प्राचीन है। यो हो सकता है कि इस प्रभाव को कुछ शक्ति द्रविड तथा संस्कृत से भी मिली हो। (ख) **'और' का अंतिम दो के बीच मे**

**प्रयोग**—दो या अंतिम दो संज्ञाओ, सर्वनामो, विशेषणो, क्रिया विशेषणो या क्रियाओं के बीच मे 'और' का प्रयोग फ़ारसी तथा अंग्रेजी से आया है। संस्कृत मे ऐसा नहीं था : राम, मोहन **और** श्याम आ रहे है; ये **और** वे गए; लडका शिक्षित, सुन्दर **और** स्वस्थ है; वे गाते **और** बजाते आ रहे है; उन्होने डॉटा, **और** मारा (ग) **कि-युक्त वाक्य**—'कि' फ़ारसी का है तथा यह रचना भी राम ने बताया कि वह गया।

(६) शब्द—सस्कृत, फारसी, तुर्की, पश्तो, पुर्तगाली, तथा अंग्रेजी आदि मे काफी शब्द हिंदी मे लिए गए है। संस्कृत के उदाहरण तो जल, व्यक्ति, राष्ट्र आदि से सारे शब्द है जो हिंदी मे तत्सम कहे जाते है। अन्यो के उदाहरण पीछे 'हिंदी का शब्द-समूह' शीर्षक अध्याय में दिए जा चुके है।

(७) **मुहावरे**—मुहावरे मुख्यत फारसी तथा अंग्रेजी से अनूदित रूप मे आए है। कुछ उदाहरण है · **फारसी**—दाँतो तले अँगुली दबाना, अक्ल गुम होना, पानी-पानी होना, आँखे चार होना, आँख दिखाना, सर करना, तथा हाथ मलना आदि। **अंग्रेजी**—प्रकाश डालना, रिकार्ड तोडना, खून का प्यासा होना, सफ़ेद हाथी, दायाँ हाथ, हवाई किले बनाना, स्वर्ण अवसर, तथा शीतयुद्ध आदि।

(८) **लोकोक्तियाँ**—ये मुख्यत. सस्कृत, फारसी तथा अंग्रेज़ी से आई है **संस्कृत**—अति सर्वत्र वर्जयेत, विनाशकाले विपरीत बुद्धि, मक्षिका स्थाने मक्षिका तथा मुडे-मुडे मतिर्भिन्ना आदि। **फ़ारसी**—माले मुफ्त दिले बेरहम, नीम हकीम खतरए जान, तंदुरुस्ती हजार नेमत, तथा देर आयद दुरुस्त आयद आदि। **अंग्रेज़ी**—आवश्यकता आविष्कार की जननी है, एक हाथ से ताली नही बजती, खाली दिमाग शैतान का घर तथा दीवारो के भी कान होते है आदि।

# हिन्दी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव

विश्व मे ऐसी कोई भी भाषा न होगी जिस पर किसी-न-किसी रूप मे दूसरी भाषाओ का प्रभाव न पड़ा हो। हिन्दी भी इस सामान्य नियम का अपवाद नही है। उस पर समय-समय पर सस्कृत आदि प्राचीन; पश्तो, तुर्की, फारसी (अरबी), पुर्तगाली, फ्रासीसी, स्पैनिश, अँग्रेज़ी, रूसी आदि अन्यदेशीय तथा आस्ट्रिक, द्रविड, पजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगाली आदि वर्तमान भारतीय भाषाओ का विभिन्न रूपो मे प्रभाव पडा है। यहाँ कुछ मुख्य बाते सक्षेप मे ली जा रही है—

**ध्वनि**—सामान्यतः कोई भाषा दूसरी भाषाओ से ध्वनि की दृष्टि से प्रभावित नही होती। विश्व की अनेकानेक भाषाओ ने दूसरी से शब्द तो लिए है, किन्तु ध्वनि के क्षेत्र मे प्राय: कम ही प्रभाव मिलता है। इस क्षेत्र मे प्रभाव के लिए **दीर्घकालीन** तथा **अत्यन्त गहरा** सम्पर्क एव शिक्षा आदि के द्वारा उक्त भाषा की **उचित** या कम-से-कम उसके काफ़ी शब्दो की औच्चारणिक **जानकारी** आवश्यक है। हिन्दी के साथ इस प्रकार का जानकारीयुक्त विशेष सम्पर्क सस्कृत, फारसी तथा अँग्रेजी का ही रहा है। उनमे संस्कृत से किसी नई ध्वनि के आने का प्रश्न नही उठता, क्योकि कुछ अपवादो (ऋ, लृ, ष, आदि) को छोडकर संस्कृत तथा हिन्दी मे प्रायः समान ध्वनियाँ है। जो असमानता है, वह ऐसी है जिसका अनुकरण हमारे लिए सम्भव नही है। यह उल्लेख्य है कि कोई भाषा दूसरी भाषा से केवल उन्ही ध्वनियो को लेती है या ले सकती है जो उसके वक्ताओ द्वारा बिना विशेष कठिनाई के उच्चारणीय हो। फारसी और अँग्रेजी मे कई ध्वनियाँ ऐसी है जो हिन्दी मे नही है, किन्तु उनमे

सहज अनुकरणीय केवल छ· ही थी, अतः प्रभाव-स्वरूप वे ही आ सकी। ये ध्वनियाँ है· (१) फारसी से आने वाले पाँच व्यंजन—क़, ख़, ग़, ज़, फ़; (२) अँग्रेजी से आने वाला एक स्वर ऑ। अँग्रेजी के कई शब्दो मे ज़ (सेफ्टीरेजर) तथा फ़ (ऑफिस) ध्वनियाँ है, किन्तु इन्हे फारसी से हम पहले से ही ले चुके थे, अत· फिर अँग्रेजी से लेने का प्रश्न नही उठता। ये नवागत ध्वनियाँ प्रायः फारसी (अरबी), पश्तो, तुर्की तथा अँग्रेजी शब्दों मे ही प्रयुक्त होती है।

**उपसर्ग**—हिन्दी ने संस्कृत, फारसी (उसके द्वारा अरबी) तथा अँग्रेज़ी से कुछ उपसर्ग लिए है। यह उल्लेख्य है कि उन्ही उपसर्गो को पूर्णत· लिया हुआ माना जा सकता है जो हिन्दी के अपने या नवनिर्मित शब्दो के साथ आते है। इस प्रकार के उपसर्ग सर्वाधिक तो संस्कृत के है। संस्कृत उपसर्गो मे अ (अछूत), अन् (अन्पढ), कु (कुचाल), उप (उपबोली) आदि तो हिन्दी के अपने शब्दो के साथ भी आते है, अतः ये तो हिन्दी के हो ही चुके है, अन्य तत्सम उपसर्गो मे भी अधिकाश नए शब्दो के निर्माण मे हिन्दी मे प्रयुक्त होते है, अतः वे भी अपने है। फारसी उपसर्गो मे केवल बे (बेधडक, बेढब, बेढंगा) ही हिन्दी के अपने शब्दो के साथ आता है। अन्य सारे प्रायः फ़ारसी-अरबी शब्दों के साथ ही आते है। अँग्रेजी के यो तो वाइस, सब, हाफ, हेड उपसर्गो का प्रयोग हम लोग बोलचाल मे तथा लिखने मे भी करते है, किन्तु ये प्रायः अँग्रेजी शब्दो के साथ ही आते है। हेडपण्डित, हेडमौलवी, हाफकमीज जैसे कुछ उदाहरण अपवाद है। इस प्रकार अँग्रेजी के उपसर्ग हमारे पूर्णत. अपने नही हो सके है।

**प्रत्यय**—हिन्दी ने सस्कृत, फारसी (अरबी), अँग्रेजी से प्रत्यय भी लिए है। सस्कृत के ज, ता, त्व आदि अनेक प्रत्यय, हिन्दी नए शब्दों के निर्माण मे प्रयुक्त कर रही है। 'यूरोपीयता' जैसे शब्दो मे 'ता' प्रत्यय कभी-कभार अतत्सम शब्दो के साथ भी आता है। फारसी से लिए जाने वाले प्रत्ययो मे आना (घराना), इयत (अँग्रेजियत, बोरियत), खोर (घूसखोर), गिरी (बाबूगिरी), ची (मिडिलची), ज़ाद (चचाजाद), दान (सिंगारदान), दानी (चायदानी, गोददानी), बाज (बमबाज,

बैठकबाज़), बार(ब्योरेवार)आदि प्रमुख है। अँग्रेजी के डम (गुरुडम), इज्म (जैनिज्म, बुद्धिज्म, शैविज्म), इस्ट (बुद्धिस्ट) आदि कभी-कभी प्रयुक्त होते है, किन्तु उपसर्गो की तरह ही ये भी हिन्दी के पूर्णत: अपने नही हो सके हैं।

**शब्द-समूह**—किसी भापा पर दूसरी भापाओ का प्रभाव सर्वाधिक शब्द-समूह के क्षेत्र मे ही पड़ता है। एक भाषा मे दूसरी भाषा के शब्द प्राय: नई वस्तुओं के नाम या नए विचारो एव नई अभिव्यक्तियों के द्योतक के रूप मे आते हैं। अँग्रेज़ी मे भारतीय भापाओ से जाने वाले लगभग दो हजार शब्दो मे अधिकाश ऐसे ही है। हिन्दी मे तुर्की, फारसी, पुर्तगाली, अँग्रेजी आदि से अनेक शब्द ऐसे आए है : तोप, बन्दूक, बारूद, अरगजा, इस्त्री, आलपिन, पेंसिल, इंजन, कैमरा, फैशन आदि। इस वर्ग के शब्द, तत्त्वत: किसी भाषा मे उसकी आवश्यकतानुसार, या नए समाज की अभि-व्यक्ति मे भापा को सक्षम बनाने के लिए आते हैं। किन्तु इस आवश्यक वर्ग के अतिरिक्त ऐसे भी शब्द भापाओं मे आ जाते है, जिन्हे एक भाषा से दूसरी भापा में ग्रहण करने वाली भापा की दृष्टि से 'अनावश्यक वर्ग' का कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी ने ऐसे अनेक शब्द भी दूसरी भापाओ से लिए है, जिनके लिए उसके पास प्राय शब्द थे। उदा-हरणार्थ, हज़ार (सहस्र, दस सौ), मुश्किल (कठिन), आसान (सरल), मकान (घर), शहर (नगर), आदमी (पुरुप, व्यक्ति), औरत (स्त्री), बाजार (हाट), खूबसूरत (सुन्दर), फौज (सेना), तीर (बाण), कमान (धनुप), दरवाजा (द्वार), जंगला (खिड़की), चाबी (कुजी) तथा बिल्डिग (इमारत, भवन) आदि। इस वर्ग के शब्द प्राय· अत्यधिक सम्पर्क अथवा शब्ददायी भापा या उसके बोलने वालो के प्रति किसी प्रकार की उच्च भावना आदि के कारण आ जाते है। इन सहज कारणो के अतिरिक्त साहित्यकार कभी-कभी नवीनता, साहित्यिक अभिव्यक्ति की आवश्यकता, अथवा ज्ञान-दर्शन यद्यपि बहुत कम, की दृष्टि से भी प्राचीन अथवा आधुनिक, देशी अथवा विदेशी भाषाओ से शब्द ग्रहण कर लेते है।

हिन्दी भाषा अपने जन्म से ही संस्कृत भापा से इतने अधिक शब्द

लेती रही है तथा ले रही है कि उसका ठीक-ठीक लेखा-जोखा करना प्राय: असम्भव-सा है। ग्रीक जिस प्रकार यूरोपीय भाषाओ के लिए कामधेनु है, भारतीय भाषाओ के लिए सस्कृत की भी वही स्थिति है। वस्तुत. अपभ्रश एवं हिन्दी का समूचा साहित्य जब तक सुसपादित होकर हमारे सामने नही आ जाता, तथा उसकी सुव्यवस्थित शब्दानुक्रमणी तैयार नही हो जाती, यह कहना बडा कठिन है कि कौन-से सस्कृत शब्द हिन्दी को अपने जन्म के समय अपभ्रंश से मिले तथा कौन से उसने बाद मे संस्कृत से ग्रहण किए। सच पूछा जाय तो उपर्युक्त अनुक्रमणी तैयार हो जाने पर भी इस प्रश्न का सुनिश्चित उत्तर नही दिया जा सकता, क्योकि यह आवश्यक नही कि अपभ्रश भाषा मे प्रयुक्त सभी सस्कृत शब्द अपभ्रश साहित्य में प्रयुक्त ही हुए हो। बल्कि अधिक आशा तो इसी बात की है कि बहुत अधिक शब्द ऐसे होगे जो साहित्य मे नही आ सके होगे। ऐसी स्थिति मे सस्कृत के सम्बन्ध मे इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि सस्कृत से हिन्दी ने—विशेषत. भक्तिकाल तथा आधुनिक काल मे—बहुत अधिक शब्द लिए है, ले रही है तथा लेती रहेगी।

अन्य जिन भाषाओं से हिन्दी ने शब्द लिए है, उन्हे दो वर्गो मे रखा जा सकता है :

(क) **विदेशी**—पश्तो, तुर्की, फारसी, पुर्तगाली, फ्रासीसी, स्पैनिश, डच, अँग्रेज़ी, रूसी।

(ख) **देशी**—पजाबी, गुजराती, मराठी, उडिया, बँगला, द्रविड, मुडा।

**रूप**—हिन्दी मे शब्दो के अतिरिक्त कुछ रूप भी अन्य भाषाओ से आए है।

**संस्कृत से**—संस्कृत से आगत रूपो मे सबसे बड़ी संख्या करण एक-वचन की है · साधारणतया, मुख्यतया, प्रमुखतया, विशेषतया, सामान्य-तया, पूर्णतया, कृपया, अपेक्षया, प्रकृत्या, अगत्या (लाचार होकर); पदेन, येन केन प्रकारेण, पूर्णरूपेण; जन्मना, मनसा वाचा कर्मणा; हठात्, बलात्, सयोगवशात्, दैवात्, प्रसंगात् जैसे पचमी एकवचन तथा 'पदे-पदे' जैसे कुछ अधिकरण एकवचन भी हिन्दी मे कभी-कभी प्रयुक्त होते है।

विशेषण के तर (सुन्दरतर) एवं तम (सुन्दरतम) वाले रूप तो प्रयुक्त होते है, किन्तु कुछ तुलनार्थी विशेषण कुछ अन्तर के साथ हिन्दी मे गृहीत हुए हैं। उदाहरणार्थ, संस्कृत मे गरीयस्, गरिष्ठ 'गुरु' के तरार्थी एवं तमार्थी रूप है। इनमे पहला तो हिन्दी मे प्राय. नही आता, किन्तु दूसरा आता है। 'गुरु' तो हिन्दी में प्राय: अपने मूल अर्थ मे आता है किन्तु तमार्थी 'गरिष्ठ' एक ओर तो तमार्थी न होकर सामान्य है, दूसरे इसका प्रयोग भी भोजन तक सीमित हो गया है। 'उत् (ऊपर)—उत्तर—उत्तम' में 'उत्तर' प्राय: केवल 'बादवाला' या 'जवाब' तथा उत्तम 'अच्छा' अर्थ मे प्रयुक्त होता है। 'त्राहि' जैसे कुछ क्रियारूप भी हिन्दी मे स्थान पा चुके है।

**फ़ारसी से**—फारसी के माध्यम से कुछ अरबी द्विवचन (तस्निया) के रूप हिन्दी मे आ गए है। ऐसे रूप उर्दू मे तो काफी है किन्तु हिन्दी मे अपेक्षाकृत बहुत कम है और जो है भी, धीरे-धीरे समाप्त हो रहे है: वालिदैन, फरीकैन। कचहरी की भाषा मे इनका प्रयोग अधिक होता रहा है। हिन्दी मे कुछ फारसी बहुवचन (**आन** : साहब-साहबान, मालिक-मालिकान, काश्तकार-काश्तकारान; **हा** · बार-बारहा (बार-बार) तथा कुछ अरबी नियम के आधार पर बने फारसी-अरबी बहुवचन (**आत** : कागज-कागजात, ख्याल-ख्यालात, ज़ेवर-ज़ेवरात, मकान-मकानात, बाग-बागात देहात (इसका एकवचन 'देह' हिन्दी मे नही आता, तथा 'देहात' हिन्दी मे एकवचन है); कुछ अनियमित : हाकिम-हुक्काम, ख़बर-अखबार (एक० मे प्रयुक्त), वक्त-औकात (=स्थिति, एक० मे प्रयुक्त), वली-औलिया (एक० मे प्रयुक्त), अजीब-अजायब (केवल 'अजायबघर' मे), कायदा-कवायद (प्राय: केवल 'कसरत' 'पी० टी०' अर्थ मे, उर्दू मे 'व्याकरण' के अर्थ मे भी), जौहर-जवाहर (रत्न के अर्थ मे जवाहरात) भी है। स० 'तर', 'तम' की तरह फारसी मे तरार्थी एव तमार्थी 'तर', 'तरीन' का प्रयोग होता है: बद-बदतर-बदतरीन, बेह-बेहतर-बेहतरीन, पेश-पेशतर-पेशतरीन, कम-कमतर-कमतरीन, आदि मे, कुछ हिन्दी मे प्रयुक्त होते है, यद्यपि कई परिवर्तित अर्थ मे।

**वाक्य-रचना**—हिन्दी वाक्य-रचना मुख्यत· मध्यकाल मे फारसी से

तथा आधुनिक काल मे अँग्रेजी से प्रभावित हुई है। नीचे दोनो को अलग-अलग लिया जा रहा है। यह उल्लेख्य है कि कुछ बाते तो निश्चित रूप से इन भाषाओ से आई है किन्तु कुछ के आने की सम्भावना मात्र है। एक यह बात भी संकेत्य है कि अभी तक इस दिशा मे उतनी गहराई से अध्ययन नही हुआ है, जितनी गहराई से अपेक्षित है। इसी कारण यहाँ केवल कुछ बहुत मोटी-मोटी बाते ही दी जा रही है।

**फ़ारसी-प्रभाव . उल्टा समास**— संस्कृत-परम्परा मे 'राजा का पुत्र' को 'राजपुत्र' या 'ग्राम का वासी' को 'ग्रामवासी' कहेगे। फारसी में इसके उल्टे 'आलम का शाह' को 'आलमशाह' न कहकर 'शाहेआलम' कहेगे। फारसी का यह प्रभाव मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य पर मिलता है। जायसी मे 'पत्थर की लीक' के लिए 'पखन-लीक' न आकर 'लीक-पखान' (लीक-पखान पुरुष कर बोला) तथा 'रवि की किरन' के लिए 'किरिन-रवि' (भा भिनसार किरिन रवि फूटी) आया है। 'गग' गजमुक्ता को 'मुकता-गज' (स्यारथरी मे खुरी पुँछ कथरे, सिहथरी मुकतागज पावै) भी इसी परम्परा मे कहते है। फारसी कचहरियो की भाषा थी, अत. आज भी कचहरियो की भाषा मे इसके अवशेष है : 'तहसीलदार हमीरपुर का तबादला हो गया' (हमीरपुर के तहसीलदार), 'मेवरान डिस्ट्रिक्ट बोर्ड', 'सूबा बंगाल' इत्यादि। 'शाहे वक्त', 'शेरे कश्मीर', 'सदरे रियासत', 'सितारे हिन्द', 'रुस्तमे हिन्द' तो शुद्ध फारसी है ही।

**जो**—जो-युक्त उपवाक्यो का वाक्य के आरम्भ मे प्रयोग संस्कृत परम्परा का नही माना जाता। काल्डवेल इसे द्रविड़ प्रभाव मानते है। प्राकृतो मे ऐसे प्रयोग होने लगे थे। प्राकृत-पैगलम् मे आता है—'जो चाहहि सो लेहि'। काल्डवेल की बात ठीक लगती है, किन्तु प्राकृतो की तुलना मे आधुनिक काल मे यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है। सम्भवतः हिन्दी आदि मे ऐसे प्रयोगो (जो सोया सो खोया, जो जागा सो पाया) की वृद्धि के पीछे फारसी प्रभाव का कुछ हाथ है।

**आदर के लिए एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग**—हिन्दी मे यह बात सर्वनाम तथा क्रिया मे देखी जाती है। फारसी मे भी (सर्वनाम तथा सभी काल की क्रियाओ मे) यही बात मिलती है : 'ईशुन मी गूयन्द'

=वे कहते है; 'शेख़ सादी मी गूयन्द'—शेख़ सादी कहते है। मेरे विचार मे हिन्दी की यह प्रवृत्ति निश्चिततः फारसी प्रभाव के कारण है। यो संस्कृत मे भी फुटकल प्रयोग इस प्रकार के मिलते है, किंतु फारसी की तरह उसमे सामान्य प्रवृत्ति नही है। इसीलिए इसे सस्कृत से आया नही माना जा सकता।

**संयुक्त क्रिया**—यों तो भारतीय परम्परा मे सयुक्त क्रिया सर्वथा नवीन नही है, किन्तु हिन्दी की वहुत-सी संयुक्त क्रियाएँ, विशेषत. संज्ञा तथा विशेषण से वनने वाली नामिक संयुक्त क्रियाएँ फारसी का अनुवाद मात्र हैं। कुछ उदाहरण है : तग कर्दन– तग करना, नर्म कर्दन—नरम करना, खुश शुदन—खुश होना, पैरवी कर्दन—पैरवी करना, आजाद कर्दन—आजाद करना, कसम खुर्दन—कसम, शपथ या सौगन्ध खाना, आदि। संस्कृत मे 'स्वतन्त्र करोति' के स्थान पर 'मुचीत या 'प्रसन्न करोति' के स्थान पर 'प्रसादयति' जैसे प्रयोग ही प्रायः चलते है। इस प्रकार संज्ञा, विशेषण आदि की सहायता से इस प्रकार की सयुक्त क्रियाएँ भी हिन्दी को फ़ारसी की देन है।

**क्रिया के पूर्व क्रियाविशेषण**—हिन्दी वाक्य-गठन की यह एक प्रमुख विशेषता (वह कल आया, वह धीरे-धीरे चल रहा है) उल्लेख्य है कि सस्कृत मे क्रियाविशेषण क्रिया के पूर्व भी आता था और वाद मे भी है। अँग्रेजी मे क्रियाविशेषण बाद मे ही आता है। फारसी मे हिन्दी की तरह ही क्रियाविशेषण क्रिया के पूर्व (ऊ बितुन्दी मी गुफ्त=वह जल्दी-जल्दी बोल रहा था) आता है। हिन्दी की यह प्रवृत्ति भी फारसी का प्रभाव ज्ञात होती है।

**और**—सस्कृत मे 'च' जव एक बार आता है तो उन शब्दो के बाद जिन्हे वह जोडता है (परिक्रम्य अवलोक्य च—'घूम और देखकर'; रामो लक्ष्मणश्च—'राम और लक्ष्मण'), या फिर एक से अधिक वार (अहश्च रात्रिश्च—'रात और दिन', रामश्च लक्ष्मणश्च—'राम और लक्ष्मण')। हिन्दी मे फारसी की तरह (पिदर उ मादर) 'और' शब्दो के बीच मे केवल एक वार (वाप और माँ) आता है। हिन्दी मे यह प्रवृत्ति मूलत. फारसी से आई ज्ञात होती है, यो इधर कदाचित् अँग्रेजी प्रभाव से इसे और बल

मिला है ।

**कि**—वाक्यो मे 'कि' का प्रयोग या 'कि' से जोड़कर वाक्य-रचना मूलतः भारतीय परम्परा की नही है। 'विक्रमोर्वशीय' मे आता है—'मइ जाणिअं मिअ लोअणि णिसिअरु कोई हरेइ' । इसी तरह 'गोरखनाथ' मे आया है—'गोरष कहै सुणहु रे अवधू जग मै ऐसैं रहणा' । 'कि' फ़ारसी का शब्द है और इसका वाक्य-रचना मे प्रयोग फारसी का प्रभाव है। चूँकि, ताकि, गोकि, बशर्ते कि आदि से युक्त वाक्यो की भी यही स्थिति है।

**अँग्रेजी प्रभाव**—अँग्रेजी शिक्षा एवं पठन-पाठन का, फारसी की तुलना मे अधिक प्रचार है, इसी कारण वर्तमान हिन्दी वाक्य-गठन इससे अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित है। अँग्रेजी प्रभाव के कारण हिन्दी वाक्य-रचना मे कुछ वाते तो नई आई है और कुछ ऐसी बाते [जैसी 'राम और लक्ष्मण' रूप मे दो शब्दो के बीच 'और' का प्रयोग, या यदि कई शब्द हो तो अन्तिम के पूर्व (राम, सीता, भरत 'और' लक्ष्मण) 'और' का आना] फारसी से आ चुकी थी। अँग्रेजी ने उनके प्रयोग को केवल और निश्चितता प्रदान की है। अँग्रेजी के कुछ प्रमुख प्रभाव निम्नाकित है—

**के द्वारा**—अँग्रेजी 'बाई' के स्थान पर प्रयुक्त। 'यह पुस्तक उनके द्वारा लिखित है' या 'यह लेख शुक्ल जी द्वारा लिखा गया था' जैसे वाक्य अँग्रेजी वाक्यो के अनुवाद है। हिन्दी मे पुराने प्रयोग थे—'इसे उन्होने लिखा है' या 'यह लेख शुक्लजी का था' या 'यह लेख शुक्लजी का लिखा था।'

**सम्बन्धवाचक सर्वनाम**—सम्बन्धवाचक सर्वनामों के सम्बन्ध मे हिन्दी और अँग्रेजी पद्धति मे अन्तर है। हिन्दी मे या तो सम्बन्धवाचक सर्वनाम का प्रयोग न करके कर्तृकृदन्त (पेड से गिरने वाला लड़का मर गया) का प्रयोग करते रहे है, या फिर सम्बन्धवाचक सर्वनाम का प्रारम्भ मे सज्ञा के पूर्व प्रयोग (जो लडका पेड से गिरा था, मर गया) होता है। अँग्रेजी मे सज्ञा के बाद सम्बन्धवाचक रखने का नियम (वह लडका जो पेड से गिरा था, मर गया—The boy, who fell from

the tree, died.) है। अँग्रेज़ी के प्रभाव से आजकल इस प्रकार के वाक्य हिन्दी मे भी प्रयुक्त हो रहे है : राम, जो कल तक इन बातों से दूर था, आज इनमें रस लेने लग गया है (जो राम ··); वह देश, जिसमे दूध की नदियाँ वहती थी, आज दूध के लिए तरस रहा है (जिस देश में···); वह घर, जिसमे मैं पहले रहा करता था, बिक गया (जिस घर मे मैं···)। यह प्रयोग सभी कारकों (वह आदमी जिसने···; वह लडका जिसे···; वह लाठी जिससे; वह अध्यापक जिसका···) आदि मे होता है।

**वह का प्रयोग**—अँग्रेज़ी मे 'द' के प्रयोग के आधार पर 'वह' के कुछ नए प्रयोग भी हिन्दी मे चल पड़े है। ऊपर के सारे उदाहरणो मे 'वह' ऐसा ही है। पुराना प्रयोग था : 'जिस विद्यार्थी को इनाम मिला, वहुत गरीव है।' इसके स्थान पर कुछ लोग कहते है 'विद्यार्थी जिसे इनाम मिला, वहुत गरीव है।' किन्तु कुछ लोग 'The student who···' के 'द' के प्रभाव से 'वह विद्यार्थी जिसे इनाम मिला, बहुत गरीब है' कहते है। यह 'वह' 'द' का अनुवाद है।

**'मै' के स्थान पर 'वह'**—अँग्रेजी मे कथन (speech) दो प्रकार के होते हैं : प्रत्यक्ष (direct), अप्रत्यक्ष (indirect)। प्रत्यक्ष के 'मै' के स्थान पर, अन्य पुरुप मे. अप्रत्यक्ष कथन मे 'वह' का प्रयोग होता है। हिन्दी का अपना प्रयोग 'मै' का है। अव अँग्रेजी के प्रभाव से हिन्दी मे भी 'वह' का प्रयोग ही अधिक प्रचलित होता जा रहा है : 'राम ने कहा कि वह जाएगा।' हिन्दी की परम्परा के अनुसार होगा—'राम ने कहा कि मैं जाऊँगा।'

**या···या**—यह प्रयोग अँग्रेज़ी 'आइदर···ऑर' पर आधारित है। पुराने प्रयोग 'राम या मोहन' के स्थान पर 'या राम या मोहन' अथवा 'या तो राम या मोहन' जैसे प्रयोग आज वहुत सामान्य है। संस्कृत मे 'या' के स्थान पर 'वा' मिलता है। किन्तु उल्लेख्य है कि 'वा' वाक्य के आरम्भ मे कभी नही आता। साथ ही 'च' की तरह या तो यह एक से अधिक वार (रामो वा लक्ष्मणो वा=राम या लक्ष्मण) या बाद मे (रामो लक्ष्मणो वा) आता है। प्रश्न उठता है कि हिन्दी का पुराना प्रयोग

'राम या मोहन' फिर कहाँ से आया ? मेरे विचार मे यह प्रयोग फारसी का प्रभाव है। फ़ारसी मे हिन्दी की तरह ही (राम या मोहन; राम बूद (था) या मोहन) प्रयोग करते है।

**और**—फारसी प्रभाव के सम्बन्ध मे 'और' का उल्लेख किया जा चुका है। उक्त प्रकार का प्रयोग हिन्दी मे आया तो फारसी के प्रभाव से, किन्तु जैसा कि सकेत किया जा चुका है, आधुनिक हिन्दी मे उक्त रूप मे इसके सुव्यवस्थित एवं निश्चित प्रयोग के पीछे अँग्रेजी का भी हाथ है। किन्तु फारसी का हाथ कदाचित् अधिक है। कई शब्द हो तो 'और' का प्रयोग अन्त्य (कलम, पेसिल और कागज) शब्द के पूर्व फारसी मे भी होता था और फारसी से यह हिन्दी मे आया, किन्तु इसका सुव्यवस्थित प्रयोग अंग्रेजी प्रचार के बाद मिलता है। अत: मेरे विचार मे इसमे अँग्रेजी प्रभाव का हाथ अधिक है। 'और' कभी-कभी अँग्रेजी मे वाक्य के प्रारम्भ मे आता है, जब वाक्य पूर्ववर्ती वाक्य से विशेष सम्बन्धित दिखाना हो। हिन्दी मे भी यह प्रवृत्ति है जो अँग्रेजी की देन है। कभी-कभी कहानी आदि मे प्रारम्भ मे ही प्रयुक्त 'और' भी यही है: और सतीश जोर-जोर से गालियाँ दे रहा था···।

**विरामचिह्न**—आज की अत्यधिक सश्लिष्ट वाक्य-रचना मे विराम-चिह्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमारे यहाँ पहले केवल एक पाई (।), दो पाई (।।) या इन्ही के समानार्थी कुछ अन्य चिह्नो का ही विरामचिह्न के रूप मे प्रयोग होता था। हिन्दी मे फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद अग्रेजी के माध्यम से अन्य विरामचिह्न आए। १९वी सदी की पाडुलिपियो से यह स्पष्ट हो जाता है कि विरामचिह्न के सम्बन्ध मे जानकारी तो लोगो को १९वी सदी के अन्तिम चरण मे प्राप्त हो गई थी, किन्तु इनका व्यवस्थित प्रयोग २०वी सदी मे प्रारंभ हुआ। विराम-चिह्न हमारे यहाँ अँग्रेजी से आए, अत: उनके प्रयोग मे वृद्धि के साथ-साथ जाने या अनजाने रूप मे अँग्रेजी वाक्यो जैसी रचना, विरामचिह्नो के व्यवस्थित प्रयोग की दृष्टि से होने लगी। इस प्रकार विरामचिह्नो के माध्यम से भी कुछ प्रभाव पडा।

**मुहावरे**—मुहावरे भाषा मे बहुत महत्त्वपूर्ण होते है। उनके कारण

भाषा की अभिव्यक्ति मे आकर्पण एवं गाम्भीर्य आता है। डॉ० बाहरी ने कहा है (Persian Influence on Hindi, १९६०, इलाहाबाद, पृ० ५९) कि 'सस्कृत मे मुहावरे बहुत कम थे। उन लोगो का सीधे शब्दो द्वारा अभिव्यक्ति मे विश्वास था।' डॉ० बाहरी के इस मत से मेरी विनम्र असहमति है। भारतीय कविता मे लक्षणा तथा व्यजना का बहुत सहारा लिया गया है और ये लाक्षणिक एव व्यंजनात्मक प्रयोग मुहावरो से ओतप्रोत है। जहाँ अभिधामूलक काव्य है; उसी को सीधे-सादे शब्दो या कोशार्थ पर आधारित मुहावराशून्य काव्य कहा जा सकता है। यहाँ इस विपय को विस्तार से लेना सम्भव नही है, किन्तु वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के कुछ उदाहरण दिए जा सकते है : मधुजिह्व (मधुर भाषी), तृणम्मन्ये (नाचीज़ समझना), लोम्नि लोम्नि (रोम-रोम मे), कुभीम् पर्यादधाति (दूसरे की हँड़िया पर आग लगाना), द्यून् भूपति (दिनो की शोभा बढाना), पृष्णी अपि शृण (कमर तोडना), मृत्युमुखात्प्रमुच्यते (मौत के मुँह से छूटना), ख मुष्टिनादि जिघृक्षन्ति (मुट्ठी मे आसमान बन्द करना), पुष्पिताम् वाचम् (दिखाऊ बात) आदि। पालि, प्राकृत, अपभ्रश भाषाएँ भी मुहावरो से भरी-पूरी है : भणम्मुद्दिआये जीहाये (खुली जीभ से कहना), मुहेसुमुद्दा (मुँह पर मुहर), मक्कडुघुग्घिऊ (बन्दर-घुडकी), डम्बरई करेइ (आडम्बर करना) आदि। हिन्दी मे आदिकाल से ही मुहावरो का समुचित प्रयोग मिलने लगता है। मुहावरो का सर्वाधिक प्रयोग सूर, तुलसी, प्रेमचन्द तथा मैथिलीशरण गुप्त ने किया है। इस प्रकार हमारी पूरी साहित्यिक परम्परा मे मुहावरो का समुचित प्रयोग हुआ है। यो अन्य क्षेत्रो की भाँति मुहावरे के क्षेत्र मे भी हिन्दी कई भाषाओ, जैसे पश्तो, तुर्की, फारसी तथा अँग्रेजी से प्रभावित हुई है। इन भाषाओ से गृहीत कुछ मुहावरे ये है—

**पश्तो**—टस-से-मस न होना, पानी पर लाठी मारना, तहस-नहस करना, दम-दिलासा देना, हाडे खाना (प्रार्थना करना), आदि।

**तुर्की**—पाँचो उँगली घी मे होना, डडे खाना, मुँह से लार टपकना, आँख लड़ना, बाल खिचड़ी होना, आदि।

**फ़ारसी**—दाँतो तले उँगली दबाना (अगुश्त व दन्दाँ), उँगली उठाना

(अंगुश्त निहादन), अक्ल गुम होना (अक्ल गुम शुदन), कटिबद्ध होना, कमर कसना, कमर बाँधना (कमर बस्तन), खून करना (खून करदन), सिर-आँखो पर (चश्म बर सर), पानी-पानी होना (आब शुदन), मुँह मे पानी आना (आब दर दहान आमदन), आँखे चार या दो-चार होना (चश्म-चहार या दो-चहार शुदन), आँख दिखाना (चश्म नमूदन), जान हथेली पर रखना (जान बर कफ निहादन), आँख मारना (चश्म जदन), जान की बाज़ी लगाना (बाजि-ए-जान करदन), दाँत दिखाना (दन्दान नमूदन), हाथ आना (दस्त आवुर्दन), जान से हाथ धोना (दस्त अज जान शुस्तन), जबान देना (जबान दादन), हाथ पर हाथ धरे बैठना (दस्त बर दस्त निशस्तन), तेवर बदलना (तेवर तब्दील करदन), हाथ मलना (दस्त गजीदन), आस्तीन चढाना (आस्तीन बर चीदन), दाँत खट्टे करना (दर्दां तुर्श करदन), हाथ-पैर मारना (दस्तवपा जदन)।

**अँग्रेजी**—प्रकाश डालना (throw light), दृष्टि रखना (keep an eye on), कलेजा मुँह को आना (have one's heart in one's mouth), आँखो मे धूल झोकना (throw dust into one's eyes), रँगे हाथो (red handed), रिकॉर्ड तोडना (break the record), खून का प्यासा होना (to get blood thirsty), कीचड उछालना (to throw mud), सफेद झूठ (white lie), सफेद हाथी (white elephant), दायाँ हाथ (right hand), विहगम दृष्टि (birds eye view, 'सिहावलोकन' अपना पुराना प्रयोग है;) क ख ग जानना (know a b c), आग मे ईंधन डालना (To add fuel to flame, 'आग मे घी डालना' पुराना प्रयोग है), हवाई किले बनाना (build castle in the air, 'मन के लड्डू खाना' पुराना प्रयोग है), घडियाली आँसू, मगरमच्छ के आँसू (crocodile's tear)।

**लोकोक्ति**—लोकोक्तियाँ समाज के अनुभवो के सूत्रलेख है। बेकन ने ठीक ही कहा है कि किसी राष्ट्र की प्रतिभा, विदग्धता एवं अंतरात्मा का दर्शन उसकी कहावतो के द्वारा ही होता है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रश साहित्य मे लोकोक्तियो का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। कुछ उदाहरण है : अग्निनाग्नि समिद्ध्यते (आग से आग भडकती है), चक्षुर्वै

सत्यम् (आँख का देखा सच होता है), अद्यैव कुरु यच्छ्रेयः (श्रेयस्कर कार्य आज ही करो) आम्रं छित्वा कुठारेण निम्ब परिचरेत्तु का (आम को काट नीम को कौन सेवे), ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता (बडा भाई बाप बराबर), मित्तो हवे सत्तपदेन होति (सात कदम साथ-साथ चलने पर आदमी मित्र हो जाता है), सीहो न जुप्पइ हलम्मि (सिंह हल मे नहीं जोता जाता), इत्यादि। हिन्दी मे अनेक लोकोक्तियाँ सस्कृत, पश्तो, तुर्की, फारसी, अँग्रेजी आदि से आई है।

**संस्कृत**—वहुत-सी सस्कृत लोकोक्तियाँ अपने मूल रूप मे हिन्दी मे प्रयुक्त होती है : अति सर्वत्र वर्जयेत्, मुडे-मुडे मतिर्भिन्ना, विनाभ्यासे विषम् विद्या, प्रथम ग्रासे मक्षिकापातः, विनाशकाले विपरीत बुद्धिः, मक्षिका स्थाने मक्षिका, मौनं सर्वार्थ साधनम्, लोभ पापस्य कारणम्, वचने किं दरिद्रता, सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः, शुभस्य शीघ्रम्, मूल नास्ति कुतः शाखा। सस्कृत की अनेक लोकोक्तियाँ हिन्दी रूप मे भी हिन्दी मे प्रयुक्त होती हैं, किन्तु यह कहना कठिन है कि वे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते हिन्दी को मिली है या उन्हे हिन्दी ने सीधे सस्कृत से अनूदित करके लिया है। जैसे 'जितना तिल उतना तेल'—'यावत्तिल तथा तैलम्'। कुछ सस्कृत लोकोक्तियाँ हिन्दी मे ऐसी भी है जिनका कुछ भाग सस्कृत है तथा कुछ नही : 'आहारे व्यवहारे लज्जा न कारे'।

**पश्तो**—घोडे की लात घोड़ा सहता है, घोडे के नाल लग रहे थे, मेढकी ने भी टाँग उठा दी, आसमान का थूका मुँह पर आता है, लोहा तपे नही तो बढे कैसे, सौ सुनार की एक लुहार की, पहले जान फिर जहान, ऊँट रे ऊँट तेरी कौन-सी कल सीधी, ताली दोनो हाथ से बजती है, दूध का जला मट्ठा फूँककर पीता है।

**तुर्की**—पाँचो उँगलियाँ बराबर नही होती, नाम बडा दर्शन थोड़े, मुँह से निकली बात कमान से छूटा तीर, आदि।

**फ़ारसी**—फारसी की अनेक कहावते तो प्रायः सामान्य ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ हिन्दी मे अपने मूल रूप मे प्रयुक्त होती है : हिम्मते मर्दा मददे खुदा, माले मुफ्त दिले बेरहम, नीम हकीम खतर-ए-जान, तंदुरुस्ती हजार नेमत, देर आयद दुरुस्त आयद, तुख्म तासीर सुहबत

असर, नीम मुल्ला ख़तर-ए-ईमान, एक जान दो कालिब। ऐसी कहावतें भी काफी है जो कुछ अनूदित होकर हिन्दी मे व्यवहृत होती है : तेतो पाँव पसारिए जेती लाबी सौर (ब अन्दाजे गलीम पा दराज कुन; यह कहावत तुर्की मे भी है जो फारसी प्रभाव है), बद अच्छा बदनाम बुरा (बद बेहतर न बदनाम), एक अनार सौ बीमार (यक अनार सद बीमार), मुल्ला की आवाज (दौड़ भी) मस्जिद तक (सदा-ए-मुल्ला ता मस्जिद), नादान दोस्त से दानाँ दुश्मन अच्छा (दुश्मन-ए-दाना बेह अज दोस्ते नादाॅ), खोदा पहाड़ निकली चुहिया (कोह कन्दन, व मूश बराबुर्दन), दूर के ढोल सुहावने (आवाजे दुहुल अज दूर खुश मी नुमायद), आदि।

अँग्रेजी—आवश्यकता आविष्कार की जननी है (Necessity is the mother of invention), एक हाथ से ताली नही बजती (It requires two hands to clap), रोम एक दिन मे नही बना था (Rome was not built in a day), भूँकने वाले काटते नही (Barking dogs seldom bite), एक अडा वह भी गन्दा (But one egg, that too addled), प्रेम और युद्ध मे सब कुछ उचित है (All is fair in love and war), बेकार से बेगार भली (Forced labour is better than idleness), ख़ाली दिमाग शैतान का घर (An empty mind is devil's workshop), दीवारो के कान होते है (Walls have ears)।